ब्रह्मचर्य और आत्मसंयम

[ब्रह्मचर्य के अनुभव का संशोधित
तथा परिवर्द्धित संस्करण]

—गाँधी

ब्रह्मचर्य और आत्मसंयम

[ब्रह्मचर्य के अनुभव का संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण]

महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी

Brahmacharyya is not mere mechanical celebacy, it means complete control over all the sences and freedom from lust in thought, word and deed, as such it is the royal road to self reali sation or attainment of Brahman (ब्रह्म)

प्रकाशक—
एम्० एम्० मेहता ऐण्ड ब्रदर्स,
६३ सुतटोला-काशी।

द्वितीय संस्करण] १९३४ [मूल्य ।=)

प्रकाशक के दो शब्द

'ब्रह्मचर्य' विषय पर वही लेखक कुछ लिखने का साहस कर सकता है, जिसने उसका स्वयं कुछ अनुभव प्राप्त किया हो। आज हिंदी में यों तो बहुत-से लेखकों ने इस विषय पर पुस्तकें लिखी हैं, पर महात्मा गांधी कृत इस पुस्तक का महत्व उन सभी पुस्तकों से विशेष है, क्योंकि इसमें उन्होंने अपने स्वयं अनुभव की बातों का ही वर्णन किया है। उन्हें इस व्रत के लेने पर जो जो दिक्कतें पड़ी हैं तथा जो-जो लाभ मिले हैं, उन सबका इसमें समावेश है।

ब्रह्मचर्य-जीवन को हमारे इस जमाने के नवयुवक कठिन बताते हैं। पर इसकी महिमा का बखान वही कर सकता है, जिसने स्वयं इसका अनुभव किया हो। महात्मा गांधी आज ४० वर्षों से ब्रह्मचर्य का व्रत लिए हुए हैं। यही कारण है कि उनकी इस पुस्तक का लोगों में काफी प्रचार हुआ है और लोगों ने इस पुस्तक को इतना अपनाया कि १५ दिनों के भीतर ही इसका प्रथम संस्करण हाथो हाथ बिक गया और हजारों की संख्या में इसकी माँग अब भी हमारे पास मौजूद है।

पाठकों से सविनय प्रार्थना है कि वे इस पुस्तक का काफी प्रचार करावें। यदि वे हमारे इस उद्योग में सहायता देंगे तो ऐसे ही अनुभवी विषयों पर स्वयं अनुभवी लेखकों से पुस्तकें लिखवाकर हम शीघ्र से शीघ्र आपलोगों की सेवा में भेंट करेंगे। ॐ शांति ! शांति !! शांति !!!

विषय-सूची

ब्रह्मचर्य का अर्थ

(१)

जो मनुष्य सत्य का व्रत लिए हुए है, उसी की आराधना करता है, वह यदि किसी भी दूसरी वस्तु की आराधना करता है, तो व्यभिचारी ठहरता है। तो फिर विकार की आराधना क्योंकर की जा सकती है? जिसकी सारी प्रेरणा एक सत्य की सिद्धि के लिये है, वह संतान पैदा करने या गृहस्थी चलाने के काम में कैसे पड़ सकता है। भोग विलास से किसी को सत्य की सिद्धि हुई हो, ऐसा एक भी उदाहरण हमारे पास नहीं है।

अहिंसा के पालन को लें, तो उसका संपूर्ण पालन भी ब्रह्मचर्य के बिना अशक्य है। अहिंसा के अर्थ हैं, सर्वव्यापी प्रेम। पुरुष का एक स्त्री को या स्त्री का एक पुरुष को अपना प्रेम उत्सर्ग कर चुकने पर उसके पास दूसरे को देने के लिये क्या रहा? इसका तो यह अर्थ हुआ कि 'हम दो पहले और दूसरे सब पीछे।' पतिव्रता स्त्री पुरुष के लिये और पत्नीव्रती पुरुष स्त्री के लिये सर्वस्व न्योछावर करने को तैयार होगा। इस प्रकार उससे सर्वव्यापी प्रेम का पालन हो ही नहीं सकता। वह अखिल सृष्टि को अपना कुटुम्ब कभी बना ही नहीं सकता, क्योंकि उसके पास उसका अपना माना हुआ कुटुम्ब है, या तैयार हो रहा है। जितनी उसमें वृद्धि होगी, सर्वव्यापी प्रेम में उतना ही व्याघात उपस्थित होगा। हम देखते हैं कि सारे जगत् में यही हो रहा है। इसलिये अहिंसाव्रत का पालन करनेवाला विवाह कर ही नहीं सकता, विवाह के बाहर के विकार की तो बात ही क्या हो सकती है।

तो फिर जो विवाह कर चुके हैं, वे क्या करें ? क्या उन्हें सत्य की सिद्धि किसी दिन होगी ही नहीं ? और क्या ये कर्म सर्वार्पण नहीं कर सकेंगे ? हमने इसका पथ निकाल लिया है; और वह विवाहित का अविवाहित-सा बन जाना है। इस दशा में ऐसा सुंदर अनुभव और कोई मैंने नहीं किया। इस स्थिति का स्वाद जिसने चखा है, इसका प्रतिपादन वही कर सकता है। आज तो इस प्रयोग की सफलता प्रमाणित हुई कही जा सकती है। विवाहित पति पत्नी का एक दूसरे को भाई-बहन मानने लगना सारी झंझटों से मुक्ति पाना है। संसार भर की सारी स्त्रियाँ बहनें हैं, माताएँ हैं, लड़कियाँ हैं—यह विचार ही मनुष्य को एकदम उच्च बनानेवाला है, बंधन से मुक्त करनेवाला है। इससे पति पत्नी कुछ खोते नहीं, वरन् अपनी श्री-वृद्धि करते हैं, कुटुंब-वृद्धि करते हैं। विकार रूप मैल को दूर करने से प्रेम भी बढ़ता है, विकार को नष्ट कर देने से एक दूसरे की सेवा भी अधिक अच्छी हो सकती है। एक दूसरे के बीच कलह से संयोग कम होते हैं। जहाँ प्रेम स्वार्थी और एकांगी है, वहाँ कलह की गुंजायश अधिक है।

इस मुख्य बात का विचार करने के बाद और इसके हृदय में प्रवेश पा जाने पर, ब्रह्मचर्य से होनेवाले शारीरिक लाभ, वीर्य लाभ आदि बहुत गौण हो जाते हैं। जान-बूझ कर भोग-विलास के लिए वीर्य-नष्ट करना और शरीर को निचोड़ना कैसी मूर्खता है! वीर्य का उपयोग तो दोनों की शारीरिक और मानसिक शक्ति की वृद्धि में है। विषय भोग में उसका उपयोग करना उसका नितांत दुरुपयोग है। इसी कारण वह तो कई रोगों का मूल बन जाता है।

ब्रह्मचर्य का पालन मनसा-वाचा कर्मणा होना चाहिए। इस व्रत के लिये यही ठीक है। हमने गीता में पढ़ा है कि जो शरीर

को अधिकार में रखता हुआ जान पड़ता है, पर मन से विकार का पालन करता रहता है, वह मूढ एवं मिथ्याचारी है। सबको इसका अनुभव होता है। मन को विकारपूर्ण रहने देकर शरीर को दबाने का प्रयत्न करना हानिकर है। जहाँ मन है, वहाँ अंत को शरीर पीछे लगे बिना नहीं मानता। यहाँ एक भेद समझ लेना आवश्यक है। मन को विकार के अधीन होने देना और मन का अपने आप अनिच्छा से, बलात् विकार को प्राप्त होना, इन दोनों बातों में अंतर है। यदि विकार में हम सहायक न बनें तो अंत में विजय हमारी ही है। हम प्रतिपल यह अनुभव करते हैं कि शरीर तो अधिकार में रहता है, पर मन नहीं रहता। इसलिये शरीर को तुरत ही अपने अधीन में करने का नित्य प्रयत्न करने से हम अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं। यदि हम मन के अधीन हो जायँ तो शरीर और मन में विरोध खड़ा हो जाता है, तब मिथ्याचार का श्रीगणेश हो जाता है। पर हम कह सकते हैं कि जब तक हम मनोविकार का दमन करते हैं, तब तक दोनों साथ साथ चलते हैं।

इस ब्रह्मचर्य का पालन बहुत कठिन, लगभग असंभव ही माना गया है। इसके कारण की खोज करने से ज्ञात होता है कि ब्रह्मचर्य का संकुचित अर्थ किया गया है। जननेंद्रिय विकार के निग्रह को ही ब्रह्मचर्य का पालन माना गया है। मेरी सम्मति में यह अपूर्ण और सदोष व्याख्या है। विषय मात्र का निग्रह ही ब्रह्मचर्य है। जो अन्य इंद्रियों को जहाँ तहाँ भटकने देकर केवल एक ही इंद्रिय के निग्रह का प्रयत्न करता है वह निष्फल प्रयत्न करता है, इसमें क्या संदेह है? कानों से विकार की बातें सुनना, आँखों से विकार सृष्टि करनेवाली वस्तु देखना, रसना से विकारोत्तेजक वस्तु चखना, हाथ से विकारों को भड़कानेवाली वस्तु का स्पर्श करना और साथ ही जननेंद्रिय को रोकने का

प्रयत्न करना, यह तो आग में हाथ डालकर जलने से बचने का प्रयत्न करने के समान हुआ। इसलिये जो जननेंद्रिय को रोकने का प्रयत्न करे, उसे पहिले ही से प्रत्येक इन्द्रिय को उस उस इन्द्रिय के विकारों से रोकने का प्रयत्न कर ही लेना चाहिए। मैंने सदा से यह अनुभव किया है कि ब्रह्मचर्य की सकुचित व्याख्या से हानि हुई है। मेरा तो यह निश्चित मत है, और अनुभव भी है कि यदि हम सब इन्द्रियों को एक साथ वश में करने का अभ्यास करें, इसकी आदत डालें, तो जननेंद्रिय को वश में करने का प्रयत्न शीघ्र ही सफल हो सकता है। तभी उसमें सफलता भी मिल सकती है। इसमें मुख्य स्वादेंद्रिय है। इसीलिये उसके संयम को हमने पृथक स्थान दिया है।

ब्रह्मचर्य के मूल अर्थ को हमें स्मरण रखना चाहिए। ब्रह्मचर्य अर्थात् ब्रह्म की—सत्य की शोध में चर्या, अर्थात् तत् संबंधी आचार। इस मूल अर्थ से सब इंद्रियों के संयम का विशेष अर्थ निकलता है। जननेंद्रिय के संयम के अपूर्ण अर्थ को हमें भुला ही देना चाहिए।

(२)

इस विषय पर लिखना आसान नहीं है। किंतु मेरे मस्तिष्क में यह प्रबल इच्छा रहती आई है कि मैं अपने पाठकों को अपने अनुभव के विस्तृत भंडार के कुछ अंश से लाभ पहुँचाऊँ। मेरे पास आए हुए कुछ पत्रों ने मेरी इस अभिलाषा को जागृत किया है।

एक मित्र पूछते हैं—ब्रह्मचर्य क्या है? क्या इसे पूर्ण रूप में पालन करना संभव है? यदि संभव है तो क्या आप पालन करते हैं?

ब्रह्मचर्य का यथार्थ और पूर्ण अर्थ ब्रह्म की खोज करना है। ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त है। अतएव अपनी आत्मा के अंतर्गत प्रविष्ट और उसका अनुभव करने से खोजा जा सकता है। इंद्रियों के पूर्ण संयम बिना यह अनुभव असंभव है। इस प्रकार ब्रह्मचर्य का अर्थ मन, कर्म और वचन से सभी समय, सभी स्थानों पर, सभी इंद्रियों का संयम रखना है।

प्रत्येक पुरुष या स्त्री पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए सभी वासनाओं से मुक्त है। इसलिये इस प्रकार का व्यक्ति ईश्वर के निकट रहता है और देव-तुल्य है। इसमें संदेह नहीं कि मन, कर्म और वचन से, पूर्ण रूप से, ब्रह्मचर्य का पालन करना संभव है। मुझे यह कहते दुःख होता है कि मैं ब्रह्मचर्य की उस पूर्ण अवस्था तक नहीं पहुँचा हूँ। यद्यपि मैं अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में वहाँ तक पहुँचने का उद्योग कर रहा हूँ। मैंने इसी शरीर से उस अवस्था तक पहुँचने की आशा नहीं छोड़ी है। मैंने अपने शरीर पर नियंत्रण कर लिया है। मैं जागते समय अपने शरीर का स्वामी रह सकता हूँ। मैंने अपनी जिह्वा पर संयम रखने में पूर्ण सफलता प्राप्त कर ली है। किंतु विचारों पर संयम रखने में मुझे अभी कई अवस्थाओं को पार करना है। वे मेरी आज्ञा के अनुसार नहीं आते जाते। इस प्रकार मेरा मस्तिष्क सतत अपने ही विरुद्ध विद्रोह की अवस्था में है। मैं अपनी जागृत घड़ियों में एक-दूसरे से संघर्षण करते हुए विचारों को रोक सकता हूँ। मैं यह कह सकता हूँ कि जागृतावस्था में मेरा मस्तिष्क बुरे विचारों से रक्षित रहता है, किंतु सोते समय विचारों के ऊपर नियंत्रण कुछ कम रहता है। सोते रहने पर मेरा मस्तिष्क सभी प्रकार के विचारों, आशातीत स्वप्नों और इस शरीर से उपयुक्त पहले की वस्तुओं की इच्छा से

बहक सकता है। इस प्रकार के विचार या स्वप्न जब अपवि
होते हैं, तो इनका स्वाभाविक परिणाम होता है। जब तक इस तरा
के अनुभव सभव हैं, तो कोई भी व्यक्ति सर्वथा वासनाओं र
मुक्त नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार का अतिक्रम लुप्त हो
रहा है, किंतु अभी बिलकुल नहीं रुक गया है। यदि मैं अपने
विचारों पर पूर्ण सयम रख सकता तो पिछले दस वर्षों में प्लुरसी
और सग्रहणी आदि रोगों स ग्रस्त न होता। मुझे विश्वास है कि
स्वस्थ आत्मा स्वस्थ शरीर मे रहती है। इसलिये जिस सीमा तक
आत्मा वासनाओं से मुक्ति और स्वास्थ्य में उन्नति करती है,
उसी सीमा तक उस अवस्था मे शरीर की भी वृद्धि होती है।
इसका यह अर्थ नहीं है कि स्वस्थ शरीर के लिये मजबूत पशियों
का होना आवश्यक है। वीर आत्मा प्राय दुबले पतले शरीर में
रहती है। एक निश्चित अवस्था के बाद आत्मा की वृद्धि के
अनुपात से शरीर के माँस का ह्रास होने लगता है। पूर्ण रूप से
स्वस्थ शरीर बहुत-कुछ माँस-हीन हो सकता है। पशियों युक्त
शरीर प्राय अनेक बीमारियों की जड़ होता है। यदि वह प्रत्यक्ष
रूप से रोगों से मुक्त हो, तो भी रोग के कीटाणुओं और उसी
प्रकार के दूषित पदार्थों से रहित नहीं हो सकता। इसके विरुद्ध
पूर्ण रूप से स्वस्थ शरीर इन सबसे रक्षित रहता है। भ्रष्ट हो
सकनेवाला रक्त सभी प्रकार के रोग के कीटाणुओं से रक्षा कर
सकने की आंतरिक शक्ति रखता है। इस प्रकार समतोल प्राप्त
करना अवश्य कठिन है। अन्यथा मैंने इसे प्राप्त कर लिया होता,
क्योंकि मेरी आत्मा इस बात की साक्षी है कि इस पूर्णावस्था को
प्राप्त करने के लिये मैं कुछ भी नहीं उठा रख सकता। कोई भी
बाह्य अवरोध मेरे और उस अवस्था के बीच नहीं ठहर सकता।
किंतु सबके लिये—और कम से कम मेरे लिये—पूर्व सस्कारों

को दूर कर सकना आसान नहीं है। परन्तु विलम्ब के कारण मुझे तनिक भी विस्मय नहीं हुआ है। क्योंकि मैंने उस पूर्णावस्था का मानसिक चित्र खींच लिया है। मुझे उसकी धुंधली झलक भी दिखाई देती है। अब तक प्राप्त उन्नति से निराशा की जगह पर मुझे आशा होती है। किंतु यदि उस आशा के पूर्ण होने के पहले ही मेरा इस शरीर से वियोग हो जाय, तो मैं यह नहीं समझूंगा कि मैं असफल हुआ। क्योंकि मैं पुनर्जन्म मे उतना ही विश्वास रखता हूँ, जितना इस वर्तमान शरीर के अस्तित्व में। इसलिये मैं जानता हूँ कि थोड़ा भी प्रयत्न व्यर्थ नहीं जाता।

मैंने अपने संबंध में इतनी बातें केवल इस कारण कही हैं कि मुझे पत्र लिखनेवाले और उनकी ही भांति दूसर लोग अपन मे धैर्य्य और आत्म विश्वास रक्खें। सबमे आत्मा एक ही होती है। इस कारण सबके लिये इसकी संभाव्यता एकसी है। कुछ लोगों में इसने अपने को प्रस्फुटित किया है और कुछ मे यह अब ऐसा करने वाली है। धैर्य्यपूर्वक प्रयत्न से प्रत्येक मनुष्य उसी अनुभव तक पहुँच सकता है।

मैंने अब तक ब्रह्मचर्य्य का वर्णन व्यापक रूप मे किया है। ब्रह्मचर्य्य का साधारण स्वीकृत अर्थ मन, कर्म और वचन से पाशविक वासना का दमन करना है। इस प्रकार इसके अर्थ को संकुचित करना बिल्कुल ठीक है। इस ब्रह्मचर्य्य का पालन करना बहुत कठिन समझा जाता है। इस विषय-वासना का दमन इतना कठिन रहा है कि लगभग असम्भव सा हो गया है। बात यह है कि जिह्वा के संयम पर इतना जोर नहीं दिया जाता रहा है। हमारे चिकित्सकों का यह अनुभव भी है कि रोग से जराजीर्ण शरीर सदा विषय-वासना का प्रियस्थान रहता है। और जीर्ण शीर्ण

जाति के लिये ब्रह्मचर्य का पालन करना स्वाभाविक रूप से कठिन है।

मैंने ऊपर दुबले किंतु स्वस्थ शरीर की बातचीत की है। इससे किसी को यह न समझना चाहिए कि मैं शारीरिक बल की अवहेलना करता हूँ। मैंने तो ब्रह्मचर्य की बात अपने बिल्कुल मोटे शब्दों में पूर्ण रूप में की है। इसलिये संभव है कि इसका अर्थ ठीक न समझा जाय। किंतु जो व्यक्ति सभी इंद्रियों का पूर्ण रूप से संयम करेगा, उसे शारीरिक दुर्बलता का स्वागत करना ही पड़ेगा। शरीर के प्रति ममता की अनुरक्ति के लोप के बाद शारीरिक बल रखने की आकांक्षा दूर करने का प्रश्न आता है। किंतु एक सच्चे ब्रह्मचारी का शरीर अवश्य ही असाधारण नूतन और तेजोमय होता है। यह ब्रह्मचर्य कुछ अपार्थिव है। जो व्यक्ति स्वप्न में भी विषय-वासनाओं से विचलित नहीं होता, वह सबप्रकार प्रतिष्ठा के योग्य है। वह अन्य सब इन्द्रियों का संयम अनायास कर सकेगा।

इस सीमित ब्रह्मचर्य के प्रसंग में एक दूसरे मित्र लिखते हैं–"मैं दयनीय अवस्था में हूँ। जब मैं अपने दफ्तर में रहता हूँ, सड़क पर रहता हूँ और जब पढ़ता रहता हूँ, काम करता रहता हूँ, और प्रार्थना करता रहता हूँ, तब भी रात दिन विषय-वासना घेर रहती है। चक्कर लगाते हुए मस्तिष्क पर किस प्रकार संयम रक्खा जा सकता है? किस प्रकार प्रत्येक स्त्री पर माता के समान दृष्टि रखना सीखा जा सकता है? और किस प्रकार पवित्रतम प्रेम को उद्दीप्त कर सकती है, किस प्रकार दुर्वासनाएँ दूर की जा सकती हैं, मेरे सामने आपका ब्रह्मचर्य के ऊपर लिखा लेख है। (कई वर्ष पूर्व लिखा हुआ) किंतु इससे मुझे कुछ भी सहायता नहीं मिलती।"

सचमुच यह स्थिति हृदय को पिघला देनेवाली है। बहुतेरे लोगों की ऐसी ही दशा रहती है, परन्तु जब तक मन के भीतर इन विचारों के प्रति संग्राम जारी रहता है, तब तक डर की कोई बात नहीं है। यदि आँख अपराधिनी हो, तो उसे बंद कर लेना चाहिए, यदि कान अपराधी हों, तो उन्हें भी रूई से बंद कर देना चाहिए, आँख नीचे करके चलना श्रेयस्कर होता है। इस प्रकार दूसरी ओर देखने का अवकाश ही न मिलेगा। जहाँ गंदी बातें हो रही हों, गंदे गाने गाए जा रहे हों, वहाँ से उठ कर भाग आना चाहिए। अपनी रसना पर भी खूब अधिकार रखना चाहिए।

मेरा निजी अनुभव तो यह है कि जो रसना को नहीं जीत सका, वह विषय पर विजय नहीं पा सकता। रसना पर विजय प्राप्त करना बहुत कठिन है। परन्तु जब इसपर विजय मिल जाती है, तभी दूसरी विजय मिलना संभव है। रसना पर विजय प्राप्त करने के लिये पहला साधन तो यह है कि मसालों का पूर्ण रूप से या जितना संभव हो, त्याग किया जाय। दूसरा साधन इससे अधिक जोरदार है। वह यह कि इस विचार की वृद्धि सदा की जाय कि हम रसना की तृप्ति के लिये नहीं, वरन् जीवन-रक्षण के लिये आहार करते हैं। हम स्वाद के लिये वायु नहीं ग्रहण करते, वरन् श्वास लेने के लिये लेते हैं। पानी हम केवल पिपासा शांत करने के लिये पीते हैं। इसी प्रकार भोजन भी केवल भूख मिटाने के लिये ही करते हैं। हमारे माता-पिता बचपन से ही इसके विपरीत आदत डाल देते हैं। हमारे पालन के लिये नहीं वरन् अपना प्यार प्रदर्शित करने के लिये वे भांति भांति के स्वाद चखाकर हमें नष्ट कर डालते हैं। ऐसे वातावरण का हमें विरोध करना पड़ेगा। परन्तु विषयासक्ति पर विजय पाने के लिये स्वर्ण

साधन राम नाम किंतु इसी प्रकार के अन्य मन्त्र हैं। द्वादश मन्त्र भी यही काम कर सकेगा। जिसकी जैसी धारणा हो, उसी प्रकार य मन्त्र का जाप अभिष्ट है। जिस मन्त्र का जाप हमें करना हो, उसमें पूर्णतया लीन हो जाना चाहिये। यदि मन्त्र-जाप के समय हमारे मन में दूसरे प्रकार के भाव आएँ तो भी जो भक्ति के साथ जाप करता रहेगा उसे अंत में सफलता प्राप्त होगी। इसमें जरा भी संदेह नहीं है। वह उसके जीवन-साफल्य का आधार बनकर समस्त भावी आपत्तियों से उसकी रक्षा करेगा। ऐसे पवित्र मन्त्रों का उपयोग किसी को आर्थिक लाभ के लिये कदापि न करना चाहिए। इन मन्त्रों की महत्ता अपनी नियति को सुरक्षित रखने में है। और यह अनुभव तो प्रत्येक साधक को तुरत प्राप्त हो जायगा। हाँ इतना ध्यान रखना चाहिए कि इन मन्त्रों की तोता-रटंति से कुछ नहीं हो सकता। उनमें तो अपने आत्म प्रवेश की आवश्यकता है। तोते तो मन्त्र की भांति उच्चारण करते हैं। पर हमें तो विवेक के साथ उनका पारायण करना चाहिए। अनपेक्षित विचारों का निवारण करने की आकांक्षा से एवं इस आत्म विश्वास के साथ कि मन्त्र में यह शक्ति है, हमें मंत्र का जाप करते रहना चाहिए।

———

ब्रह्मचर्य की व्यापकता

ब्रह्मचर्य क सम्बन्ध मे प्रश्न पूछत हुए मर पास इतन पत्र श्रा रहे हैं श्रौर इस विषय मे मेरे विचार दृढ़ हैं कि खासकर राष्ट्रीय जीवन के इस घटना पूर्ण काल मे अपने विचार और अपने तजुरबों क नतीजे पाठकों से मैं और अधिक नहीं छिपा सकता।

सस्कृत मे अमैथुन का अभिवाची शब्द ब्रह्मचर्य है। परन्तु ब्रह्मचर्य का अर्थ अमैथुन से कहीं अधिक विस्तृत है। ब्रह्मचर्य का अर्थ है सम्पूर्ण इन्द्रियों और अवयवों का सयम। पूर्ण ब्रह्मचर्य के लिये कुछ भी असम्भव नहीं है। किन्तु यह आदर्श स्थिति है जिसे बिरले ही पाते हैं। यह रेखागणित की उस रेखा के सदृश है जो केवल कल्पना में ही रहती है और जो शारीरिक रूप से खींची ही नहीं जा सकती। फिर भी यह रेखागणित की एक मुख्य परिभाषा है और इसके बड़े परिणाम निकलते हैं। इसी प्रकार पूर्ण ब्रह्मचर्य भी केवल काल्पनिक जगत् में ही रह सकता है। किन्तु यदि हम अपने ज्ञानचक्षु के सामने उसे निरन्तर न बनाये रखें तो हम बिना पतवार की नौका के समान भटकें। इस काल्पनिक स्थिति के जितने ही निकट हम पहुँचते जावेंगे उतने ही पूर्ण होते जावेंगे।

किन्तु फिलहाल मै अमैथुन के अर्थ मे ही ब्रह्मचर्य्य पर लिखूगा। मैं मानता हूँ कि आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त करने के लिये मन, वचन औरकर्म से पूर्ण सयमी जीवन आवश्यक है, और जिस राष्ट्र में ऐसे मनुष्य नहीं होते, वह इसी कमी क कारण दरिद्री है। किन्तु राष्ट्रीय विकास की मौजूदा स्थिति में सामयिक आवश्यकता क तौर पर ब्रह्मचर्य की पैरवी करना मेरा उद्देश्य है।

रोग, अकाल, और दरिद्रता, यहा तक कि भूखो मरना भी,

मामूली से अधिक हमारे बाट में पड़ा है। हम ऐसे सूक्ष्म ढंग से दासता की चक्की में पीसे जा रहे हैं कि हममें से बहुतेर इसको ऐसा मानने से भी इन्कार करते हैं और आर्थिक, मानसिक और नैतिक क विहर अभिशाप के होते हुए भी हम अपनी इस दशा को प्रगतिशील स्वतन्त्रता का रूप मान बैठे हैं। शासन के भार ने कई प्रकार से भारत की गरीबी गहरी कर दी है और बीमारियों का सामना करने की योग्यता घटा दी है। गोखले के शब्दों में शासन क ढंग न राष्ट्रीय उन्नति को भी यहा तक ठिठुरा दिया है कि हममें से बड़े से बड़े को भी झुकना पड़ता है।

ऐसे पवित्र वायु मण्डल में, क्या यह हमारे लिये ठीक होगा कि हम परिस्थिति को जानते हुए भी बच्चे पैदा करें? जब कि हम अपने को असहाय, रोगग्रस्त और अकाल पीडित पाते हैं, उस समय यदि प्रजोत्पत्ति के क्रम को हम जारी रक्खेंगे तो केवल गुलामों और चीणकायों की संख्या ही बढ़ेगी। हमें तब तक बच्चा पैदा करने का अधिकार नहीं है, जब तक भारत स्वतन्त्र राष्ट्र होकर भुखमरी का सामना करने के योग्य, अकाल के समय जिला सकने में समर्थ और मलेरिया, हैजा, प्लेग तथा दूसरी बड़ी बीमारियों से निपटने की योग्यता से परिपूर्ण न हो जावें। मैं पाठकों से यह नहीं छिपाना चाहता कि जब मैं इस देश में जन्म संख्या की वृद्धि सुनता हूँ तो मुझे दुःख होता है। मैं यह प्रगट करना चाहता हूँ कि सालों से मैंने स्वकीय आत्मसंयम के द्वारा प्रजोत्पत्ति रोकने की सम्भावना पर संतोष के साथ विचार किया है। अपनी मौजूदा जन-संख्या की परवरिश करने के लायक भी भारत के पास साधन नहीं है। इसलिये नहीं कि उसकी जनसंख्या अधिक है, किन्तु इस लिये कि वह एक ऐसे शासन के चगुल में है जिसका सिद्धांत उसको उत्तरोत्तर दुहना है।

प्रजोत्पत्ति की रोक थाम कैसे हो? यूरोप मे काम में लाए जानेवाले पाप पूर्ण और कृत्रिम निग्रहों से नहीं, किन्तु नियम और आत्मसयम क जीवन से। पिता माता को चाहिए कि वे अपने बच्चों को ब्रह्मचर्य्य का पालन सिखावें। हिन्दु शास्त्रों के अनुसार बालकों क विवाह की सबसे कम अवस्था २५ साल है। यदि भारतीय माताओं को यह विश्वास दिलाया जा सक कि लड़के और लड़कियों को विवाहित जीवन क लिये शिक्षा दना पाप है, तो भारत में होनेवाली आधी शादियाँ अपने आप ही रुक जावें। हमारी गर्म जल-वायु के कारण लड़कियों क जल्दी रजस्वला होने की बात भी हमे न माननी चाहिए। जल्दी रजस्वला होने का वहम से भोंडा और कोई झूठा विश्वास मैंने कभी नहीं जाना। मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि जलवायु का रजस्वला होने से कोई सम्बन्ध नहीं है। समय के पहले रजस्वला बनने का कारण है हमारे कुटुम्ब का मानसिक और नैतिक वायुमडल। माताए और दूसर कुटुम्बी अबोध बच्चों को यह सिखाना अपना धार्मिक कर्तव्य समझते हैं कि जब उनकी इतनी उम्र हो जायगी तब उनका विवाह होगा। जब वे दुधमुहे बच्चे रहते हैं या पालने मे झूलते हैं, तभी उनकी मँगनी हो जाती है। बच्चों के कपड़े और भोजन भी कामोत्तेजना में सहायता देते हैं। उनके नहीं, किन्तु अपने आनन्द और गर्व के लिये हम अपने बच्चों को गुड्डों के से कपड़े पहनात हैं। मैंने बीसियों बच्चों का पालन-पोषण किया है। और जो भी कपड़े उन्हें दिए, बिना कठिनाई के वे उन्हीं को पहनने लगे और खुश हुए। हम उन्हें हर प्रकार का गरम और उत्तेजक खाना खिलाते हैं। हमारा अधा स्नेह उनकी क्षमता का ख्याल ही नहीं करता। निस्सन्देह फल यह होता है कि जल्दी जवानी आ जाती है, अधकचर बच्चे पैदा होत हैं और जल्दी ही मर जाते हैं।

पिता माता अपने कामों से ऐसा जीता जागता सबक देते हैं। जिसे बच्चे आसानी से समझ लेते हैं। विषयभोग में बुरी तरह चूर रह कर वे अपने बच्चों के लिये बेरोक दुराचार के नमूने का काम देते हैं। कुटुम्ब की प्रत्येक कुसमय वृद्धि का बाजे-गाजे, खुशियों और दावतों के साथ स्वागत किया जाता है। आश्चर्य तो ऐसे वायुमंडल के होते हुए हम इससे भी कम संयमी क्यों नहीं हैं। मुझे इसमें सन्देह की झलक भी नहीं है कि यदि विवाहित पुरुष अपने देश का भला चाहते हैं और भारत को बलवान, रूपवान, और सुडौल स्त्री-पुरुषों का राष्ट्र बनाना चाहते हैं तो वे पूर्ण आत्मसंयम का पालन करें और फिलहाल बच्चे पैदा करना बन्द कर दें। जिनका नया विवाह हुआ है उन्हें भी मैं यही सलाह दूंगा। किसी बात को न करना, उसको करके छोड़ने से आसान है। आजन्म शराब से निर्लिप्त बना रहना एक शराबी के शराब छोड़ने की अपेक्षा कहीं आसान है। यह कहना मिथ्या है कि संयम उन्हीं को भली तरह समझाया जा सकता है जो विषयभोग से अघा गये हैं। निर्बल मनुष्य को भी संयम सिखाने का कोई अर्थ नहीं होता। मेरा पहलू तो यह है कि चाहे हम बूढ़े हों या जवान, अघा गये हों या न अघा गये हों, मौजूदा घड़ी में यह हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपनी दासता के उत्तराधिकारी पैदा करना बन्द कर दें। मैं माता पिताओं का ध्यान इस ओर भी दिला दूँ कि उन्हें एक दूसरे के अधिकार के विवाद जाल में न फँसना चाहिए। विषयभोग के लिये सम्मति की आवश्यकता होती है, संयम के लिये नहीं। यह प्रत्यक्ष सत्य है।

जब हम एक शक्तिशाली सरकार से लड़ रहे हैं, तब हम शारीरिक, आर्थिक, नैतिक और आत्मिक सभी शक्तियों की आवश्यकता पड़ेगी। जब तक हम इस महान् कार्य को अपना सर्वस्व

न बना लें और प्रत्येक अन्य वस्तु से इसको मूल्यवान् न समझ लें तब तक इस शक्ति को हम नहीं पा सकते। जीवन की इस व्यक्तिगत पवित्रता के बिना, हम गुलामों की जाति ही बने रहेंगे। हमें यह कल्पना करके अपने को धोखे में न डालना चाहिए कि चूँकि हम शासन पद्धति को दूषित मानते हैं, इसलिये व्यक्तिगत गुणों की होड़ मे भी हमें अंगरेजों से घृणा करनी चाहिए। मौलिक गुणों का आध्यात्मिक प्रदर्शन किए बिना वे लोग बहुत बड़ी सख्या में उनका शारीरिक पालन करते हैं। देश के राजनैतिक जीवन मे बढे हुए लोग, वहाँ, हमसे कहीं अधिक सख्या मे कुमारियाँ और कुमार हैं। हमारे बीच में कुमारियाँ तो होती ही नहीं। हाँ दाइयाँ होती हैं जिनका देश के राजनैतिक जीवन से कोई सम्बन्ध ही नहीं रहता। दूसरी ओर यूरोप मे साधारण गुण के रूप में हजारों स्त्रियाँ अविवाहित रहती हैं।

अब मैं पाठकों के सामने कुछ सरल नियम रखता हूँ जो केवल मेरे ही नहीं, किन्तु मेरे बहुतेरे साथियों के भी अनुभव पर आधारित हैं।

१—इस अटल विश्वास के साथ, कि वे निर्दोष हैं और रह सकते हैं, लडके और लडकियों का पालन-पोषण सरल और प्राकृतिक ढग पर होना चाहिए।

२—उत्तेजक भोजन, मिर्च और दूसरे मसाले, टिकिया, और मिठाइयाँ जैसे चर्बीदार और गरिष्ट भोजन और सुखाए हुए पदार्थ परित्याग कर देना चाहिए।

३—पति और पत्नी अलग अलग कमरों में रहें और एकान्त में न मिलें।

४—शरीर और मन दोनों ही निरतर स्वास्थ्यप्रद कामो मे लगे रहें।

५—शीघ्र सोने और शीघ्र जागने का नियम पालन किया जाय।

६—गन्दे साहित्य से दूर रहा जाय, गन्दे विचारों की दवा पवित्र विचार हैं।

७—नाटक, सिनेमा आदि कामोत्तेजक तमाशों का बहिष्कार कर दिया जाय।

८—स्वप्नदोष के कारण कोई चिन्ता न करनी चाहिए। काफी मजबूत आदमी के लिये प्रत्येक बार ठंडे जल में स्नान करना, ऐसी दशा में सबसे अच्छी रोक है। यह कहना मिथ्या है कि अनिच्छित स्वप्नदोषों से बचने के लिये जब तक विषयभोग कर लेना सुरक्षा है।

९—पति और पत्नी के बीच में भी संयम को इतना कठिन न मान लेना चाहिए कि वह लगभग असम्भव-सा प्रतीत होने लगे। दूसरी ओर, आत्मसंयम को जीवन की साधारण और स्वाभाविक आदत माननी चाहिए।

१०—प्रत्येक दिन पवित्रता के लिये दिल से की गई प्रार्थना उत्तरोत्तर पवित्र बनाती है।

———

ब्रह्मचर्य और सत्य

एक मित्र महादेव देसाई को इस प्रकार लिखते हैं।

"आपको यह तो स्मरण होगा ही कि कुछ महीने पहले 'नवजीवन' मे ब्रह्मचर्य पर लेख लिखे गये थे—शायद आप ही ने 'यग इन्डिया' से उनका अनुवाद किया था। गाँधीजी ने उस समय इस बात को प्रकट किया था कि मुझे अब भी दूषित स्वप्न आते हैं। यह पढते ही मुझे ख्याल हुआ था कि ऐसी बातें प्रकट करने का परिणाम कभी अच्छा नहीं होता और पीछे से मेरा ख्याल सच साबित होता हुआ प्रतीत हुआ है।

विलायत की हमारी यात्रा में मैंने और मेरे दो मित्रों ने अनेक प्रकार के प्रलोभनों के होते हुए भी अपना चरित्र शुद्ध रक्खा था। उन तीन 'म' से तो बिलकुल ही दूर रहे थे। लेकिन गाँधीजी का उपरोक्त लेख पढ़कर मेरे मित्र बिलकुल ही हताश हो गये और उन्होंने दृढ़तापूर्वक मुझसे कहा कि 'इतने भगीरथ प्रयत्न करने पर भी जब गाँधीजी की यह हालत है तब फिर हमारा क्या हिसाब? यह ब्रह्मचर्यादि पालन करने का प्रयत्न करना वृथा है। मुझे तो अब गयाबीता ही समझो। कुछ म्लान मुख से मैंने उसका जवाब करना आरम्भ किया—यदि गाँधीजी जैसों को भी इस मार्ग पर चलना इतना कठिन मालूम होता है तो फिर हमें अब तिगुने अधिक प्रयत्नशील होना चाहिये इत्यादि—जैसी कि दलीलें आप या गाँधीजी करेंगे। लेकिन यह सब व्यर्थ हुआ। आज तक जो निष्कलंक और सुन्दर चरित्र था वह कलंकित हो गया। कर्म-सिद्धान्तानुसार इस अध पतन का कुछ दोष कोई गाँधीजी पर लगावें तो आप या गाँधीजी क्या कहेंगे?

जब तक मुझे इस एक ही उदाहरण का ख्याल था, मैंने आपको

कुछ भी न लिखा था—'अपवाद' के नाम से आसानी से टाल दिये जानेवाले उत्तर से मैं सन्तोष मानने के लिये तैयार न था। लेकिन उपरोक्त लेख के पढ़ने के बाद ही घटित हुए दूसरे ऐसे उदाहरणों से मेरे भय को पुष्टि मिली है और ऊपर बताये गये उदाहरण में मेरे मित्र पर उस लेख का जो परिणाम हुआ, केवल अपवादरूप न था, इसका मुझे यकीन हो गया है।

मैं यह जानता हूँ कि गाँधीजी को जो हजारहा बातें आसानी से शक्य हो सकती हैं। वे मेरे लिये सर्वथा अशक्य हैं। लेकिन भगवान् की कृपा से इतना बल तो प्राप्त है कि जो गाँधीजी को भी अशक्य मालूम हो, ऐसी एकाध बात मेरे लिए सभव भी हो जाय। गाँधीजी की यह उक्ति पढ़कर मेरा अन्तर विलोड़ित हुआ है और ब्रह्मचर्य का स्वास्थ्य जो विचलित हुआ है सो अभी तक स्थिर नहीं हो सका है। फिर भी ऐसे ही एक विचार ने मुझे अध पात से बचा लिया है। बहुत मरतबा तो एक दोष ही दूसरे दोष से मनुष्य की रक्षा करता है। इसमें भी मेरे अभिमान के दोष के कारण मेरा अधःपतन होता हुआ रुक गया। गाँधीजी के ध्यान में यह बात लाने की कृपा करेंगे। खासकर अभी जब कि व आत्म कथा लिख रहे हैं। सत्य और शुद्ध लिखने में बहादुरी तो अवश्य है, लेकिन ससार में और 'नवजीवन' और 'यग इन्डिया' के पाठकों में इससे विरुद्ध गुण का परिमाण ही अधिक है। इसलिये एक का खाद्य दूसरे के लिय जहर हो सकता है।"

यह शिकायत कोई नई नहीं है। असहयोग के आन्दोलन का जब बड़ा ज़ोर था और उस समय जब मैंने अपनी गलती को स्वीकार किया था तब एक मित्र ने बड़े ही सरलभाव से कहा था आपको गलती मालूम हो तो भी उसको प्रकाश न करना चाहिए।

लोगों को यह ख्याल बना रहना चाहिए कि ऐसा भी कोई एक है कि जिससे कभी गलती नहीं हो सकती है। आप ऐसे ही गिने जाते थे। आपने गलती को स्वीकार किया है, इसलिए अब लोग हताश होंगे।" इस पत्र को पढ़कर मुझे हँसी आई और खेद भी हुआ। लेखक के भोलेपन पर मुझे हँसी आई। जिससे कभी गलती न हो, ऐसा मनुष्य यदि न मिले तो किसी को भी मनाने का विचार करना मुझे त्रासदायक प्रतीत हुआ।

मुझसे गलती हो और वह यदि मालूम हो जाय, तो उससे लोगों को हानि के बदले लाभ ही होगा। मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि गलतियों को मर शीघ्र स्वीकार करने से जनता को लाभ ही हुआ है। और मैंने अपने सम्बन्ध मे तो यह अनुभव किया है कि मुझे तो उससे अवश्य लाभ हुआ है।

मेर दूषित स्वप्नों के सम्बन्ध में भी यही समझना चाहिये। सम्पूर्ण ब्रह्मचारी न होने पर भी यदि मैं वैसा करने का दावा करूँ तो उससे ससार को बडी हानि होगी। उससे ब्रह्मचर्य कलंकित होगा। सत्य का सूर्य म्लान हो जावेगा। ब्रह्मचर्य का मूल्य क्या घटा दूँ! आज तो मैं यह स्पष्ट देख सकता हूँ कि ब्रह्मचर्य के पालन के लिये मैं जो उपाय बताता हूँ वे सम्पूर्ण नहीं हैं। सबलोगों को व सम्पूर्णतया सफल नहीं होते हैं, क्योंकि मैं स्वय सम्पूर्ण ब्रह्मचारी नहीं हूँ। ससार यदि यह माने कि सम्पूर्ण ब्रह्मचारी हूँ; और मैं उसकी जडी बूटी न दिखा सकूँ, तो यह कैसी बड़ी त्रुटि गिनी जायगी!

मैं सच्चा साधक हूँ। मैं सदा जाग्रत रहता हूँ। मेरा प्रयत्न दृढ है। इतना ही क्यों बस न माना जाय! इसी बात से दूसरों को मदद क्यों न मिले। मैं भी यदि विचार के विकारों से दूर नहीं रह सकता

हूँ तो फिर दूसरों का कहना ही क्या ! ऐसा ग़लत हिसाब करने के बदले यह सीधा ही क्यों न किया कि जो शख्स एक समय व्यभिचारी और विकारी था वह आज यदि अपनी पत्नी के साथ भी अपनी लड़की या बहन का सा भाव रखकर रह सकता है, तो हम लोग भी इतना क्यों न कर सकेंगे ! हमारे स्वप्नदोषों को, विचार विकारों को तो ईश्वर दूर करेगा ही । यह सीधा हिसाब है ।

लेखक के ये मित्र, जो मेरे स्वप्नदोष के स्वीकार के बाद पीछे हटे हैं, कभी आगे बढ़े ही न थे । उन्हें झूठा नशा था । वह उतर गया । ब्रह्मचर्यादि महाव्रतों की सत्यता या सिद्धि मुझ जैसे किसी भी व्यक्ति पर अवलम्बन नहीं रखती है । उसके पीछे लाखों मनुष्यों ने तेजस्वी तपश्चर्या की है और कुछ लोगों ने तो सम्पूर्ण विजय भी प्राप्त की है ।

उन चक्रवर्तियों की पंक्ति में खड़े रहने का जब मुझे अधिकार प्राप्त होगा, तब मेरी भाषा में आज से भी अधिक निश्चय दिखाई देगा । जिसके विचार में विकार नहीं है, जिसकी निद्रा का भंग नहीं होता है, जो निद्रित होने पर भी जागृत रह सकता है, वह नीरोग होता है । उसे क्विनैन के सेवन की आवश्यकता नहीं होती । उसके निर्विकार रक्त में ही ऐसी शुद्धि होती है कि उसे मलेरिया इत्यादि के जन्तु कभी दुःख नहीं पहुँचा सकते । यह स्थिति प्राप्त करने के लिये मैं प्रयत्न कर रहा हूँ । उसमें हारने की कोई बात ही नहीं है । उस प्रयत्न में लेखक को, उनके श्रद्धाहीन मित्रों को, और दूसरे पाठकों को, मेरा साथ देने के लिये मैं निमंत्रण देता हूँ और चाहता हूँ कि लेखक की तरह वे मुझसे भी अधिक तीव्र वेग से आगे बढ़ें । जो पीछे पड़े हुए हों व मुझ जैसों के दृष्टान्त से आत्म विश्वासी बनें । मुझे जो कुछ भी सफलता प्राप्त हो सकी है उसे मैं निर्बल होने पर

भी, विकारवश होने पर भी—प्रयत्न करने से, श्रद्धा से, और ईश्वर कृपा से प्राप्त कर सका हूँ।

इसलिये किसी को भी निराश होने का कोई कारण नहीं है। मेरा महात्मा मिथ्या उधार है। वह तो मुझे मेरी बाह्य प्रवृत्ति के—मेरे राजनैतिक कार्य के—कारण प्राप्त है। वह क्षणिक है। मेरे सत्य का, अहिंसा का, और ब्रह्मचर्य का आग्रह ही मेरा अविभाज्य और सबसे अधिक अमूल्यवान् अंग है। उसमें मुझे जो कुछ ईश्वरदत्त प्राप्त हुआ है, उसकी कोई भूल कर भी अवज्ञा न करे, उसमें मेरा सर्वस्व है। उसमें दिखाई देनेवाली निष्फलता सफलता की सीढ़ियाँ हैं। इसलिये निष्फलता भी मुझे प्रिय है।

ब्रह्मचर्य और संयम

[महात्माजी ने श्री पाल ब्यूरो की 'टुवर्ड्स मॉरल बैङ्क्रप्टसी' नामक पुस्तक की विवेचनात्मक आलोचना की है। उसी आलोचना का कुछ सार-गर्भित अंश यहाँ दिया जाता है।]

भ्रष्टाचार के अनेक रूपों से व्यक्ति, कुटुम्ब और समाज की अपार हानि बतलाते हुए श्रीपाल ब्यूरो मनुष्य के स्वभाव के विषय में एक बात लिखते हैं। मनुष्य भ्रमवश यह मान बैठता है कि मेरा अमुक काम स्वतंत्र है, इससे समाज को कोई हानि न होगी। किंतु प्रकृति का नियम ऐसा है कि अत्यंत गुप्त से गुप्त और व्यक्तिगत काम का भी प्रभाव दूर से-दूर तक पड़ता है। अपने काम को पाप माननेवाले भी बार-बार यह घोषित करते हैं कि उनके उस काम का समाज से कोई संबंध नहीं है, वे पाप में इतने फँस जाते हैं कि अपने पाप को पाप मानने में भी उन्हें संदेह होने लगता है, और उसी पाप का वे प्रचार करने लगते हैं, पर पाप छिपा नहीं रह सकता। उस पाप का विष सारे समाज में फैल जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि गुप्त पाप से भी समाज को बड़ी हानि पहुँचती है।

तो फिर इसका उपाय क्या है? लेखक स्पष्ट रूप से बतलाते हैं कि विधान बनाकर इसे नहीं रोका जा सकता। केवल आत्म-संयम ही एक उपाय है। इसलिये इस पक्ष में लोकमत तैयार करना परमावश्यक है कि अविवाहित स्त्री पुरुष पूर्णरूप से ब्रह्मचर्यपूर्वक रहें। जो लोग अपनी काम-वासना पर इतना अधिकार नहीं रख सकते, उनके लिये विवाह करना आवश्यक है और जो विवाह कर चुके हों उन्हें एक-दूसरे के साथ प्रेम और भक्ति रखकर अतिशय संयम के साथ अपना जीवन बिताना चाहिए।

परतु प्राय लोग कहते हैं—ब्रह्मचर्य से स्त्री पुरुष के स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है, और यह कहना कि ब्रह्मचर्य पालन करो, उनकी व्यक्तिगत स्वतत्रता पर और इस अधिकार पर कि वे अपनी इच्छानुसार सुख से जीवन बितावें, असह्य आक्रमण करना है। लेखक इस दलील का मुँहतोड़ उत्तर देते हैं। काम-वासना नींद और भूख जैसी कोई वस्तु नहीं है, जिसके बिना आदमी जीवित ही न रह सके। अगर हम कुछ न खाँय, तो दुर्बल हो जायँगे। अगर सो न सकें तो बीमार पड़ेंगे, और अगर शौच को रोकें, तो कई बीमारियाँ होंगी। किंतु काम वासना को हम प्रसन्नतापूर्वक रोक सकते हैं। और इसका बल भी भगवान ने ही हमें दिया है। आज कल काम वासना स्वाभाविक इच्छा कही जाती है। बात यह है कि आज कल की हमारी सभ्यता में कितनी ही ऐसी उत्तेजक बातें भरी पड़ी हैं, जिनसे हमारे युवक युवतियों में यह इच्छा समय के पहिले ही जागृत हो उठती है।

प्रोफेसर अस्टर्लेन का कथन है—काम-वासना इतनी प्रबल नहीं होती कि उसका विवेक या नैतिक बल से पूर्णरूप से दमन न किया जा सके। हाँ, एक युवक युवती को उचित अवस्था पाने के पूर्व तक सयम से रहना सीखना चाहिए। उन्हें यह जान लेना चाहिए कि उनके आत्म सयम का उन्हें बलिष्ट शरीर तथा उत्तरोत्तर बढते हुए उत्साह बल के रूप मे मिलेगा।

यह बात जितनी बार कही जाय, थोड़ी है कि नैतिक तथा शरीर सबधी सयम से पूर्ण ब्रह्मचर्य रखना सब प्रकार से सभव है और विषय भोग का समर्थन न तो उपर्युक्त किसी दृष्टि से किया जा सकता है और न धर्म की किसी दृष्टि से ही।

प्रोफेसर सर लायनेल बिली कहते हैं—श्रेष्ठ और शिष्ट पुरुषों

ब्रह्मचर्य और संयम

[महात्माजी ने श्री पाल ब्यूरो की 'टुवर्ड्स मॉरल बैंक्रप्टसी' नामक पुस्तक की विवेचनात्मक आलोचना की है। उसी आलोचना का कुछ सार-गर्भित अंश यहाँ दिया जाता है।]

भ्रष्टाचार के अनेक रूपों से व्यक्ति, कुटुम्ब और समाज की अपार हानि बतलाते हुए श्रीपाल ब्यूरो मनुष्य के स्वभाव के विषय में एक बात लिखते हैं। मनुष्य भ्रमवश यह मान बैठता है कि मेरा अमुक काम स्वतंत्र है, इससे समाज को कोई हानि न होगी। किंतु प्रकृति का नियम ऐसा है कि अत्यंत गुप्त-से गुप्त और व्यक्तिगत काम का भी प्रभाव दूर से-दूर तक पड़ता है। अपने काम को पाप माननेवाले भी बार-बार यह घोषित करते हैं कि उनके उस काम का समाज से कोई संबंध नहीं है, वे पाप में इतने फँस जाते हैं कि अपने पाप को पाप मानने में भी उन्हें संदेह होने लगता है, और उसी पाप का वे प्रचार करने लगते हैं, पर पाप छिपा नहीं रह सकता। उस पाप का विष सारे समाज में फैल जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि गुप्त पाप से भी समाज को बड़ी हानि पहुँचती है।

तो फिर इसका उपाय क्या है? लेखक स्पष्ट-रूप से बतलाते हैं कि विधान बनाकर इसे नहीं रोका जा सकता। केवल आत्म-संयम ही एक उपाय है। इसलिये इस पक्ष में लोकमत तैयार करना परमावश्यक है कि अविवाहित स्त्री पुरुष पूर्णरूप से ब्रह्मचर्यपूर्वक रहें। जो लोग अपनी काम-वासना पर इतना अधिकार नहीं रख सकते, उनके लिये विवाह करना आवश्यक है और जो विवाह कर चुके हों उन्हें एक-दूसरे के साथ प्रेम और भक्ति रखकर अतिशय संयम के साथ अपना जीवन बिताना चाहिए।

परतु प्राय लोग कहते हैं—ब्रह्मचर्य से स्त्री पुरुप के स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है, और यह कहना कि ब्रह्मचर्य पालन करो, उनकी व्यक्तिगत स्वतत्रता पर और इस अधिकार पर कि वे अपनी इच्छानुसार सुख से जीवन बितावें, असह्य आक्रमण करना है। लेखक इस दलील का मुँहतोड़ उत्तर देते हैं। काम-वासना नींद और भूख जैसी कोई वस्तु नहीं है, जिसके बिना आदमी जीवित ही न रह सके। अगर हम कुछ न खाँय, तो दुर्बल हो जायँगे। अगर सो न सकें तो बीमार पड़ेंगे, और अगर शौच को रोकें, तो कई बीमारियाँ होंगी। किंतु काम वासना को हम प्रसन्नतापूर्वक रोक सकते हैं। और इसका बल भी भगवान ने ही हमें दिया है। आज कल काम वासना स्वाभाविक इच्छा कही जाती है। बात यह है कि आज कल की हमारी सभ्यता मे कितनी ही ऐसी उत्तेजक बातें भरी पड़ी हैं, जिनसे हमारे युवक युवतियों में यह इच्छा समय के पहिले ही जागृत हो उठती है।

प्रोफेसर अस्टर्लेन का कथन है—काम वासना इतनी प्रबल नहीं होती कि उसका विवेक या नैतिक बल से पूर्णरूप से दमन न किया जा सके। हाँ, एक युवक-युवती को उचित अवस्था पाने के पूर्व तक सयम से रहना सीखना चाहिए। उन्हें यह जान लेना चाहिए कि उनके आत्म सयम का उन्हें बलिष्ट शरीर तथा उत्तरोत्तर बढते हुए उत्साह बल के रूप मे मिलेगा।

यह बात जितनी बार कही जाय, थोड़ी है कि नैतिक तथा शरीर सबधी सयम से पूर्ण ब्रह्मचर्य रखना सब प्रकार से सभव है और विषय भोग का समर्थन न तो उपर्युक्त किसी दृष्टि से किया जा सकता है और न धर्म की किसी दृष्टि से ही।

प्रोफेसर सर लायनेल बिली कहते हैं—श्रेष्ठ और शिष्ट पुरुषों

के उदाहरणों ने अनेक बार सिद्ध कर दिया है कि बड़े से-बड़े विका भी सच्चे और दृढ़ हृदय से तथा रहन-सहन में उचित सतर्कता रख से रोक जा सकते हैं। जब कभी सयम का पालन कृत्रिम साधनों से ही नहीं, बल्कि उसे स्वेच्छा से स्वभाव में परिणत करके किया गय है, तब तब उससे कभी हानि नहीं हुई। अत अविवाहित रहन अति दुष्कर नहीं है। पर यह तभी सभव है जब वह मनोवृत्ति मे स्थूल रूप मे भी समा जाय। पवित्रता का अर्थ कोरा विषय-वासना का दमन करना ही नही है, वरन् विचारों में भी पवित्रता लाना है।

स्विट्जरलैंड का मनोविज्ञानिक फोरल, जिसने इस विषय का यथेष्ट अध्ययन किया है और जो उसी अधिकारयुक्त वाणी में इसकी चर्चा करता है, कहता है—व्यायाम से प्रत्येक प्रकार का शारीरिक बल बढता है। इसके विपरीत किसी भी प्रकार की अकर्मण्यता उसके उत्तेजित करनेवाले कारणों क प्रभाव को दबा देती है।

विषय-सबधी सभी बातें विषय-वासना को अधिक प्रज्वलित कर देती हैं। उन बातों से बचने से उनका प्रभाव शात हो जाता है और विषय-वासना का धीरे धीरे शमन हो जाता है। प्राय युवक यह समझते हैं कि विषय निग्रह करना एक असाधारण एव असभव कार्य है। किंतु वे लोग जो स्वय सयम से रहते हैं, सिद्ध करते हैं कि बिना स्वास्थ्य को हानि पहुँचाए भी पवित्र जीवन बिताया जा सकता है।

विद्वान रिबिंग कहता है—मैं पचीस या तीस वर्ष की अवस्था वाले तथा उससे भी अधिक आयुवाले ऐसे पुरुषों को जानता हूँ, जिन्होंने पूर्ण सयम रक्खा है। ऐसे लोगों को भी मैं जानता हूँ,

जिन्होंने अपने विवाह के पूर्व भी सयम रक्खा है। ऐसे पुरुषों की कमी नहीं है, पर ऐसे लोग अपना ढिंढोरा नहीं पीटते।

मेरे पास ऐसे बहुत-से विद्यार्थियों के अनेक निजी पत्र आए हैं, जिन्होंने इस बात पर आपत्ति की है कि मैंने विषय-सयम की सुसाध्यता पर यथेष्ट महत्त्व नहीं दिया।

डा० एक्टन का कथन है—विवाह के पूर्व युवकों को पूर्ण सयम से रहना चाहिए और यह सभव भी है।

सर जेम्स पैगट की धारणा है—जिस प्रकार पवित्रता से आत्मा को क्षति नहीं पहुँचती, उसी प्रकार शरीर को भी कोई हानि नहीं पहुँचती। इद्रिय सयम ही सदाचार है।

डा० पेरियर कहते हैं—पूर्ण सयम के सबध में यह सोचना कि वह भयावह है, नितात भ्रमात्मक है और उसे दूर करने की चेष्टा करनी चाहिए। क्योंकि यह युवक युवतियों के ही मन में घर नहीं करता है, वरन् उनके माता पिताओं के भी। नवयुवकों के लिये ब्रह्मचर्य शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक तीनों दृष्टियों से उनका रक्षक है।

सर एड्रूक्लार्क कहते हैं—सयम से कोई हानि नहीं पहुँचती और न वह मनुष्य के स्वाभाविक विकास को ही रोकता है, वरन वह तो बल और बुद्धि को तीव्र करता है। असयम से आत्मा का अधिकार जाता रहता है, आलस्य बढता और शरीर ऐसे रोगों का शिकार बन जाता है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी तक चले जाते हैं। यह कहना कि विषय भोग नवयुवकों के स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है केवल भ्रमात्मक ही नहीं है, वरन् उनके प्रति निर्दयता भी है। यह एकदम मिथ्या और हानिकारक है।

डा० सर ब्लेड ने लिखा है—असयम के दुष्परिणाम तो निर्विवाद रूप से सर्वविदित हैं, परतु सयम के दुष्परिणाम तो कपोल कल्पित हैं। उपर्युक्त दो बातों में पहली बात का अनुमोदन तो बडे-बडे विद्वान् करते हैं, पर दूसरी बात को सिद्ध करनेवाला अभी तक कोई नहीं मिला।

डाक्टर मौंटेगजा अपनी एक पुस्तक में लिखते हैं—ब्रह्मचर्य्य से होनेवाले रोग मैंने कहीं नहीं देखे। साधारणतया सभी कोई और विशेष रूप नवयुवक ब्रह्मचर्य से होनेवाले लाभों का तुरत ही अनुभव कर सकते हैं।

डाक्टर ड्यूबाय इस बात का समर्थन करते हुए कहते हैं—उन आदमियों की अपेक्षा, जो पशु-वृत्ति के चगुल से बचना जानते हैं, वे लोग नपुसकता के अधिक शिकार होते हैं, जो विषय भोग के लिये अपनी इद्रियों की लगाम बिलकुल ढीली किए रहते हैं। उनके इस वाक्य का समर्थन डाक्टर फीरी पूर तौर पर करते हैं। उनका मत है—जो लोग मानसिक सयम कर सकें, वे ही ब्रह्मचर्य पालन करें और इसके कारण अपने स्वास्थ्य के सबध में किसी प्रकार का भय न रक्खें। विषय-वासना की पूर्ति पर ही स्वास्थ्य निर्भर नहीं है।

प्रोफेसर एल्फ्रेड फोनियर लिखते हैं—कुछ लोगों ने युवकों से आत्म-सयम के परिणामों के बारे में अनुचित और निराधार बातें कही हैं। परतु मैं विश्वास दिलाता हूँ कि यदि सचमुच आत्म सयम में कुछ हानियाँ हैं, तो मैं उनसे अपरिचित हूँ। और यद्यपि अपने पेशे में उनके बारे मे जानकारी पैदा करने का मुझे अवसर था, तो भी एक चिकित्सक की हैसियत से उनके अस्तित्व का मेरे पास कोई प्रमाण नहीं है।

इसके अतिरिक्त, शरीर शास्त्र के एक ज्ञाता की हैसियत से, मैं तो यही कहूँगा कि लगभग इक्कीस वर्ष की अवस्था के पूर्व वीर्य पूरी तरह पुष्ट नहीं होता और न विषय भोग की आवश्यकता ही उसके पहले प्रतीत होती है। विषयेच्छा प्राय असावधानी किए गए लालन पालन का फल है। बुरा लालन पालन बालक-बालिकाओं में समय से पहले ही कुवासना को उत्तेजित कर देता है।

खैर, कुछ भी हो, यह बात तो निश्चित ही है कि विषय वासना के निग्रह से किसी प्रकार हानि होने की संभावना नहीं है। हानि तो अपरिपक्व अवस्था में विषय-वासना जागृत करके उसकी तृप्ति करने में है।

इतना विश्वस्त प्रमाण देने के बाद, लेखक अत मे १६०२ ई० में, ब्रुसेल्स नगर मे, ससार भर के बड़े-बड़े डॉक्टरों की जो सभा हुई थी, उसमे स्वीकृत यह प्रस्ताव उद्धृत करते हैं—नवयुवकों को सिखाना चाहिए कि ब्रह्मचर्य के पालन से उनके स्वास्थ्य को कभी हानि नहीं पहुँच सकती, बल्कि वैद्यक और शरीर शास्त्र की दृष्टि से तो ब्रह्मचर्य ऐसी वस्तु है जिसको उत्तेजना मिलना चाहिए।

कुछ वर्ष पहले किसी ईसाई विश्वविद्यालय के चिकित्सा विभाग के सभी अध्यापकों ने सर्वसम्मति से घोषित किया था कि यह कहना बिलकुल निराधार है कि ब्रह्मचर्य स्वास्थ्य के लिये कभी हानिकारक हो सकता है। यह बात हम अपने अनुभव और ज्ञान के बल पर कहते हैं। हमारी जान में इस प्रकार के जीवन से कभी कोई हानि होती नहीं पाई गई।

लेखक ने सारे विषय का यों उपसहार किया है—अस्तु, आप यह तो भलीभाति समझ चुके होंगे कि समाज शास्त्री और नीति-

शास्त्री पुकार पुकार कर कहते हैं कि विषयेच्छा भी नींद और भूख के समान कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसकी तृप्ति अनिवार्य्य हो। यह दूसरी बात है कि इसमें कुछ असाधारण अपवाद हों, किंतु सभी स्त्री पुरुषों के लिये, बिना किसी बड़ी कठिनाई या दुःख के, ब्रह्मचर्य पालन सहज है। सामान्यतः ब्रह्मचर्य से तो कभी कोई रोग नहीं होता। हाँ, इसके विपरीत असंयम से बहुत-से भयंकर रोगों की उत्पत्ति अवश्य होती है। पर यदि हम क्षण भर के लिये यह भी मान लें कि वीर्य रक्षा से रोग होता हो तो भी प्रकृति ने ही मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा के लिये, आवश्यकता से अधिक शक्ति के लिये स्वाभाविक स्खलन या मासिक धर्म द्वारा रज वीर्य के निकल जाने का मार्ग तैयार कर दिया है।

इसलिये डा० बीरी का यह कथन बिलकुल ठीक है—यह प्रश्न वास्तविक आवश्यकता या प्रकृति का नहीं है। यह बात सभी कोई जानते हैं कि अगर भूख की तृप्ति न हो, या श्वास बंद हो जाय तो कौन-कौन से दुष्परिणाम हो सकते हैं। पर कोई लेखक यह नहीं लिखता कि अस्थायी या स्थायी, किसी भी प्रकार के संयम के फलस्वरूप अमुक छोटा या बड़ा किसी भी प्रकार का रोग हो सकता है। यदि हम संसार के ब्रह्मचारियों की ओर देखें तो हमको पता चलेगा वे किसी से न तो चरित्रबल में कम हैं, और न संकल्पबल में, शरीर बल में तो ज़रा भी कम नहीं हैं। वे यदि विवाह कर लें तो गृहस्थ धर्म के पालन की योग्यता में भी वे दूसरों से कुछ कम नहीं पाए जायँगे। जो वृत्ति इस प्रकार सहज में ही रोकी जा सकती है, वह न तो आवश्यक है और न स्वाभाविक ही। विषय तृप्ति कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो मनुष्य के शारीरिक विकास के लिये आवश्यक हो। वरन् बात तो ठीक उसके विपरीत है। शरीर के साधारण विकास के लिये पूर्ण संयम का पालन परमा-

वश्यक है। इसलिये वय प्राप्त युवक अपने बल का जितना अधिक सचय कर सकें, उतना ही अच्छा है। क्योंकि उनमें बचपन की अपेक्षा रोग को रोकने की शक्ति कम होती है। इस विकाश काल मे, जब कि देह और मन पूर्णता की ओर बढ़त हैं, प्रकृति को बहुत परिश्रम करना पड़ता है। अस्तु, ऐसे कठिन समय में किसी भी बात की अधिकता बुरी है, किंतु विशेष रूप से विषयेच्छा की उत्तेजना तो हानिकर ही है।

ब्रह्मचर्य और मनोवृत्तियाँ

एक अंग्रेज सज्जन लिखते हैं—'यंग इंडिया' में सन्तान निग्रह पर आपने जो लेख लिखे हैं, उनको मैं बड़ी दिलचस्पी से पढ़ता रहा हूँ। मेरी उम्मीद है कि आपने जे० ए० हडफील्ड की 'साइकालोजी एंड मोरल्स' नामक पुस्तक पढ़ ली है। मैं आपका ध्यान उस पुस्तक के निम्न लिखित उद्धरण की ओर दिलाना चाहता हूँ—

विषयभोग स्वेच्छाचार उस हालत में कहलाता है जब कि यह प्रवृत्ति नीति की विरोधिनी मानी जाती हो और विषयभोग निर्दोष आनन्द तब माना जाता है जब कि इस प्रवृत्ति को प्रेम का चिन्ह माना जाय। विषय-वासना का इस प्रकार व्यक्त होना दाम्पत्य प्रेम को वस्तुतः गाढ़ा बनाता है, न कि उसे नष्ट करता है। लेकिन एक ओर तो मनमाना संभोग करने से और दूसरी ओर संभोग के विचार को तुच्छ सुख मानने के भ्रम में पड़कर उससे परहेज करने से अक्सर अशान्ति पैदा होती है और प्रेम कम पड़ जाता है। यानी उनकी समझ में संभोग करना सन्तानोत्पत्ति के कारणों के सिवा भी स्त्री से प्रेम बढ़ाने का धार्मिक गुण रखता है।

अगर लेखक की बात सच है तो मुझे आश्चर्य है कि आप अपने इस सिद्धान्त का समर्थन किस प्रकार कर सकते हैं कि सन्तान पैदा करने की मंशा से किया हुआ संभोग ही उचित है—अन्यथा नहीं। मेरा तो निजी ख्याल यह है कि लेखक की उपरोक्त बात सच है, क्योंकि महज यही नहीं कि वह एक मानसशास्त्रवेत्ता हैं, बल्कि मुझे खुद ऐसे मामले मालूम हैं कि जिसमें प्रेम को व्यवहार के द्वारा व्यक्त करने की स्वाभाविक इच्छा को रोकने की कोशिश करने से दम्पत्य जीवन नीरस या नष्ट हो गया है।

अच्छा इसे लीजिये—एक युवक और एक युवती एक दूसरे के

साथ प्रेम करते हैं और उनका यह करना सुन्दर तथा ईश्वरकृत व्यवस्था का एक अंग है परन्तु उनके पास अपने बच्चे को तालीम देने के लिए काफी पैसा नहीं है (और मैं समझता हूँ कि आप इससे सहमत हैं कि तालीम वगैरह की हैसियत न रखते हुए संतान पैदा करना पाप है) या यह समझ लीजिये कि सन्तान पैदा करना स्त्री की तन्दुरुस्ती के लिये हानिकारक होगा या यह कि उसके अभी ही बहुत से बच्चे हैं ।

आपके कथनानुसार तो इस दम्पति के सामने दो ही रास्ते हैं—या तो वे विवाह करके अलग-अलग रहें—लेकिन अगर ऐसा होगा तो हडफील्ड की उपरोक्त दलील के मुआफिक उनके बीच मुहब्बत का खात्मा हो चलेगा—या व अविवाहित रहें, लेकिन इस सूरत मे भी उनकी मुहब्बत जाती रहेगी । इसका कारण यह है कि प्रकृति बल के साथ मनुष्यकृत योजनाओं की अवहेलना किया करती है । हाँ, यह बेशक हो सकता है कि वे एक दूसरे से जुदा हो जावें, लेकिन इस अलाहदगी में भी उनके मन मे विकार तो उठते ही रहेंगे । और अगर सामाजिक व्यवस्था ऐसी बदल दें कि सब लोगों के लिए उतने ही बच्चे पैदा करना मुमकिन हो जितने कि वे चाहें, तो भी समाज को अतिशय सन्तानोत्पत्ति का, हर एक औरत को हद से ज्यादा सन्तान उत्पन्न करने का, खतरा तो बना ही रहता है । इसकी वजह यह है कि मर्द अपने को बहुत ज्यादा रोके रहते हुए भी साल में एक बच्चा तो पैदा कर ही लेगा । आपको या तो ब्रह्मचर्य का समर्थन करना चाहिय या सन्तान निग्रह का, क्योंकि वक्त्‌ बेवक्त किये हुए सम्भोग का नतीजा यह हो सकता है कि (जैसा कभी-कभी पादरियों मे हुआ करता है) औरत, ईश्वर की मरजी क नाम पर, मर्द क द्वारा पैदा किया हुआ हर साल एक बच्चा जन्म करने की वजह से मर जाय । जिसे आप आत्मसयम कहते हैं

वह प्रकृति के काम में उतना ही विरोधी है—बल्कि हकीकत ज्यादा जितना कि गर्भाधान को रोकने के कृत्रिम साधन हैं। सम्भव है कि पुरुष लोग इन साधनों की मदद से विषय भोग में ज्यादती करें परन्तु उससे सन्तति की पैदाइश रुक जायगी और अन्त मे उन्हें को दु ख भोगना होगा—अन्य किसी को नहीं। इसके विपरीत जो लोग इन साधनों का उपयोग नहीं करते, वे भी ज्यादती व दोष से कदापि मुक्त नहीं हैं, और उनके दोष को वे ही नहीं, सन्तति भी—जिनकी पैदाइश को वे नहीं रोक सकते हैं, भोगते हैं। इंग्लैंड में आजकल खानों के मालिकों और मजदूरों के बीच जो झगड़ा चल रहा है, उसमें खानों के मालिकों की विजय सम्भवित है। इसका कारण यह है कि खदान वाले बहुत बड़ी तादाद में है। सन्तानोत्पत्ति की निरकुशता से बेचारे बच्चों का ही बिगाड़ नहीं होता, बल्कि समस्त मानव जाति का।

इस पत्र में मनोवृत्तियों तथा उनके प्रभाव का खासा परिचय मिलता है। जब मनुष्य का दिमाग रस्सी को साँप समझ लेता है, तब उस विचार को लिये हुए वह घबरा जाता है, या तो वह भागता है या उस कल्पित साँप को मार डालने की गरज से लाठी उठाता है। दूसरा आदमी किसी गैर स्त्री को अपनी पत्नी मान बैठता है और उसके मन में पशु वृत्ति उत्पन्न होने लगती है। जिस क्षण वह अपनी यह भूल जान लेता है, उसी क्षण उसका वह विकार ठंडा पड़ जाता है।

इसी तरह से उपरोक्त मामले में, जिसका कि पत्रलेखक ने जिक्र किया है, माना जाय। जैसा कि संभोग की इच्छा को तुच्छ मानने के भ्रम में पड़कर उससे परहेज करने से प्राय अशान्तपन उत्पन्न होता है, और प्रेम में कमी आ जाती है यह एक मनोवृत्ति का प्रभाव हुआ, लेकिन अगर सयम प्रेमबन्धन को अधिक दृढ़ बनाने के लिये

रक्खा जाय, प्रेम को शुद्ध बनाने के लिए तथा एक अधिक अच्छे काम के लिये वीर्य को जमा करने के अभिप्राय से किया जाय, तो वह अशान्तपन के स्थान पर शान्ति ही बढ़ावेगा और प्रेम गाठ का ढीला न करके उलट उसे मजबूत ही बनावेगा। यह दूसरी मनवृत्ति का प्रभाव हुआ। जो प्रेम पशुवृत्ति की तृप्ति पर आधारित है, वह आखिर स्वार्थपन ही है। और थोड़े से भी दबाव से वह ठडा पड़ सकता है। फिर, यदि पशु पक्षियों की सभोग-तृप्ति का अध्यात्मिक स्वरूप न दिया जाय, तो मनुष्यों में होनेवाली सभोग-तृप्ति को आध्यात्मिक स्वरूप क्यों दिया जाय? हम जो चीज़ जैसी है वैसी ही उसे क्यों न देखें? प्रति जाति को कायम रखने के लिए यह एक ऐसी क्रिया है, जिसकी ओर हम जबरदस्ती खींचे जाते हैं। हाँ, लेकिन मनुष्य अपवाद स्वरूप है, क्योंकि वही एक ऐसा प्राणी है जिसको ईश्वर ने मर्यादित स्वतंत्र इच्छा दी है और इसके बल से वह जाति की उन्नति के लिये, और पशुओं की अपेक्षा उच्चतर आदर्शों की पूर्ति के लिये, जिसके लिये वह ससार में आया है, इन्द्रियभोग न करने की क्षमता रखता है। सस्कारवश ही हम यों मानते हैं कि सन्तानोत्पत्ति के कारण के सिवाय भी स्त्री-प्रसग आवश्यक और प्रेम की वृद्धि के लिये इष्ट है। बहुतों का अनुभव यह है कि भोग ही के कारण किया हुआ स्त्री प्रसग प्रेम को न तो बढ़ाता है और न उसको स्थिर करने के लिये या उसको शुद्ध करने के लिए आवश्यक है। अलबत्ता ऐसे भी उदाहरण बहुत दिये जा सकते हैं कि जिनमें निग्रह से प्रेम और भी दृढ हो गया है। हाँ, इसमें कोई शक नहीं कि वह निग्रह पति और पत्नी के बीच आपस में आत्मिक उन्नति के लिये स्वेच्छा से किया जाना चाहिए। मानव समाज तो लगातार बढ़ती आनेवाली चीज़ या आध्यात्मिक विकास है। यदि मानव समाज इस तरह उन्नतिशील है, तो उसका आधार शारीरिक

जीवन में असहाय अवस्था या येनसी की जिस भावना का एकछत्र राज्य है, उसने देश के जीवन के सब क्षेत्रों पर अपना असर डाल रक्खा है। अतएव जो बुराइयाँ हमारी आँखों के सामने होती रहती हैं, उन्हें भी हम टाल जाते हैं।

जो शिक्षा प्रणाली साहित्य योग्यता पर ही एकान्त जोर देती है, वह इस बुराई को रोकने के लिए अनुपयोगी ही नहीं है, बल्कि उससे उलटे बुराई को उत्तेजना ही मिलती है। जो बालक सार्वजनिक शालाओं में दाखिल होने से पहले निर्दोष थे, शाला के पाठ्यक्रम के समाप्त होते-होते वे ही दूषित, स्त्रैण, और नामर्द बनते देख गये हैं। विहार समिति ने 'बालकों के मन पर धार्मिक प्रतिष्ठा के संस्कार जमाने' की सिफारिश की है। लेकिन बिल्ली के गले में घंटी कौन बांधे? अकेले शिक्षक ही धर्म के प्रति आदर-भावना पैदा कर सकते हैं। लेकिन वे स्वयं इससे शून्य हैं। अतएव प्रश्न शिक्षकों के योग्य चुनाव का प्रतीत होता है। मगर शिक्षकों के योग्य चुनाव का अर्थ होता है, या तो अब से कहीं अधिक वेतन या फिर शिक्षा के ध्येय का कायापलट—याने शिक्षा को पवित्र कर्तव्य मानकर शिक्षकों का उसके प्रति जीवन अर्पण कर देना। रोमन कैथोलिकों में यह प्रथा आज भी विद्यमान है। पहला उपाय तो हमारे जैसे गरीब देश के लिए स्पष्ट ही असम्भव है। मेरे विचार में हमारे लिए दूसरा मार्ग ही सुलभ है, लेकिन वह भी इस शासन प्रणाली के आधीन रहकर सम्भव नहीं, जिसमें हर एक चीज की कीमत आँकी जाती है और जो दुनियाँ भर में ज्यादा से ज्यादा होती है।

अपने बालकों की नैतिक सुधारणा के प्रति माता पिताओं की लापरवाही के कारण इस बुराई को रोकना और भी कठिन हो जाता है। वे तो बच्चों को स्कूल भेजकर अपने कर्तव्य की इतिश्री मान लेते

हैं। इस तरह हमारे सामने का काम बहुत ही विषादपूर्ण है। लेकिन यह सोचकर आशा भी होती है कि तमाम बुराइयों का एक रामबाण उपाय है, और वह है—आत्मशुद्धि। बुराई की प्रचण्डता से घबरा जाने के बदले हममें-से हर एक को पूरे-पूरे प्रयत्नपूर्वक अपने आस-पास के वातावरण का सूक्ष्म नीरीक्षण करते रहना चाहिए और अपने आपको ऐसे नीरीक्षण का प्रथम और मुख्य केन्द्र बनाना चाहिए। हमें यह सोचकर संतोष नहीं कर लेना चाहिए कि हममें दूसरों की सी बुराई नहीं है। अस्वाभाविक दुराचार कोई स्वतंत्र अस्तित्व की चीज नहीं है। वह तो एक ही रोग का भयंकर लक्षण है। अगर हममें अपवित्रता भरी है, अगर हम विषय की दृष्टि से पतित हैं, तो पहले हमें आत्मसुधार करना चाहिए और फिर पड़ोसियों के सुधार की आशा रखनी चाहिए। आज कल तो हम दूसरों के दोषों के नीरीक्षण में बहुत पटु हो गये हैं और अपने आप को अत्यंत निर्दोष समझते हैं। परिणाम दुराचार का प्रसार होता है। जो इस बात के सत्य को महसूस करते हैं, वे इससे छूटें और उन्हें पता चलेगा कि यद्यपि सुधार और उन्नति कभी आसान नहीं होत, तथापि वे बहुत कुछ सम्भवनीय हैं।

———

ब्रह्मचर्य्य के नैतिक लाभ

प्रो० मोन्टेगजा का मत है—

"ब्रह्मचर्य्य से कई लाभ तत्काल होते हैं। उनका अनुभव यों तो सभी कर सकते हैं, पर नवयुवक विशेष रूप से। ब्रह्मचर्य्य से तुरत ही स्मरण शक्ति स्थिर और सग्राहक, बुद्धि उर्वरा और इच्छाशक्ति बलवान हो जाती है। मनुष्य के सारे जीवन मे ऐसा रूपांतर हो जाता है, जिसकी कल्पना भी स्वच्छाचारियों को कभी नहीं हो सकती। ब्रह्मचर्य्य जीवन में ऐसा विलक्षण सौंदर्य और सौरभ भर देता है कि सारा विश्व नए और अद्भुत रग में रगा हुआ-सा जान पड़ता है, और यह आनद नित्य नवीन मालूम होता है। इधर, ब्रह्मचारी नवयुवकों की प्रफुल्लता, चित्त की शाति और चमक—उधर इन्द्रियों के दासों की अशाति, अस्थिरता और अस्वस्थता में कितना आकाश पाताल का अतर होता है! भला इन्द्रिय-सयम से भी कोई रोग होता हुआ कभी सुना गया है! परतु इन्द्रियों क असयम से होनेवाले रोगों को कौन नहीं जानता? शरीर तो सड़ ही जाता है। हमें यह न भूलना चाहिए कि उसमें भी बुरा परिणाम मनुष्य के मन, मस्तिष्क, हृदय और सद्भावशक्ति पर होता है। स्वार्थ का प्रचार, इन्द्रियों की उद्दाम प्रवृत्ति, चारित्र्य की अवनति ही तो सर्वत्र सुनने में आती है।

इतना होने पर भी जो लोग वीर्य-नाश को आवश्यक मानते हैं, कहते हैं कि हमें शरीर का मन माना उपयोग करने का पूरा अधिकार है, सयम का बधन लगाकर आप हमारी स्वतन्त्रता पर आक्रमण करते हैं, उन्हें उत्तर देते हुए लेखक ने कहा है कि समाज की उन्नति के लिये यह प्रतिबंध आवश्यक है।

उनका मत है—समाज शास्त्री के लिये कर्मों के पारस्पर

आघात-प्रतिघात का ही नाम जीवन है। इन कर्मों का परस्पर कुछ ऐसा अनिश्चित और अज्ञात संबंध है कि कोई एक भी ऐसा कर्म नहीं हो सकता है, जिसका कहीं अलग अस्तित्व हो। सभी जगह उसका प्रभाव पड़ेगा। हमारे गुप्त-से-गुप्त कर्मों, विचारों और मनोभावों का ऐसा गहरा और दूरवर्ती प्रभाव पड सकता है कि हमारे लिये उसकी कल्पना करना भी असभव है। यह कोई हमारा अपना बनाया हुआ नियम नहीं है। यह तो मनुष्य का स्वभाव है—उसकी प्रकृति है। मनुष्य के सभी कामों के इस अटूट सबध का विचार न करके कभी कभी कोई समाज कुछ विषय में व्यक्ति को स्वाधीन बना देना चाहता है। पर उस स्वाधीनता को आचार का रूप देने से ही व्यक्ति अपने को छोटा बना लेता है—वह अपना महत्व खो देता है।

इसके बाद लेखक ने यह दिखलाया है कि जब हमें सब जगह सड़क पर थूकने तक का अधिकार नहीं है, तो भला वीर्य रूपी इस महाशक्ति का मन-माना अपव्यय करने का अधिकार हमे कहाँ से मिल सकता है? क्या यह काम ऐसा है, जो ऊपर के बतलाए हुए समस्त कामों के पारस्परिक अटूट सबध से अलग हो सके? सच पूछो तो इसकी गुरुता के कारण तो इसका प्रभाव और भी गहरा हो जाता है। मान लो, अभी एक नवयुवक और एक लड़की ने यह सबध किया है। वे समझते हैं कि उसमें वे स्वतत्र हैं—उस काम से और किसी को कुछ मतलब नहीं—वह केवल उन दोनों का ही है। वे अपनी स्वतत्रता के भुलावे में पड़ कर यह समझते हैं कि इस काम से समाज का न तो कोई सबध है और न समाज का उसपर कुछ नियत्रण ही सभव है। पर यह उनका लड़कपन है। वे नहीं जानते कि हमारे गुप्त और व्यक्तिगत कर्मों का अत्यत दूर के कामों पर भी कैसा भयावना प्रभाव पड़ता है। क्या इस प्रकार समाज को

तुम नष्ट करना चाहते हो ! तुम चाहो या न चाहो, परन्तु जब तुम केवल आनंद के लिए, अल्पस्थायी या अनुत्पादक ही सही, परन्तु योनि संबंध स्थापित करने का अधिकार दिखलाते हो, तो तुम समाज के भीतर भेद और भिन्नता के बीज डालते हो। हमारे स्वार्थ या स्वच्छंदता से हमारी सामाजिक स्थिति बिगड़ी हुई तो है ही, परंतु अभी सब समाजों में ऐसा ही समझा जाता है कि संतान उत्पन्न करने की शक्ति के व्यवहार सुख में जो दायित्व आ पड़ता है, उसे सब कोई प्रसन्नता-पूर्वक उठावेंगे। इस उत्तरदायित्व को भूल जाने से ही आज पूँजी और श्रम, मजदूरी और विरासत, कर और सैनिक सेवा, प्रतिनिधित्व के अधिकार इत्यादि जटिल समस्याओं का जन्म हुआ है। इस भार को अस्वीकार करने से एकबारगी ही वह व्यक्ति समाज के सारे संगठन को हिला देता है। और इस प्रकार दूसरे का बोझा भारी कर आप हलका होना चाहता है। इसलिये वह किसी चोर, डाकू या लुटेरों से कम नहीं कहा जा सकता। अपनी इस शारीरिक शक्ति के सदुपयोग के लिये भी समाज के सामने हम वैसे ही उत्तरदायी हैं, जैसे अपनी और शक्तियों के लिये। हमारा समाज इस विषय में निरक्षर है और इसलिये उसे हमारे अपने विवेक पर ही उसके उचित उपयोग का भार रखना पड़ा है। और इस कारण इसका उत्तरदायित्व तो कुछ और भी बढ़ जाता है।

स्वाधीनता का बाह्यरूप सुखद मालूम होता है, परंतु वास्तव में वह एक भार-सा है। इसका अनुभव तुम्हें पहली बार में ही हो जाता है। तुम समझते हो कि मन और विवेक दोनों एक हैं, यद्यपि दोनों में तुम्हारी ही शक्ति रहती है, परंतु प्राय दोनों में बहुत भेद देखा जाता है। समय पर तुम किसको मानोगे ? अपनी विवेक बुद्धि की आज्ञा को, या नीच-से-नीच इन्द्रिय भोग को ? यदि इन्द्रिय भोग पर विवेक की विजय होने में ही समाज की उन्नति है, तब तो तुम्हें

इन दोनों में-से एक बात को चुन लेने में कोई कठिनाई न होगी। परन्तु तुम यह कह सकते हो कि मैं शरीर और आत्मा दोनों की साथ-साथ पारस्परिक उन्नति के लिये भी कुछ न-कुछ सयम तो तुम्हें करना ही पड़ेगा। पहले इन विलास से भावों को नष्ट कर दो तो पीछे तुम जो चाहोगे, हो सकोगे।

महाशय गैबरियल सीलेस कहते हैं—हम बार-बार कहते हैं कि हमे स्वतन्त्रता चाहिए—हम स्वतत्र होंगे। परन्तु हम नहीं जानते कि यह स्वतन्त्रता कर्त्तव्य की कैसी कठोर बेडी बन जाती है। हमें यह नहीं ज्ञात है कि हमारी इस नक़ली स्वतन्त्रता का अर्थ है, इन्द्रियों की दासता, जिससे हमे न तो कभी कष्ट का अनुभव होता है और इसलिये न कभी हम उसका विरोध ही करते हैं।

सयम मे शाति है और असमय तो अशातिरूपी महाशत्रु का घर है। कामवासनाएँ यों तो सभी समय मे कष्टदायी हो सकती हैं; परन्तु युवावस्था में तो यह महाव्याधि हमारी बुद्धि को भ्रष्ट कर देती है। जिस नवयुवक का किसी स्त्री से पहले पहल सबध होता है, वह नहीं जानता कि वह अपने नैतिक, मानसिक और शारीरिक जीवन के अस्तित्व के साथ खेल कर रहा है। उसे यह भी नहीं ज्ञात है कि उसके इस काम की याद उसे बारबार आकर सताएगी और उसे अपनी इन्द्रियों की बड़ी बुरी दासता करनी पड़ेगी। कौन नहीं जानता कि एक-से एक अच्छे लड़के, जिनसे भविष्य में बहुत कुछ आशा की जा सकती थी, नष्ट हो गए और उनके पतन का आरभ उनश पहली बार के नैतिक पतन से ही हुआ था।

मनुष्य का जीवन उस बरतन के समान है, जिसमें तुम यदि पहली बूँद में ही मैला छोड देते हो तो फिर लाख पानी डालते रहो, सभी गदा होता जायगा।

इङ्गलैंड के प्रसिद्ध शरीर शास्त्री महाशय कैंड्रिक ने भी तो कहा है—कामवासना की तृप्ति केवल नैतिक दोष पर ही नहीं है। उससे शरीर को भी हानि पहुँचती है। यदि इस इच्छा के सम्मुख तुम झुकने लगो, तो यह प्रबल होगी, और तुम्हारे ऊपर और अत्याचार करने लग जायगी। यदि तुम्हारा मन दोषी है तो तुम उसकी बातें सुनोगे और उसकी शक्ति बढ़ाते जाओगे।

ध्यान रक्खो कि कामवासना की प्रत्येक तृप्ति तुम्हारी दासता की जञ्जीर की एक नई कड़ी बन जायगी। फिर तो इस बेड़ी के तोड़ने का बल ही तुममें न रहेगा और इस तरह तुम्हारा जीवन एक अज्ञानजनित अभ्यास के कारण नष्ट हो जायगा। सबसे उत्तम उपाय तो उच्च विचारों को उत्पन्न करना और समस्त कार्यों में संयम से काम लेना ही है।

डाक्टर फैंक लिखते हैं—कामवासना के ऊपर मन और इच्छा का पूर्ण अधिकार रहता है। कारण, यह कोई अनिवार्य्य शारीरिक आवश्यकता नहीं है। यह तो केवल इच्छा-मात्र है। इसका पालन हम जान बूझ कर ही अपनी इच्छानुसार करते हैं—स्वभावतः नहीं।

ब्रह्मचर्य का रक्षक भगवान्

एक सज्जन पूछते हैं—आपने एक बार काठियावाड़ की यात्रा में किसी जगह कहा था कि मैं जो तीन बहनों से बच गया सो फल ईश्वर-नाम के भरोसे। इस सिल्सिले में 'सौराष्ट्र' ने कुछ ऐसी बातें लिखी हैं जो समझ में नहीं आतीं। ऐसा कुछ लिखा है कि आप मानसिक पापवृत्ति से न बच पाये। इसका अधिक खुलासा करेंगे, तो कृपा होगी।

पत्र-लेखक से मेरा परिचय नहीं है। जब मैं बम्बई से रवाना हुआ तब उन्होंने यह पत्र अपने भाई के हाथ मुझे पहुँचाया। यह उनकी तीव्र जिज्ञासा का सूचक है। ऐसे प्रश्नों की चर्चा सर्व साधारण के सामने आम तौर पर नहीं की जा सकती। यदि सर्व साधारण जन मनुष्य के खानगी जीवन में गहरे पैठने का रिवाज डालें तो स्पष्ट बात है कि उसका फल बुरा आये बिना न रहे।

पर इस उचित या अनुचित जिज्ञासा से मैं नहीं बच सकता। मुझे बचने का अधिकार नहीं। इच्छा भी नहीं। मेरा खानगी जीवन सार्वजनिक हो गया है। दुनियाँ में मेरे लिये एक भी बात ऐसी नहीं है, जिसे मैं खानगी रख सकूं। मेरे प्रयोग आध्यात्मिक हैं। कितने ही नये हैं। उन प्रयोगों का आधार आत्मनिरीक्षण पर बहुत है। 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्ड' इस सूत्र के अनुसार मैंने प्रयोग किये हैं। इसमे ऐसी धारणा समाविष्ट है कि जो बात मेरे विषय में सम्भवनीय है औरों के विषय में भी होगी। इसलिये मुझे कितने ही गुह्य प्रश्नों के भी उत्तर देने की जरूरत पड़ जाती है।

फिर पूर्वोक्त प्रश्न का उत्तर देते हुए राम नाम की महिमा बताने

का भी अवसर मुझे अनायास मिलता है। उसे मैं कैसे खो सकता हूँ ?

तो अब सुनिये, किस तरह मैं तीनों प्रसगों पर ईश्वरकृपा से बच गया। तीनों प्रसंग वार वधुओं से सम्बन्ध रखते हैं। दो के पास भिन्न भिन्न अवसर पर मुझे मित्र लोग ले गये थे। पहले अवसर पर मैं झूठी शरम का मारा वहा जा फँसा और यदि ईश्वर ने न बचाया होता तो जरूर मेरा पतन हो जाता। इस मौके पर जिस घर में मैं ले जाया गया था, वहा उस स्त्री ने ही मेरा तिरस्कार किया। मैं यह बिल्कुल नहीं जानता कि ऐसे अवसरों पर किस तरह क्या बोलना चाहिए, किस तरह बरतना चाहिये। इसके पहले ऐसी स्त्रियों के पास तक बैठने में मैं लाछन मानता था। इससे इस घर में दाखिल होते समय भी मेरा हृदय काप रहा था। मकान में जाने के बाद उसके चेहर की तरफ भी मैं न देख सका। मुझे पता नहीं, उसका चेहरा था भी कैसा। ऐसे मूढ़ को वह चपला क्यों न निकाल बाहर करती? उसने मुझे दो चार बातें सुनाकर रवाना कर दिया। उस समय तो मैंने यह न समझा कि इश्वर ने बचाया। मैं तो खिन्न होकर दबे पाँव वहाँ से लौटा। मैं शरमिन्दा हुआ और अपनी मूढ़ता पर मुझे दु ख भी हुआ। मुझे आभास हुआ मानों मुझमें कुछ राम नहीं है। पाछे मैंने जाना कि मेरी मूढता ही मेरी ढाल थी। ईश्वर ने मुझे बेवकूफ बनाकर ही उबार लिया। नहीं तो मैं, जो कि बुरा काम करने क लिए गंदे घर में घुसा, कैसे बच सकता था?

दूसरा प्रसग इससे भी भयकर था। यहा मेरी बुद्धि पहले अवसर की तरह निर्दोप न थी। हालाकि सावधान ज्यादा था। फिर मेरी पूजनीया माताजी की दिलाई प्रतिज्ञा रूपी ढाल भी मेरे पास थी। पर इस अवसर पर प्रदेश था विलायत। मैं भर जवानी में था

दो मित्र एक घर में रहते थे। थोड़े ही दिन के लिये उस गाव में गये थे। मकान मालकिन आधी वेश्या जैसी थी। उसके साथ हम दोनों ताश खेलने लगे। उन दिनों मैं समय मिल जाने पर ताश खेला करता था। विलायत में मा-बेटा भी निर्दोष भाव से ताश खेल सकते हैं, खेलते हैं। उस समय भी हमने ताश का खेल रिवाज के अनुसार अंगीकार किया। आरंभ तो बिलकुल निर्दोष था। मुझे तो पता भी न था कि मकान मालकिन अपना शरीर बेंचकर आजीविका प्राप्त करती है। पर ज्यों-ज्यों खेल जमने लगा त्यों-त्यों रंग भी बदलने लगा। उस बाई ने विषय चेष्टा शुरू की। मैं अपने मित्र को देख रहा था। उन्होंने मर्यादा छोड दी थी। मैं ललचाया। मेरा चहरा तमतमाया। उसमें व्यभिचार का भाव भर गया था। मैं अधीर हो रहा था।

पर जिसे रखता है उसे कौन गिरा सकता है? राम उस समय मेरे मुख मे तो न था, पर वह मेरे हृदय का स्वामी था। मेरे मुख में तो विषयोत्तेजक भाषा थी। इन सज्जन मित्र ने मेरा रंग-ढंग देखा। हम एक दूसरे से अच्छी तरह परिचित थे। उन्हें ऐसे कठिन प्रसंगों की स्मृति थी जब कि मैं अपने ही इरादे से पवित्र रह सका था। पर इस मित्र ने देखा कि इस समय मेरी बुद्धि बिगड गयी है। उन्होंने देखा कि यदि इस रंगत मे रात ज्यादा जायगी तो उनकी तरह मैं भी पतित हुए बिना न रहूँगा।

विषयी मनुष्यों मे भी सुवासनाएँ होती हैं। इस बात का परिचय मुझे इस मित्र के द्वारा पहले पहल मिला। मेरी दीन दशा देखकर उन्हें दुःख हुआ। मैं उनसे उम्र में छोटा था। उनके द्वारा राम ने मेरी सहायता की। उन्होंने प्रेमबाण छोड़े—"मोनिया! (यह मोहन दास का दुलार का नाम है। मेरे माता, पिता, तथा हमारे कुटुम्ब

के सबसे बड़े चचेरे भाई। मुझे इसी नाम से पुकारते थे। इस नाम के पुकारनेवाले चौथे ये मित्र मेरे धर्मभाई साबित हुए) मोनिया, होशियार रहना! मैं तो गिर चुका हूँ, तुम जानते ही हो। पर तुम्हें न गिरने दूँगा। अपनी माँ के पास की प्रतिज्ञा याद करो। यह काम तुम्हारा नहीं! भागो यहाँ से, जाओ अपने बिछौना पर। हटो, ताश रख दो!"

मैंने कुछ जवाब दिया था नहीं, याद नहीं पड़ता। मैंने ताश रख दिये। चरा दुःख हुआ। लज्जित हुआ। छाती धड़कने लगी। उठ खड़ा हुआ। अपना बिस्तर सँभाला।

मैं जगा। राम नाम शुरू हुआ। मन में कहने लगा, कौन बचा, किसने बचाया, धन्य प्रतिज्ञा! धन्य माता! धन्य मित्र! धन्य राम! मेरे लिये तो यह चमत्कार ही था। यदि मेरे मित्र ने मुझ पर रामबाण न चलाये होते तो मैं आज कहाँ होता!

राम बाण वाग्या रे होय ते जाणे
प्रेम-बाण वाग्या रे होय ते जाणे

मेरे लिये तो यह अवसर ईश्वर साक्षात्कार था।

अब यदि मुझे संसार कहे कि ईश्वर नहीं, राम नहीं, तो मैं उसे झूठा कहूँगा। यदि उस भयंकर रात को मेरा पतन हो गया होता तो आज मैं सत्याग्रह की लड़ाइयाँ न लड़ा होता, तो मैं अस्पृश्यता के मैल को न धोता होता, मैं चरखे की पवित्र ध्वनि न उच्चार करता होता, तो आज मैं अपने को करोड़ों स्त्रियों के दर्शन करके पावन होने का अधिकारी न मानता होता, तो मेरे आसपास—जैसे किसी बालक के आसपास हों—लाखों स्त्रियाँ आज निःशंक होकर न बैठती होतीं। मैं उनसे दूर भागता होता और वे भी मुझसे दूर रहतीं और यह उचित भी था। अपनी जिन्दगी का सबसे अधिक भयंकर समय

मैं इस प्रसग को मानता हूँ। स्वच्छन्दता का प्रयोग करते हुए मैंने सयम सीखा। राम को भूल जाते हुए मुझे राम के दर्शन हुए। अहो!

रघुवीर तुमको मेरी लाज।
हौं तो पतित पुरातन कहिए पारउतारो जहाज॥

तीसरा प्रसग हास्यजनक है। एक यात्रा में जहाज के कप्तान के साथ मेरा मेल जोल हो गया। एक अगरेज यात्री के साथ भी जहाँ जहाँ जहाज बन्दर करता वहाँ वहाँ कप्तान और कितने ही यात्री वेश्याघर तलाश करते। कप्तान ने अपने साथ मुझे बन्दर देखने चलने का न्यौता दिया। मैं उसका अर्थ नहीं समझता था। हम एक वेश्या के घर क सामने आकर खड़े हो गये। तब मैंने समझा कि बन्दर देखन जाने का अर्थ क्या है। तीन स्त्रियाँ हमारे सामने खडी की गयीं। मैं तो स्तम्भित हो गया। शर्म के मारे न कुछ बोल सका, न भाग सका। मुझे विषयेच्छा तो जरा भी न थी। व दो तो कमर में दाखिल हो गये। तीसरी बाई मुझे अपने कमरे में ले गयी। मैं विचार ही कर रहा था कि क्या करूँ—इतने में दोनों बाहर आये। मैं नहीं कह सकता, उस औरत ने मेरे सम्बन्ध मे क्या ख्याल किया होगा। वह मेर सामने हँस रही थी। मेरे दिल पर उसका कुछ असर न हुआ। हम दोनों की भाषा भिन्न थी। सो मेर बोलने का काम तो वहाँ था ही नहीं। उन मित्रों ने मुझे पुकारा तो मैं बाहर निकल आया। कुछ शरमाया तो जरूर। उन्होंने अब मुझे ऐसी बातों मे बेवकूफ समझ लिया। उन्होंने अपने आपस में मेरी दिल्लगी भी उड़ाई। मुझ पर रहम तो जरूर खाया। उस दिन से मैं कप्तान के नजदीक दुनियाँ के बुद्धुओं में शामिल हुआ। फिर उसने मुझे बन्दर देखने का न्यौता कभी न दिया। यदि मैं अधिक समय वहाँ रहता, अथवा उस बाई की भाषा

अखंड ब्रह्मचर्य

अखंड ब्रह्मचर्य के संबंध में ब्यूरो महाशय लिखते हैं—विषय-वासना की दासता से छुटकारा प्राप्त करनेवाले वीरों में सबसे पूर्व उन युवकों तथा युवतियों का नाम लिया जाता है, जिन्होंने किसी महत् कार्य की सिद्धि के लिये जीवन भर अविवाहित रहकर ब्रह्मचर्य पालन का व्रत ले लिया है। उनके उस व्रत के भिन्न भिन्न कारण होते हैं। कोई तो अपने अनाथ भाई-बहनों के लिये माता पिता का स्थान ले लेता है, कोई अपनी ज्ञान पिपासा की शांति के लिये जीवन उत्सर्ग करना चाहता है। कोई रोगियों एवं दीन-दुखियों की सेवा में, कोई धर्म, जाति अथवा शिक्षा की सेवा में ही अपना जीवन लगा देने की अभिलाषा रखता है। इस व्रत के पालन में किसी को तो अपने मन के विकारों से लड़ाई लड़नी पड़ती है और किसी के लिये, कभी-कभी सौभाग्य से, पहले ही से पथ निर्दिष्ट रहता है। वे या तो अपने मन में यह प्रतिज्ञा कर लेते हैं, या भगवान को साक्षी बना लेते हैं कि जो उद्देश्य उन्होंने चुन लिया, सो चुन लिया। अब विवाह की चर्चा भी चलाना व्यभिचार होगा। एक बार माइकेल एंजेलो से, जो एक प्रसिद्ध चित्रकार थे, किसी ने कहा कि तुम अब ब्याह कर लो, तो उसने उत्तर दिया—चित्रकला मेरी ऐसी पत्नी है, जो किसी भी सौत का आगमन कभी सहन नहीं कर सकती।

मैं अपने योरोपियन मित्रों के अनुभव से ब्यूरो कथित प्रायः सभी प्रकार के पुरुषों का उदाहरण देकर, उनकी इस बात का समर्थन कर सकता हूँ कि बहुतेरे मित्रों ने जीवन भर के लिये ब्रह्मचर्य का पालन किया है। भारतवर्ष को छोड़कर और किसी भी देश में बाल्यकाल से ही बच्चों को विवाह की बातें नहीं सुनाई जातीं

भारतवर्ष में तो माता पिता की यही इच्छा रहती है कि लड़के का विवाह कर दिया जाय और उसके जीवन निर्वाह के साधन का उचित प्रबंध हो जाय। पहली बात असमय में ही बुद्धि और शरीर के नाश करने का कारण होती है और दूसरी से आलस्य आकर घेर लेता है। प्राय दूसरों की कमाई पर जीवन बिताने की भी आदत पड़ जाती है। यहाँ तक कि हम ब्रह्मचर्य-व्रत के पालन और दरिद्रता के स्वीकार करने को मनुष्य कोटि के कर्त्तव्य से परे मान बैठते हैं। हम कहने लगते हैं कि यह काम तो केवल योगी और महात्माओं से होना सम्भव है। योगी और महात्मा तो असाधारण पुरुष ही होते हैं। हम यह भूल जाते हैं कि जो समाज ऐसी पतित दशा में है, उसमे सच्चे योगी और महात्माओं का होना ही असम्भव है। सदाचार की गति यदि कछुए की गति के समान मंद और धेराक है तो दुराचार की गति खरगोश के समान द्रुत गामिनी है। पश्चिम के देशों से व्यभिचार का मसाला हमारे पास विद्युत्गति से दौड़ा चला आता है और अपनी मनोहर चमक-दमक से हमारी आँखों में चकाचौंध उत्पन्न कर देता है। तब हम सत्य को भूल जाते हैं। पश्चिमी तारों के द्वारा जीवन के प्रत्येक क्षण में जो वस्तुएं यहाँ आती हैं, प्रति दिन विदेशी माल के भरे हुए जो जहाज यहाँ उतरते हैं, उनके द्वारा जो चमक दमक यहाँ आती है, उसे देखकर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते रहने में हमें लज्जा तक आने लगती है, यहाँ तक कि निर्धनता और सादगी को हम पाप कहने को तैयार हो जाते हैं। परंतु भारतवर्ष में पश्चिम का जो दर्शन होता है, यथार्थ मे पश्चिम वैसा नहीं है। दक्षिणी अफरीका के गोरे वहाँ के निवासी थोड़े से भारतीयों को ही देखकर जिस प्रकार भारतीयों के चरित्र की कल्पना करने में भूल करते हैं, उसी प्रकार हम भी इन थोड़े से नमूनों से समस्त पश्चिम की

कल्पना करके भूल करते हैं। जो इस भ्रम के पर्दे को हटाकर भीतरी स्थिति का अवलोकन कर सकते हैं, वे देखेंगे कि पश्चिम में भी सदाचार और पवित्रता के, कुछ छोटे से किंतु अशेष, निर्झर अवश्य हैं। उस महामरुभूमि में तो ऐसे झरने हैं, जहाँ कोई भी पहुँचकर जीवन का पवित्र-से पवित्र अमृतोपम जल पान कर संतोष लाभ कर सकता है। वहाँ के निवासी ब्रह्मचर्य्य और निर्धनता का व्रत अपनी इच्छा से लेकर जीवनभर उसका निर्वाह करते हैं। साथ ही वे कभी इस व्रत के कारण भूलकर भी अभिमान नहीं करते, उसका हल्ला नहीं मचाते। वे यह सब बड़ी नम्रता के साथ अपने किसी आत्मीय अथवा स्वदेश की सेवा के लिये करते हैं। पर हम लोग धर्म की बातें इस तरह किया करते हैं, मानों धर्म और आचरण में कोई सम्बध ही न हो। और वह धर्म भी केवल हिमालय के एकांतवासी योगियों के लिये ही है! हमारे दैनिक जीवन के आचार एवं व्यवहार पर जिस धर्म का कोई प्रभाव न हो, वह धर्म एक हवाई ख्याल के सिवा और कुछ नहीं है। सभी नवयुवा पुरुष-स्त्रियों को यह जान लेना चाहिए कि अपने निकटवर्ती वातावरण को पवित्र बनाना और अपनी कमजोरी को दूर करके ब्रह्मचर्य्य-व्रत का पालन करना उनका मुख्य कर्त्तव्य है। उनको यह भी समझ लेना चाहिए कि यह कार्य उतना कठिन भी नहीं है, जितना वे सुनते आ रहे हैं।

ब्यूरो महाशय लिखते हैं कि यदि हम यह मान भी लें कि विवाह करना आवश्यक ही होता है, तो भी सभी पुरुष न तो विवाह कर ही सकते हैं और न सबके लिये यह आवश्यक और उचित ही कहा जा सकता है। इसके सिवा कुछ लोग ऐसे भी तो होते हैं, जिनके लिये ब्रह्मचर्य्य व्रत के पालन के सिवा और कोई दूसरा मार्ग भी नहीं है। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो अपने

व्यवसाय अथवा दरिद्रता के कारण विवाह नहीं कर पाते। कितने ही विवाह न करने को इसलिये विवश होते हैं कि उन्हें अपने योग्य वर अथवा कन्या नहीं मिलती। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिन्हें कोई ऐसा रोग होता है जिसका असर उनकी संतान पर पड़ जाने का खतरा रहता है। इसके सिवा और भी कुछ ऐसे कारण भी होते हैं, जिनसे विवाह करने का विचार ही त्याग देना पड़ता है। किसी उत्तम कार्य अथवा उद्देश्य की पूर्ति के लिये असक्त एवं सपत्न स्त्री पुरुषों के ब्रह्मचर्य व्रत से उन लोगों को भी अपने व्रत पालन में अवलंब प्राप्त होता, जो विवश होकर ब्रह्मचारी बने रहते हैं। जो अपनी इच्छानुसार ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करता है उसे अपना जीवन कभी अपूर्ण नहीं प्रतीत होता। वरन् वह तो ऐसे ही जीवन को उच्च किंवा परमानंद पूर्ण जीवन मानता है। क्या विवाहित और क्या अविवाहित दोनों तरह के ब्रह्मचारियों को उनक व्रत पालन में उससे उत्साह भी मिलता है। वह उनका मार्ग-दर्शक बनता है।

अब ब्यूरो महाशय फॉर्टर का मत इस प्रकार देते हैं—

ब्रह्मचर्य व्रत विवाह संस्था का बड़ा सहायक होता है। कारण, यह विषय वासना और विकारों से मनुष्य की मुक्ति का चिह्न है। इसे देखकर विवाहित दंपति यह समझते हैं कि वे परस्पर एक दूसरे की काम-वासना की ही पूर्ति के साधन नहीं हैं, वरन् कामेच्छा के रखते हुए भी वे स्वतन्त्र हैं और उनकी आत्मा भी मुक्त है। जो लोग ब्रह्मचर्य का मजाक उड़ाया करते हैं, वे यह नहीं जानते कि इस प्रकार वे व्यभिचार और बहु विवाह का समर्थन किंवा पोषण करते हैं। यदि यह मान लिया जाय कि विषय वासना को तृप्त करना बहुत आवश्यक है तो फिर विवाहित दंपति से पवित्र जीवन बिताने

की आशा किस प्रकार की जा सकती है? ये यह भूल ही जाते हैं कि रोग के वश अथवा किसी अन्य कारण से, कभी-कभी स्त्री पुरुष में-से एक की कमजोरी के कारण, दूसरे के लिये जीवनभर को ब्रह्मचारी रहना अनिवार्य रूप से आवश्यक हो जाता है। यदि और दृष्टि से न सही, तो केवल इसी दृष्टि से ब्रह्मचर्य की जितनी गरिमा हम स्वीकार करते हैं, उतनी ही उच्चता पर हम एक पत्नी-व्रत के आदर्श को आसीन कर देते हैं।

ब्रह्मचर्य्य और आरोग्यता

आरोग्य की बहुतेरी कुञ्जियाँ हैं और उनकी आवश्यकता है, पर उसकी मुख्य कुञ्जी ब्रह्मचर्य्य है। अच्छा भोजन और स्वच्छ पानी इत्यादि से हम आरोग्य लाभ कर सकते हैं। पर जिस प्रकार हम जितना अर्जन करें, उतना ही उड़ा दें, तो कुछ बचत न होगी, उसी प्रकार हम जितना आरोग्य लाभ करें, उतना ही नष्ट कर दें, तो क्या बचत होगी? इसलिये स्त्री और पुरुष दोनों को आरोग्य रूपी धन सचय के लिये ब्रह्मचर्य की पूर्ण आवश्यकता है। इसमें किसी को कुछ भी संदेह नहीं हो सकता। जिसने अपने वीर्य्य का रक्षण किया है, वही वीर्यवान् कहला सकता है।

अब प्रश्न यह है कि ब्रह्चर्य है क्या? पुरुष का स्त्री से और स्त्री का पुरुष से भोग न करना ही ब्रह्मचर्य्य है। 'भोग न करने का' अर्थ यह नहीं है कि एक दूसरे को विषय की इच्छा से स्पर्श न कर, वरन् इस विषय का विचार भी न कर, यहाँ तक कि इसके सबध में स्वप्न तक न देखें। पुरुष स्त्री और स्त्री पुरुष को देखकर विह्वल न हो जाय। प्रकृति ने हमें जो गुप्त शक्ति प्रदान की है—उसका दमनकर अपने शरीर में ही सग्रहकर हमें उसका उपयोग अपनी आरोग्य-वृद्धि में करना चाहिए। और यह आरोग्य केवल शरीर का ही नहीं, मन, बुद्धि और स्मरण शक्ति का भी होना चाहिए।

आइए, अब जरा देखें कि हमारे आस-पास कौतुक हो रहा है। छोटे-बड़े सभी स्त्री पुरुष प्राय इस मोह नद मे डूबे पड़े हैं। हम प्राय कामेंद्रिय के दास बन जाते हैं। बुद्धि ठिकाने नहीं रहती, आँखों पर परदा-सा पड़ जाता है, और हम कामाध हो जाते हैं। कामोन्मत्त स्त्री पुरुष लड़के-लड़कियों को मैंने बिलकुल पागल समान देखा है। मेरा अपना अनुभव भी इससे भिन्न नहीं है। जब जब मैं

उस दशा को पहुँचा हूँ, तब-तब मैं अपनी सुध बुध तक भूल गर
हूँ ! यह वस्तु ही ऐसी है । एक रत्ती सुख के लिये हम मन भर
भी अधिक बल पल भर में खो बैठते हैं । मद उतरने पर हम अप
खजाना खाली पाते हैं । दूसरे दिन सबेरे हमारा शरीर भारी रह
है, सथा आराम नहीं मिलता, शरीर सुस्त मालूम होता है, म
ठिकाने नहीं रहता । फिर ज्यों-त्यों-त्यों बनने के लिये हम दूध
काढ़ा पीते हैं, गजवेलिका चूर्ण और याकूतिया (मोती पड़ी हु
पुष्टिकारक दवाइयाँ) खाते हैं और वैद्यों के पास जाकर पौष्टिक द
माँगते हैं । सदा इस खोज और छान बीन में रहते हैं कि क्या खा
से कामोद्दीपन होगा ? इसी प्रकार दिन और वर्ष बिताते बिताते ह
शरीर शक्ति और बुद्धि से हीन होते जाते हैं और वृद्धावस्था
बिलकुल ही बुद्धिहीन हो जाते हैं ।

किंतु सच पूछिये बुद्धि बुढ़ापे में मंद होने के बदले और ती
होनी चाहिये । हमारी स्थिति ऐसी होनी चाहिए कि इस शरी
द्वारा प्राप्त अनुभव हमारे तथा दूसरों के लिये लाभदायक हो सकें
ब्रह्मचर्य पालन करनेवालों की ऐसी ही स्थिति रहती है । न वे
उन्हें मृत्यु का भय ही रहता है और न वे मरते दम तक ईश्वर क
ही भूलते हैं । वे मृत्यु के समय यन्त्रणा नहीं भोगते । वे हँसत-हँसत
शरीर त्यागकर भगवान को अपना हिसाब देने चले जाते हैं । वही
सच्चे पुरुष हैं और इसके प्रतिकूल मरनेवाले स्त्रीवत् हैं । इन्हीं क
आरोग्य यथार्थ समझा जायगा ।

हम इस साधारण सी बात को नहीं सोचते कि संसार में प्रमाद
मत्सर, अभिमान, आडंबर, क्रोध, अधीरता आदि विषयों का मूल
कारण ब्रह्मचर्य का भंग ही है । मन के वश में न रहने से और
नित्य बार-बार बच्चों से भी अधिक अबोध बन जाने से हम जान

या अनजान मे कौन-सा अपराध न कर बैठेंगे, वह कौन-सा घोर पाप कर्म होगा, जिसे करन में आगा पीछा सोचेंगे ?

पर क्या किसी ने ऐसे ब्रह्मचारी को देखा है ? कुछ लोग यह भी समझते हैं कि सब लोग यदि ऐसा ब्रह्मचर्य पालन करने लगें, तो ससार का सत्यानाश न हो जाय ! इस सबध में विचार करन पर धर्म-चर्चा का विषय आ जाने की सभावना है। इसलिये इसे छोड़कर यहाँ केवल सासारिक दृष्टि से ही विचार किया जायगा। हमार मत में इन दोनों प्रश्नों की जड में हमारी कायरता और मिथ्या भय है। हम ब्रह्मचर्य का पालन करना नहीं चाहते, इसलिये उसमें-से निकल भागने के बहाने ढूँढा करत हैं। ब्रह्मचर्य पालन करनेवाले ससार में अनेक हैं, पर यदि वे साधारणतया मिल जाँय तो उनका मूल्य ही क्या रहे ? हीरा निकालने में सहस्रों मजदूरों को पृथ्वी के अदर खानों मे घुसना पड़ता है, तब कहीं पर्वताकार ककड़ियों क ढेर से केवल मुट्ठी भर हीर मिलते हैं। अब ब्रह्मचर्य पालन करनेवाले हीर की खोज में कितना प्रयत्न करना चाहिए, यह बात सब लोग त्रैराशिक लगाकर उसके उत्तर द्वारा जान सकेंगे। ब्रह्मचर्य पालन करन में यदि ससार का नाश भी होता हो, तो इससे हमें क्या ? हम ईश्वर तो हैं नहीं कि ससार की चिंता करें। जिसने उसे बनाया है वह उसे सँभालेगा। यह देखने की भी आवश्यकता नहीं कि अन्य लोग ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं या नहीं। हम व्यापार, वकालत और डॉक्टरी आदि पेशों में पड़ते समय तो कभी इसका विचार नहीं करते कि यदि सब लोग व्यापारी, वकील अथवा डॉक्टर हो जाँय तो क्या होगा ! जो स्त्री-पुरुष ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे उन्हें अत में समयानुसार दोनों प्रश्नों का उत्तर अपने आप मिल जायगा।

सासारिक पुरुष इन विचारों के अनुसार कैसे चल सक्ता है! विवाहित पुरुष क्या करें ? बाल बच्चेवालों को कैसे चलना चाहिए? काम शक्ति जिनके वश नहीं रहती वे क्या करें! इस विषय मे जो सबसे उत्तम उपाय बतलाया जा चुका है, उस आदर्श को सामने रखकर हम ठीक वैसा ही अथवा उससे न्यूनतर कर सक्ते हैं। लड़कों को जब अक्षर लिखना सिखाया जाता है तो उनके सामने अक्षर का उत्तम रूप रक्खा जाता है, वे अपनी शक्ति के अनुसार उसकी हूबहू या उससे मिलती जुलती नक़लें उतारते हैं। इसी तरह हम भी अखंड ब्रह्मचर्य्य का आदर्श अपने सामने रखकर उसकी नक़ल करते करते अभ्यास द्वारा उत्तरोत्तर उसमें पूर्णतया प्राप्त कर सकेंगे। विवाह यदि हो गया है तो क्या हुआ, प्रकृति के नियमानुसार जब तुम दोनों को सतानोत्पत्ति की इच्छा हो, तभी तुम्हें ब्रह्मचर्य्य तोड़ना चाहिए। जो लोग इस प्रकार विचारकर दो-चार छः वर्ष मे कभी एक बार ब्रह्मचर्य्य का नियम भंग करेंगे, वे बिलकुल बामाब नहीं बनेंगे और उनके पास वीर्यरूपी धन इकट्ठा रह सकेगा। पर ऐसे स्त्री पुरुष भाग्य ही से मिलेंगे, जो केवल सतान उत्पन्न करने के लिये काम भोग करते हैं। शेष सहस्रों मनुष्य तो विषय-वासना तृप्त करने के लिये ही भोग करते हैं और परिणाम में उनकी इच्छा के विरुद्ध सतति उत्पन्न हो जाती है। विषय भोग के समय हम ऐसे अंधे हो जाते हैं कि आगे का विचार नहीं करते। इस विषय में स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष अधिक दोषी हैं। वे अपने उन्माद में भूल बैठते हैं कि दुर्बल है और उसमें सतान के पालन-पोषण की शक्ति नहीं है। पश्चिमी लोगों ने तो इस विषय में मर्यादा ही भंग कर दी है। वे अपने भोग-विलास के लिये सतान उत्पन्न होने की दशा में उसके बोझ से बचने के लिये अनेक उपचार करते हैं। वहाँ इस विषय पर अनेक पुस्तकें

लिखी गई हैं, वहाँ ऐसे व्यवसायी भी पड़े हैं जिनका लोगों को यह बतलाना ही एक पेशा है कि अमुक काम करने से विषय भोग करते हुए भी संतति न उत्पन्न होगी। हम लोग अभी इस पाप से मुक्त हैं, पर अपनी स्त्रियों पर बोझ लादते समय हम संतति के निर्बल, वीर्यहीन, पागल और निर्बुद्धि होने की जरा भी परवा नहीं करते। वरन् संतति होने पर ईश्वर का गुणगान करते हैं। अपनी दरिद्र दशा को छिपाने का हमने यह एक ढंग बना लिया है।

निर्बल, लूली, लँगड़ी, विषयी और निस्सत्व संतान का होना ईश्वरीय कोप ही तो है। बारह वर्ष की लड़की के संतान हो इसमें हमारे आनन्द मानने की कौन-सी बात धरी है, जिसके लिये ढोल पीटे जाँय। बारह वर्ष की लड़की का माता बन जाना ईश्वर का महाकोप है या और कुछ? तुरत के बोए हुए पेड़ में जो फल लगते हैं वह निर्बल होते हैं, यह सब लोग जानते हैं। यही कारण है कि हम भाँति भाँति के उपाय करके उनमें फल नहीं लगने देते। पर बालक स्त्री और बालक वर से संतान उत्पन्न होने पर हम आनंद मनाते हैं। यह हमारी नीरी मूर्खता नहीं तो और क्या है? भारत में अथवा संसार के किसी अन्य भाग में अगर नपुंसक बालक चींटियों के समान भी बढ़ जाँय, तो उनमें हिंदुस्तान अथवा संसार का क्या लाभ होगा? हमसे तो वे पशु ही भले हैं जिनमे नर और मादा का संयोग तभी कराया जाता है, जब उनसे बच्चे उत्पन्न कराने होते हैं।

संयोग के बाद, गर्भ-काल मे, और फिर जन्म के बाद, जब तक बच्चा दूध छोड़कर बड़ा नहीं होता, तब तक का समय नितांत पवित्र मानना चाहिए। इस काल में स्त्री और पुरुष दोनों को ब्रह्मचर्य्य का पालन करना अनिवार्य्य है। पर हम इस संबंध मे

घड़ी भर भी विचार किए बिना, अपना काम करते ही चले जा रहे हैं। हमारा मन कितना रोगी है! इसी का नाम है असाध्य रोग। यह रोग हमें मृत्यु से मिला रहा है। जब तक वह नहीं आती, हम बावले-जैसे मारे-मारे फिरते हैं। विवाहित स्त्री पुरुषों का यह मुख्य कर्तव्य है कि वे अपने विवाह का भ्रामक अर्थ न करते हुए, उसका शुद्ध अर्थ लगावें, और जब सचमुच संतान न हो तो वंशवृद्धि की इच्छा से ही ब्रह्मचर्य का भंग करें।

हमारी दयनीय दशा में ऐसा करना बहुत कठिन है। हमारी खुराक, रहन-सहन, हमारी बातें, हमारे आसपास के दृश्य सभी हमारी विषय वासना को जगानेवाले हैं। हमारे ऊपर विषय का नशा चढ़ा रहता है। ऐसी स्थिति में विचार करके भी हम इस रोग से कैसे मुक्त रह सकते हैं? पर ऐसी शंका उत्पन्न करनेवालों के लिये यह लेख नहीं लिखा गया है। यह लेख तो उन्हीं के लिये है, जो विचार करके काम करने को तैयार हों। जो अपनी स्थिति पर संतोष किए बैठे हों, उन्हें तो इसे पढ़ना भी भार मालूम होगा। पर जो अपनी दयनीय दशा से घबरा उठे हैं, उन्हीं की सहायता करना इस लेख का उद्देश्य है।

उपर्युक्त लेख से हम यह समझ सकते हैं कि ऐसे कठिन समय में अविवाहितों को ब्याह करना ही न चाहिए। और यदि बिना विवाह किए काम न चले तो जहाँ तक हो सके, देर करके करना चाहिए। नवयुवकों को पचीस वर्ष की उम्र से पहले विवाह न करने की प्रतिज्ञा लेनी चाहिए। आरोग्य-प्राप्ति के लाभ को छोड़कर इस व्रत से होनेवाले दूसरे अन्य लाभों का यहाँ हम विचार नहीं करते, पर प्रयोग करके उनका अनुभव तो सभी उठा सकते हैं।

जो माँ बाप इस लेख को पढ़ें, उनसे मुझे यह कहना है कि

बचपन में अपने बच्चों का विवाह करना उन्हें बेच डालना है। अपने बच्चों का हित देखने के बदले वे अपना ही अंध स्वार्थ देखते हैं। उन्हें तो आप बड़ा बनना है, अपने बंधु-बांधवों में नाम कमाना है, लड़के का ब्याह करके तमाशा देखना है। लड़के का कल्याण देखें, तो उसका पढ़ना-लिखना देखें, उसका यत्न करें, उसका शरीर बनावें। पर ऐसे समय गृहस्थी के जंजाल में डाल देने से बढ़कर उसका दूसरा कौन सा बड़ा अपकार हो सकता है?

विवाहित स्त्री और पुरुष में से एक का देहांत हो जाने पर दूसरे का वैधव्य का पालन करने में भी स्वास्थ्य को लाभ ही होता है। कितने ही डॉक्टरों की राय है कि जवान स्त्री या पुरुष को वीर्यपात करने का अवसर मिलना ही चाहिए। दूसरे कई डॉक्टर कहते हैं कि किसी भी हालत में वीर्यपात कराने की आवश्यकता नहीं है। जब डॉक्टर आपस में यों लड़ते रहे हों, तब अपने विचार को डॉक्टरी मत का सहारा मिलने से ऐसा न समझना चाहिए कि विषय में लीन रहना ही उचित है। अपने और दूसरों के अनुभव जो मैं जानता हूँ, उनके आधार पर मैं बेधड़क कहता हूँ कि आरोग्य की रक्षा के लिये विषय भोग आवश्यक नहीं है। यह नहीं, वरन् विषय भोग करने से—वीर्यपात होने से—आरोग्य को बहुत हानि पहुँचती है। अनेक वर्षों की संचित शक्ति—तन और मन दोनों की—एक ही बार के वीर्यपात से इतनी अधिक जाती रहती है कि उसके लौटाने के लिये बहुत समय चाहिए, और उतना समय लगाने पर भी पूर्व की स्थिति तो आ ही नहीं सकती। टूटे शीशे को जोड़कर उससे काम भले ही लें, पर है तो वह टूटा हुआ ही। वीर्य-रक्षा के लिये स्वच्छ हवा, स्वच्छ पानी और पहले बतलाए अनुसार स्वच्छ विचार की पूरी आवश्यकता है।

इस प्रकार नीति का आरोग्य के साथ बहुत निकट का संबंध है। संपूर्ण नीतिमान् ही संपूर्ण आरोग्य पा सकता है। जो जागने के बाद सवेरा समझकर ऊपर के लेखों पर खूब विचार करके तदनुसार व्यवहार करेंगे, वे इसका प्रत्यक्ष अनुभव पा सकेंगे। जिन्होंने थोड़े दिनों में भी ब्रह्मचर्य का पालन किया होगा, उन्हें अपने शरीर और मन के बढ़े हुए बल का अनुभव हुआ होगा। एक बार जिसके हाथ यह पारस मणि लग गया, वह इसे अपने जीवन की भांति रक्षित रक्खेगा। जरा भी चूकने पर उसे अपनी भद्दी भूल मालूम हो जायगी। मैंने तो ब्रह्मचर्य के अगणित लाभ अनुभव किए हैं। विचारने और जानने के बाद भूलें भी की हैं और उनके कड़वे फल भी चक्खे हैं। भूल के पहले की मेरे मन की दिव्य और उसके बाद की दयनीय दशा के चित्र आँख के सामने आया ही करते हैं। पर अपनी भूलों से ही मैंने इस पारस मणि का मूल्य समझा है। अब आगे इसका अखंड रूप से पालन कर सकूँगा या नहीं, यह नहीं जानता, पर ईश्वर की सहायता से पालन करने की आशा अवश्य रखता हूँ। उससे मेरे मन और तन को जो लाभ हुए हैं, उन्हें मैं देख सकता हूँ। मैं स्वयं बालकपन में ब्याहा गया, बचपन में ही अंधा बना और बालपन में ही बाप बनकर बहुत वर्षों बाद जागा। जागकर देखता क्या हूँ कि मैं महारात्रि के घोर अंधकार में पड़ा हुआ हूँ। मेरे अनुभवों से और मेरी भूलों से यदि कोई सचेत हो जायगा, या बच जायगा तो यह प्रकरण लिखने के कारण मैं अपने को कृतार्थ समझूँगा। बहुत लोग कहा करते हैं, और मैं मानता भी हूँ, मुझमें उत्साह बहुत है। मेरा मन तो निर्बल माना ही नहीं जाता। कितने ही लोग तो मुझे हठी तक कहते हैं। मेरे मन और शरीर में रोग भी हैं, किन्तु अपने संसर्ग में आए हुए, लोगों में मैं अच्छा स्वस्थ गिना जाता हूँ।

लगभग बीस साल तक विषयासक्त रहने के पश्चात् भी जब ब्रह्मचर्य्य से मैं अपनी यह हालत बना सका हूँ, तब वे बीस वर्ष भी अगर बचा सका होता, तो आज मैं कैसी अच्छी दशा मे होता ! अब भी मेरा उत्साह अपार है । और तब तो जनता की सेवा में या अपने स्वार्थ मे मैं इतना उत्साह दिखलाता कि मेरी बराबरी करनेवाले कठिनाई से ही मिलते । इतना साराश तो मर त्रुटि-पूर्ण उदाहरण से भी लिया जा सकता है । जिन्होंने अखड ब्रह्मचर्य्य पालन किया है, उनकी शारीरिक, मानसिक और नैतिक शक्ति जिन्होंने देखी है, वही समझ सकते हैं । उसका वर्णन नहीं हो सकता ।

इस प्रकरण क पाठक अब समझ गए होंगे कि जहाँ विवाहितों को ब्रह्मचर्य की सलाह दी गई है, विधुर पुरुषों अथवा विधवा स्त्रियों को वैधव्य किंवा ब्रह्मचर्य सिखलाया जाता है, वहाँ पर विवाहित या अविवाहित स्त्री या पुरुष को दूसरी जगह विषय करने का अवसर मिल ही नहीं सकता । पर स्त्री या वेश्या पर कुदृष्टि डालने के घोर परिणामों का विचार आरोग्य क विषय के साथ नहीं किया जा सकता । यह तो धर्म और गहर नीति शास्त्र का विषय है । यहाँ तो क्वल इतना ही कहा जा सकता है कि पर स्त्री और वेश्या गमन से आदमी सुजाक आदि नाम न लेने योग्य बीमारियों से सड़ते हुए दिखाई पड़ते हैं । प्रकृति तो इनपर ऐसी दया करती है कि इन लागों के आगे पापा का फल तुरत ही दती है । ता भी व आँखें मूदे ही रहते हैं, और अपने रोगों क इलाज के लिये डॉक्टरों क यहाँ भटकते फिरते हैं । जहाँ पर स्त्री गमन न हो, वहाँ पर सैकड़े पीछे पचास डाक्टर बेकार हो जायँग । बीमारियाँ मनुष्य जाति के गले इस प्रकार आ पड़ी हैं कि विचार शील डाक्टर कहते हैं कि अनेक प्रकार की औषध होते रहने पर भी अगर पर स्त्री गमन का रोग जारी रहा

तो फिर मनुष्य-जाति का नाश निकट ही है। इसके रोगों की दवाएँ भी ऐसी विषाक्त होती हैं कि अगर उनसे एक रोग का नाश है, तो दूसर रोग घर कर लेते हैं, और पीढ़ी-दर-पीढ़ी तक बराबर चलते हैं।

अब विवाहितों को ब्रह्मचर्य्य पालन का उपाय बताकर इस लेख प्रकरण को समाप्त करना चाहिए। ब्रह्मचर्य्य के लिये खेल, स्वच्छ जल वायु और खुराक का ही ख्याल रखने से काम नहीं चलता। उन्हें तो अपनी स्त्री के साथ एकान्तवास छोड़ना पड़ेगा। विचार करने से मालूम होता है कि सभोग के सिवा एकान्तवास की आवश्यकता ही नहीं होती। रात मे स्त्री पुरुष को अलग-अलग कमरे में सोना चाहिए। सारे दिन दोनों को पवित्र धन्धों और विचारों में लगा रहना चाहिए। जिसमें अपने सुविचार को उत्तेजन मिले, ऐसी पुस्तकें और ऐसे महापुरुषों के चरित्र पढ़ने चाहिए। यह विचार बारबार करना चाहिए कि भोग में तो दु ख है, जब जब विषय की इच्छा हो आवे, ठड पानी से नहा लेना चाहिए। शरीर में जो महा अग्नि है, वह इससे शात होकर पुरुष और स्त्री दोनों को लाभकारी होगी और अन्य प्रकार से हितकर रूप धरकर उनके सच्चे सुख की वृद्धि करेगी। यद्यपि यह कार्य कठिन है, पर आरोग्य प्राप्त करना हो, तो ये कठिनाइयाँ जीतनी ही पड़ेंगी।

ब्रह्मचर्य्य का साधारण रूप

[भादरण में एक अभिनंदन पत्र का उत्तर देते हुए, लोगों के अनुरोध से, गाँधीजी ने ब्रह्मचर्य्य पर एक लंबा प्रवचन किया था। उसका सारा भाग यहाँ दिया जाता है।]

आप चाहते हैं कि ब्रह्मचर्य के विषय पर मैं कुछ कहूँ। कई विषय ऐसे हैं कि जिनपर मैं 'नवजीवन' में प्रसंग-वश ही लिखता हूँ और उनपर व्याख्यान तो शायद ही देता हूँ। क्योंकि यह विषय ही ऐसा है कि कहकर इसे नहीं समझाया जा सकता। आप तो ब्रह्मचर्य के साधारण रूप से संबंध में कुछ सुनना चाहते हैं, जिस ब्रह्मचर्य की व्यापक व्याख्या समस्त इन्द्रियों का निग्रह है, उसके संबंध में नहीं। इस साधारण ब्रह्मचर्य्य को भी शास्त्रों में बड़ा कठिन बतलाया गया है। यह बात ९९ प्रतिशत सच है, इसमें १ प्रतिशत की कमी है। इसका पालन इसलिये कठिन मालूम पड़ता है कि हम दूसरी इन्द्रियों को संयम में नहीं रखते, विशेष रूप से जीभ को। जो अपनी जिह्वा पर अधिकार रखता है, उसके लिये ब्रह्मचर्य्य सरल हो जाता है। प्राणि शास्त्र के पंडितों का मत है कि पशु जहाँ तक ब्रह्मचर्य का पालन करता है मनुष्य वहाँ तक भी नहीं करता। इसका कारण देखने पर मालूम होगा कि पशु अपनी जीभ पर पूरा-पूरा अधिकार रखते हैं—प्रयत्न करके नहीं, वरन् स्वभाव से ही। वे घास पर ही अपना निर्वाह करते हैं, और सो भी केवल पेट भरने लायक़ ही खाते हैं, खाने के लिये नहीं जीते। पर हम लोग तो इसके नितांत प्रतिकूल करते हैं। माताएँ अपने बच्चों को तरह तरह के स्वादिष्ट भोजन कराती हैं। वे अपनी संतान पर प्रेम दिखाने का सबसे उत्तम साधन इसी को समझती हैं। इसी प्रकार हम उन वस्तुओं का स्वाद बढ़ाते नहीं, वरन् घटाते हैं।

स्वाद तो भूख में रहता है। भूख के समय सूखी रोटी भी रुचिकर किंवा स्वादिष्ट प्रतीत होती है और बिना भूख के आदमी को लड्डू भी फीके और स्वादहीन जान पड़ते हैं। पर हम तो न जाने, क्या क्या खाकर पेट को ठसाठस भरा करते हैं और फिर कहते हैं कि ब्रह्मचर्य का पालन नहीं हो पाता।

हमें ईश्वर ने जो आँखें देखने के लिये दी हैं, उन्हें हम मलीन करते हैं, और देखने योग्य वस्तुओं को देखना नहीं सीखते। 'माता गायत्री क्यों न पढ़े, और बालकों को वह गायत्री क्यों न सिखाए?' इसकी छानबीन करने के बदले यदि वह उसके तत्व—सूर्योपासना—को समझकर उनसे सूर्योपासना करावे, तो कितना अच्छा हो। सूर्य की उपासना तो सनातनधर्मी और आर्यसमाजी दोनों ही कर सकते हैं, तो यह मैंने स्थूल अर्थ आपके समक्ष उपस्थित किया। इस उपासना का तात्पर्य क्या है? यही न कि अपना सिर ऊँचा रखकर सूर्यनारायण क दर्शन करके, आँख की शुद्धि की जाय। गायत्री के रचयिता ऋषि थे, द्रष्टा थे। उन्होंने कहा कि सूर्योदय में जो काव्य, सौंदर्य लीला और नाटक है, वह और कहीं नहीं दिखाई द सकता। ईश्वर जैसा सूत्रधार अन्यत्र नहीं मिल सकता, और आकाश से बढ़कर भव्य रंग भूमि भी कहीं नहीं मिल सकती। पर आज कौन सी माता बालक की आँखें धोकर उसे आकाश का दर्शन कराती है? वरन् आजकल तो माता के भावों में तो अनेक प्रपच रहते हैं। बड़े-बड़े घरों में बच्चों को जो शिक्षा मिलती है, वह उनको बड़ा अफसर बनाने के लिये दी जाती है। पर इस बात का कौन विचार करता है? घर में जाने बेजान जो शिक्षा बच्चों को स्वत मिलती है, उसका उसक जीवन पर कितना प्रभाव पड़ता है? माँ-बाप हमारे शरीर को ढकते हैं, सजाते हैं, पर इससे कहीं शोभा बढ़ सकती है! कपड़े बदन को ढकने के

लिये हैं, सर्दी-गर्मी से बचाने के लिये हैं, सजाने के लिये नहीं। यदि बालक का शरीर वज्र-सा दृढ़ बनाना है, तो जाड़े से ठिठुरते हुए लड़के को हमें अँगीठी के पास बैठाने के बदले मैदान में खेलने कूदने या खेत में काम पर भेज देना चाहिए। उसका शरीर दृढ़ बनाने का बस यही एक उपाय है। जिसने ब्रह्मचर्य्य का पालन किया है, उसका शरीर अवश्य ही वज्र की भांति सुदृढ होना चाहिए। पर हम तो बच्चों के शरीर का सत्यानाश कर डालते हैं। उसे घर में रख करके जो कृत्रिम गर्मी देते हैं, उससे शरीर सुकुमार हो जाते हैं। इस प्रकार दुलार करके तो हम उसके शरीर को निर्बल बना डालते हैं।

यह तो हुई कपडे की बात। फिर घर में अनेक प्रकार की बातें करके हम उनके मन पर बहुत बुरा असर डालते हैं। उसके विवाह की बातें करते हैं। और इसी प्रकार वस्तुएँ और दृश्य भी उसे दिखाते रहते हैं। मर्यादा तोड़ने के अनेक साधनों के होते हुए भी मर्यादा की रक्षा हो जाती है। ईश्वर ने मनुष्य की रचना इस तरह से की है कि पतन के अनेक अवसर आते हुए भी वह बच जाता है। यदि हम ब्रह्मचर्य्य के रास्ते से ये सब विघ्न दूर कर दें, तो उसका पालन बहुत सुगम हो जाय।

ऐसी दशा होते हुए भी हम संसार के साथ अपने शारीरिक बल की तुलना करना चाहते हैं। उसके दो उपाय हैं—एक आसुरी और दूसरा दैवी। आसुरी मार्ग है—शरीर का बल प्राप्त करने के लिये हर प्रकार के उपायों से काम लेना—हर प्रकार की चीजें खाना, गो-मांस खाना इत्यादि। मेरे लड़कपन में मेरा एक मित्र मुझसे कहा करता था कि मांसाहार हमें अवश्य करना चाहिए, नहीं तो हम अंग्रेजों की तरह हट्टे-कट्टे न हो सकेंगे। जापान को भी जब दूसरे

देश के साथ सामना करने का अवसर आया, तब वहाँ गो मांस भक्षण को स्थान मिला। सो, यदि आसुरी मत के अनुसार शरीर को तैयार करने की इच्छा हो, तो इन वस्तुओं का सेवन करना होगा।

परतु यदि दैवी साधन से शरीर तैयार करना हो, तो ब्रह्मचर्य्य ही उपाय है। जब मुझे कोई 'नैष्ठिक ब्रह्मचारी' कहता है, तब मैं अपने आप पर तरस खाता हूँ। इस मान पत्र में मुझे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहा गया है। मुझे कहना पड़ता है कि जिन्होंने इस अभिनंदन पत्र को तैयार किया है, उन्हें पता नहीं है कि 'नैष्ठिक ब्रह्मचारी' किसे कहते हैं। जिसके बाल-बच्चे हुए हैं, उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कैसे कह सकते हैं? नैष्ठिक ब्रह्मचारी का न तो कभी ज्वर आता है, न कभी उसके सिर-दर्द ही होता है, न कभी उसे खाँसी आती है, न कभी उसे आपेंडिसाइटिज होता है। डाक्टर लोगों का मत है कि नारगी का बीज आँत में रह जाने से भी आपेंडिसाइटिस होता है। परतु जो शरीर स्वच्छ और नीरोगी होगा, उसमें यह टिक ही न सकेगा। जब आँतें शिथिल पड़ जाती हैं, तब वे ऐसी चीजों को अपने आप बाहर नहीं निकाल सकतीं। मेरी भी आतें शिथिल हो गई होंगी। इसी से मैं ऐसी कोई चीज हजम नहीं कर सका हूँगा। बच्चा ऐसी अनेक चीजें खा जाता है। माता इसका कहाँ ध्यान रखती है? पर उसकी आँतों में इतनी शक्ति स्वाभाविक तौर पर ही होती है। इसलिये मैं चाहता हूँ कि मुझपर नैष्ठिक ब्रह्मचर्य्य के पालन का आरोप करके कोई मिथ्याचारी न हो। नैष्ठिक ब्रह्मचारी का तेज मुझसे अनेक गुणा अधिक होना चाहिए। मैं आदर्श ब्रह्मचारी नहीं। हाँ, यह ठीक है कि मैं वैसा बनना चाहता हूँ। मैंने तो आपके सामने अनुभव के कुछ बूँदें उपस्थित की हैं, जो ब्रह्मचर्य की सीमा बताती हैं।

ब्रह्मचर्य-पालन का अर्थ यह नहीं कि मैं किसी स्त्री को स्पर्श न करूँ। पर ब्रह्मचारी बनने का अर्थ यह है कि स्त्री को स्पर्श करने से भी मुझमें किसी प्रकार का विकार उत्पन्न न हो, जिस तरह एक कागज़ को स्पर्श करने से नहीं होता। मेरी बहन बीमार हो और उसकी सेवा करते हुए ब्रह्मचर्य्य के कारण मुझे हिचकना पड़े, तो वह ब्रह्मचर्य्य किस काम का। जिस निर्विकार दशा का अनुभव हम मृत शरीर को स्पर्श करके कर सकते हैं उसी का अनुभव जब हम किसी सुंदरी युवती का स्पर्श करके कर सकें, तभी हम ब्रह्मचारी हैं। यदि आप यह चाहते हों कि बालक वैसा ब्रह्मचर्य प्राप्त करें, तो इसका अभ्यास-क्रम आप नहीं बना सकते, एक ब्रह्मचारी ही बना सकता है, फिर वह चाहे मेरी तरह अधूरा ही क्यों न हो।

ब्रह्मचारी स्वाभाविक सन्यासी होता है। ब्रह्मचर्याश्रम सन्यासाश्रम से भी बढ़कर है। पर उसे हमने गिरा दिया है। इससे हमारा गृहस्थाश्रम भी बिगड़ा है, वानप्रस्थाश्रम भी बिगड़ा है और सन्यास का तो नाम ही नहीं रह गया है। हमारी कैसी असह्य अवस्था हो गई है।

ऊपर जो आसुरी मार्ग बताया गया है—उसका अनुकरण करके तो आप पाँच सौ वर्षों के बाद भी पठानों का सामना न कर सकेंगे, पर दैवी मार्ग का अनुकरण यदि आज हो, तो आज ही पठानों का मुक़ाबला हो सकता है, क्योंकि दैवी साधन से आवश्यक मानसिक परिवर्तन तो एक क्षण में हो सकता है। और शारीरिक परिवर्तन करते हुए युग बीत जाते हैं, पर इस दैवी मार्ग का अनुकरण हमसे तभी होगा, जब हममें पूर्वजन्म का पुण्य होगा, और माता पिता हमारे लिये उसकी उचित सामग्री पैदा करेंगे।

ब्रह्मचर्य्य के प्रयोग

अब ब्रह्मचर्य के सम्बध में विचार करने का समय आया है। एक-पत्नीव्रत ने तो विवाह के समय से ही मेरे हृदय में स्थान कर लिया था। पत्नी के प्रति मेरी वफादारी मेरे सत्यव्रत का एक अंग था। परन्तु स्वपत्नी के साथ भी ब्रह्मचर्य का पालन करने की आवश्यकता मुझे दक्षिण अफ्रीका में ही स्पष्ट रूप से दिखाई दी। किस प्रसंग से अथवा किस पुस्तक के प्रभाव से यह विचार मेरे मन में पैदा हुआ, यह इस समय ठीक-ठीक याद नहीं पड़ता। पर इतना स्मरण होता है कि इसमें रायचन्द्र भाई का प्रभाव प्रधान रूप से काम कर रहा था।

उनके साथ हुआ एक संवाद मुझे याद है। एक बार मैं मि० ग्लैडस्टन के प्रति मिसेज ग्लैडस्टन के प्रेम की स्तुति कर रहा था। मैंने पढ़ा था कि हाउस आफ कामन्स की बैठक में भी मिसेज ग्लैडस्टन अपने पति को चाय बनाकर पिलाती थीं। यह बात उस नियमनिष्ठ दम्पति के जीवन का एक नियम ही बन गया था। मैंने यह प्रसंग कवि जी को पढ़ सुनाया और उसके सिलसिले में दम्पति प्रेम की स्तुति की। रायचन्द्र भाई बोले—इसमें आपको कौनसी बात महत्व की मालूम होती है—मिसेज ग्लैडस्टन का पत्नीपन या सेवाभाव? यदि वे ग्लैडस्टन की बहन होतीं तो? अथवा उनकी वफादार नौकर होतीं और फिर भी उसी प्रेम से चाय पिलातीं तो? ऐसी बहनों, ऐसी नौकरानियों के उदाहरण आज हमें न मिलेंगे? और नारी जाति के बदले ऐसा प्रेम यदि नर जाति में देखा होता तो क्या आपको सानन्दाश्चर्य होता? इस बात पर विचार कीजिएगा।

रायचन्द भाई स्वयं विवाहित थे। उस समय तो उनकी यह बात मुझे कठोर मालूम हुई—ऐसा स्मरण होता है, परन्तु इन वचनों

ने मुझे लोह-चुम्बक की तरह जकड़ लिया। पुरुष नौकर की ऐसी स्वामिभक्ति की क़ीमत पत्नी की स्वामिनिष्ठा की कीमत से हज़ारगुना बढ़कर है। पति पत्नी में एकता या प्रेम का होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। स्वामी और सेवक में ऐसा प्रेम पैदा करना पड़ता है। दिन दिन कविजी के वचन का बल मेरी नज़रों में बढ़ने लगा।

अब मन मे यह विचार उठने लगा कि मुझे अपनी पत्नी के साथ कैसा व्यवहार रखना चाहिए। पत्नी को विषयभोग का वाहन बनाना पत्नी क प्रति वफ़ादारी कैसे हो सकती है? जब तक मैं विषय-वासना के आधीन रहूँगा तब तक वफ़ादारी की कीमत प्राकृतिक मानी जायगी। मुझे यहा यह बात कह देनी चाहिए कि हमारे पारस्परिक सम्बन्ध में कभी पत्नी की तरफ़ से मुझ पर ज्यादती नहीं हुई। इस दृष्टि से मैं जिस दिन से चाहूँ ब्रह्मचर्य का पालन मेरे लिये सुलभ था। मेरी अशक्ति अथवा आसक्ति ही मुझे रोक रही थी।

जागरूक होने के बाद भी दो बार तो मैं असफल ही रहा। प्रयत्न करता, पर गिरता। प्रयत्न में मुख्य हेतु उच न था। सिर्फ सन्तानोत्पत्ति को रोकना ही प्रधान लक्ष्य था। सन्ततिनिग्रह के बाह्य उपकरणों के विषय में विलायत में मैंने थोड़ा-बहुत पढ़ लिया था। डा० एलिन्सन के इन उपायों का उल्लेख मैं अन्यत्र कर चुका हूँ। उसका कुछ क्षणिक असर मुझ पर भी हुआ था। परन्तु मि० हिल्स के द्वारा किये गये उनके विरोध तथा सयम क समर्थन का बहुत असर मेरे दिल पर हुआ और अनुभव के द्वारा वही चिरस्थायी हो गया। इस कारण प्रजापति की अनावश्यकता जँचते ही सयम पालन के लिये उद्योग आरभ हुआ।

संयम-पालन में कठिनाइयाँ बेहद थीं। चारपाइयाँ दूर रखते। रात को थककर सोने की कोशिश करने लगा। इन सारे प्रयत्नों का

विरोध का परिणाम उसी समय तो न दिखाई दिया, पर जब मैं भूत काल की ओर आँख उठाकर देखता हूँ तो जान पड़ता है कि इन्हीं मार प्रयत्नों ने मुझे अन्तिम बल प्रदान किया।

अंतिम निश्चय तो ठेठ १९०६ ई० में ही कर सका। उस समय सत्याग्रह का श्रीगणेश नहीं हुआ था। उसका स्वप्न तक में मुझे ख्याल न था। बोअर युद्ध के बाद नेटाल में 'जूलू' बलवा हुआ। उस समय मैं जोहान्सबर्ग में वकालत करता था। पर मन ने कहा कि इस समय बलवे में मुझे अपनी सेवा नेटाल सरकार को अर्पित करनी चाहिए। मैंने अर्पित की भी। वह स्वीकृत भी हुई। परन्तु इस सेवा के फलस्वरूप मेरे मन में तीव्र विचार उत्पन्न हुए। अपने स्वभाव के अनुसार अपने साथियों से मैंने उसकी चर्चा की। मुझे जँचा कि सन्तानोत्पत्ति और सन्तान-रक्षण लोकसेवा के विरोधक हैं। इस बलवे के काम में शरीक होने के लिये मुझे अपना जोहान्सबर्गवाला घर तितर बितर करना पड़ा। टीपटाप के साथ सजाये घर को और जुटी हुई विविध सामग्री को अभी एक महीना भी न हुआ होगा कि मैंने उसे छोड़ दिया। पत्नी और बच्चों को फीनिक्स में रक्खा। और मैं घायलों की शुश्रूषा करनेवालों की टुकड़ी बनाकर चल पड़ा। इन कठिनाइयों का सामना करते हुए मैंने देखा कि यदि मुझे लोक-सेवा में ही लीन हो जाना है तो फिर पुत्रैषणा एवं धनैषणा को भी नमस्कार कर लेना चाहिए और वानप्रस्थ-धर्म का पालन करना चाहिए।

बलवे में मुझे डेढ़ महीने से ज्यादा न ठहरना पड़ा; परन्तु यह छः सप्ताह मेरे जीवन का अत्यन्त मूल्यवान समय था। व्रत का महत्व मैं इस समय सबसे अधिक समझा। मैंने देखा कि व्रत बंधन नहीं, स्वतन्त्रता का द्वार है। आज तक मेरे प्रयत्नों में आवश्यक

सफलता नहीं मिलती थीं, क्योंकि मुझमें निश्चय का अभाव था। मुझे ईश्वर-कृपा का विश्वास न था। इसलिये मेरा मन अनेक तरगों में और अनेक विकारों के अधीन रहता था। मैंने देखा कि व्रत बधन से पृथक रहकर मनुष्य मोह में पड़ता है। व्रत से अपने को बाँधना मानो व्यभिचार से छूटकर एक पत्नी से सम्बन्ध रखना है। 'मेरा तो विश्वास प्रयत्न में है, व्रत के द्वारा मैं बँधना नहीं चाहता'—यह वचन निर्बलता सूचक है और उसमें छुपे-छुपे भोग की इच्छा रहती है। जो चीज त्याज्य है उसे सर्वथा छोड़ देने में कौन-सी हानि हो सकती है? जो साँप मुझे डँसनेवाला है उसको मैं निश्चयपूर्वक हटा देता हूँ। केवल हटाने का प्रयत्न ही नहीं करता। क्योंकि मैं जानता हूँ कि केवल प्रयत्न का परिणाम होगा मृत्यु। प्रयत्न में साप की विकरालता के स्पष्ट ज्ञान का अभाव है। इसी प्रकार जिस चीज के त्याग का हम प्रयत्नमात्र करते हैं उसके त्याग की आवश्यकता हमें स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं दी है। यही सिद्ध होता है। 'मेरे विचार यदि बाद को बदल जाय तो?' ऐसी शंका से बहुत बार व्रत लेते हुए डरते हैं। इस विचार में स्पष्ट दर्शन का अभाव है। इसी लिये निष्कुलानन्द ने कहा है—

त्याग न टिके रे वैराग बिना।

जहा किसी चीज से पूर्ण वैराग्य हो गया है, वहा उसके लिये व्रत लेना अपने आप अनिवार्य हो जाता है।

वीर्य-रक्षा

महाशय ब्यूरो की पुस्तक की आलोचना पर मेरे पास जो अनेक पत्र आये हैं, उनके कारण इस परम महत्वपूर्ण प्रश्न पर प्रकट रूप से चर्चा करना आवश्य हो गया है। मजाबारी भाई लिखते हैं —

महाशय ब्यूरो की पुस्तक की समालोचना में आपने लिखा है कि ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलता कि ब्रह्मचर्य-पालन या दीर्घकाल के सयम से किसी को कुछ हानि पहुँची हो। पर मुझे अपने लिये तो तीन सप्ताह से अधिक दिनों तक सयम रखना हानिकारक ही प्रतीत होता है। इतने समय के बाद प्राय मेरे शरीर में भारीपन का तथा चित्त और अग में बेचैनी का अनुभव होने लगता है, जिससे मन भी चिड़चिड़ा सा हो जाता है। आराम तभी मिलता है, जब सयोग द्वारा या प्रकृति की कृपा होने से, यों ही, कुछ वीर्यपात हो लेता है। दूसरे दिन प्रात शरीर या मन की दुर्बलता का अनुभव करने के बदले मैं शात और हलका हो जाता हूँ और अपने काम में अधिक उत्साह से लग जाता हूँ।

मेरे एक मित्र को तो ऐसा संयम हानिकारक ही सिद्ध हुआ है। उनकी अवस्था बत्तीस वर्ष के लगभग होगी। वह बड़े ही कट्टर शाकाहारी और धार्मिक पुरुष हैं। उनमें शरीर या मन का एक भी दुर्व्यसन नहीं है। किंतु तो भी दो साल पहले तक उन्हें स्वप्न दोष में बहुत वीर्यपात हो जाया करता था, और उसके अनतर वह बहुत निर्बल और निरुत्साह हो जाया करते थे। उसी समय उन्होंने विवाह किया। पक्षु के दर्द की कोई बीमारी भी उन्हें उसी समय हो गई। किसी आयुर्वेदिक वैद्यराज की सलाह से उन्होंने विवाह किया, और अब वह बिलकुल अच्छे हैं।

ब्रह्मचर्य्य की श्रेष्ठता का, जिसपर हमारे सभी शास्त्र एकमत हैं, मैं बुद्धि से तो क़ायल हूँ, किंतु जिन अनुभवों का वर्णन मैंने ऊपर किया है, उनसे तो स्पष्ट हो जाता है कि शुक्रग्रन्थियों से जो वीर्य निकलता है, उसे शरीर में ही पचा लेने की सामर्थ्य हममें नहीं है। इसलिये वह विष बन जाता है। अतएव मैं आपसे सविनय अनुरोध करता हूँ कि मेरे समान लोगों के लाभ के लिये, जिन्हें ब्रह्मचर्य और आत्म-संयम के महत्त्व के विषय में कुछ संदेह नहीं है, हठयोग वा प्राणायाम के कुछ साधन बतलाइए, जिनके सहारे हम अपने शरीर में इस प्राण-शक्ति को पचा सकें।

इन भाइयों के अनुभव असाधारण नहीं हैं, वरन् बहुतों के ऐसे ही अनुभवों के नमूने-मात्र हैं। ऐसे उदाहरण मैं जानता हूँ, जब कि अधूरे प्रमाणों को ही लेकर साधारण नियम निकालने में उतावली की गई है। उस प्राण शक्ति को शरीर में ही सुरक्षित रखने और फिर पचा लेने की योग्यता बहुत अभ्यास से आती है। और ऐसा होना भी चाहिए, क्योंकि किसी दूसरी साधना से शरीर और मन को इतनी शक्ति नहीं प्राप्त होती। दवाएँ और यन्त्र शरीर को अच्छी, काम-चलाऊ दशा में रख सकते हैं, किंतु उनसे चित्त इतना निर्बल हो जाता है कि वह मनोविकारों का दमन नहीं कर सकता। और ये मनोविकार जानी दुश्मन के समान प्रत्येक को घेरे रहते हैं।

हम काम तो वैसे करते हैं, जिनसे लाभ तो दूर, उलटे हानि ही होती है, परंतु साधारण संयम से ही बहुत लाभ की आशा बारबार किया करते हैं। हमारा साधारण जीवन क्रम विकारों को तृप्त करने के लिये ही बनाया जाता है, हमारा भोजन, साहित्य मनोरंजन, काम का समय, ये सभी कुछ हमारे पाशविक विकारों को ही उत्तेजित और संतुष्ट करने के लिये निश्चित किये जाते हैं।

इसमें से अधिकाश की इच्छा विवाह करके, लड़के पैदा करने की भले ही थोड़े संयम रूप में हो, किंतु साधारणतः सुख भोगने की ही होती है। और अंत तक न्यूनाधिक ऐसा होता ही रहेगा।

किंतु साधारण नियम के अपवाद जैसे सदा से होते आये हैं वैसे अब भी होते हैं। ऐसे भी मनुष्य हुए हैं, जिन्होंने मानव जाति की सेवा में, या यों कहिए कि भगवान् की ही सेवा में, जीवन लगा देना चाहा है। वे विश्व-कुटुम्ब की और निजी कुटुम्ब की सेवा में अपना समय अलग-अलग बाँटना नहीं चाहते। अवश्य ही ऐसे मनुष्यों के लिये उस प्रकार सभव नहीं है, जिस जीवन से विशेष रूप से किसी व्यक्ति विशेष की ही उन्नति सभव हो। जो भगवान की सेवा के लिये ब्रह्मचर्य्य-व्रत लेंगे, उन पुरुषों को जीवन की ढिलाई को छोड़ देना पड़ेगा और इस कठोर सयम में ही सुख का अनुभव करना होगा। वे ससार में भले ही रहें, पर वे 'सासारिक' नहीं हो सकते। उनका भोजन, धधा, काम करने का समय, मनोरजन, साहित्य, जीवन का उद्देश्य आदि सर्वसाधारण से अवश्य ही भिन्न होंगे।

अब इसपर विचार करना चाहिए कि पत्र-लेखक और उनके मित्र ने सपूर्ण ब्रह्मचर्य्य-पालन को क्या अपना ध्येय बनाया था और अपने जीवन को क्या उसी ढाचे में ढाला भी था? यदि उन्होंने ऐसा नहीं किया था, तो फिर यह समझने में कुछ कठिनाई नहीं होगी कि वीर्यपात से एक आदमी को आराम और दूसरे को निर्बलता क्यों होती थी। उस दूसरे आदमी के लिये तो विवाह ही दवा थी। अधिकाश मनुष्यों को अपनी इच्छा के विरुद्ध भी जब मन में विवाह का ही विचार भरा हो, तो उस स्थिति में उन मनुष्यों के लिये विवाह ही प्रकृत और इष्ट है। जो विचार दबाया न जाकर अमूर्त ही छोड़ दिया जाता है, उसकी शक्ति, वैसे ही

विचार की अपेक्षा, जिसको हम मूर्त कर लेते हैं, यानी जिसको कार्य का रूप दे लेते हैं, कहीं अधिक होती है। जब उस क्रिया का हम यथोचित संयम कर लेते हैं, तो उसका असर विचार पर भी पड़ता है और विचार का संयम भी होता है। इस प्रकार जिस विचार को आचार का रूप दे दिया जाता है, वह अपने अधिकार में अपना बंदी सा बन जाता है। इस दृष्टि से विवाह भी एक प्रकार का संयम ही मालूम होता है।

मेरे लिये, एक समाचार पत्र के लेख में, उन लोगों के लाभ के लिये, जो नियमित संयत जीवन बिताना चाहते हैं, क्रमानुसार सलाह देनी ठीक न होगी। उन्हें तो मैं कई वर्ष पहले इसी विषय पर लिखे हुए अपने ग्रंथ 'आरोग्य विषयक सामान्य ज्ञान' को पढ़ने की सलाह दूँगा। नए अनुभवों के अनुसार उसे कहीं-कहीं दुहराने की आवश्यकता है सही, किंतु उसमें कोई भी ऐसी बात नहीं है, जिसे मैं लौटाना चाहूँ। हाँ, साधारण नियम यहाँ भले ही दिए जा सकते हैं —

(१) खाने में हमेशा संयम से काम लेना। थोड़ी मीठी भूख रहते ही चौके से हमेशा उठ जाना।

(२) बहुत गर्म मसालों और घी-तेल से बने हुए शाकाहार से अवश्य बचना चाहिए। जब दूध पूरा मिलता हो, घी-तेल आदि चिकने पदार्थ अलग से खाना अनावश्यक है। जब प्राण शक्ति का थोड़ा ही नाश हो तो अल्प भोजन भी काफ़ी होता है।

(३) सदा मन और शरीर को शुद्ध काम में लगाए रखना।

(४) जल्दी सो जाना और सबेरे उठ बैठना परमावश्यक है।

(५) सबसे बड़ी बात यह है कि संयम जीवन बिताने में ही आजीवन ईश्वर प्राप्ति की उत्कट अभिलाषा मिली रहती है। जब

से इस परमतत्व का प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है, तब से ईश्वर के ऊपर यह भरोसा बराबर बढ़ता ही जाता है कि वह स्वय ही अपने इस यन्त्र का (मनुष्य के शरीर को) विशुद्ध रूप से सचालित रखेगा। गीता में कहा है—

> विषया विनिवर्त्तन्त निराहारस्य देहिने ।
> रसवर्ज्जं रसोप्यस्य पर दृष्ट्वा निवर्त्तते ॥

यह अक्षरश: सत्य है।

पत्र-लेखक आसन और प्राणायाम की बात करते हैं। मेरा विश्वास है कि आत्म संयम में उनका महत्वपूर्ण स्थान है। परंतु मुझे इसका खेद है कि इस विषय में मेरे निजी अनुभव कुछ ऐसे नहीं हैं, जो लिखने योग्य हों। जहाँ तक मुझे मालूम है, इस विषय पर इस काल के अनुभव के आधार पर लिखा हुआ साहित्य है ही नहीं। परतु यह विषय अध्ययन करने योग्य है। लेकिन मैं अपने अनभिज्ञ पाठकों को इसके प्रयोग करने या जो कोई हठयोगी मिल जाय, उसी को गुरु बना लेने से सावधान कर देना चाहता हूँ। उन्हें निश्चय जान लेना चाहिए कि सयत और धार्मिक जीवन में ही अभीष्ट सयम के पालन की यथेष्ट शक्ति है।

भोजन और उपवास

जिनके अन्दर विषय वासना रहती है उनकी जीभ बहुत स्वाद-लोलुप रहती है। यही स्थिति मेरी भी थी। जननेन्द्रिय और स्वादेन्द्रिय पर कब्जा करते हुए मुझे बहुत विडम्बनाएँ सहनी पड़ी हैं और अब भी मैं यह दावा नहीं कर सकता कि इन दोनों पर मैंने पूरी विजय प्राप्त कर ली है। मैंने अपने को अतिभोजी माना है। मित्रों ने जिसे मेरा सयम माना है उसे मैंने कभी वैसा नहीं माना। जितना अकुश मैं रख सका हूँ, उतना यदि न रख सका होता तो मैं पशु से भी गया बीता होकर अब तक कभी का नाश को प्राप्त हो गया होता। मैं अपनी त्रुटियों को ठीक-ठीक जानता हूँ और कह सकता हूँ कि उन्हें दूर करने के लिये मैंने भारी प्रयत्न किये हैं। और इसी से मैं इतने साल तक इस शरीर को टिका सका हूँ और उससे कुछ काम ले सका हूँ।

इस बात का भान होने के कारण, और इस प्रकार की संगति अनायास मिल जाने के कारण, मैंने एकादशी के दिन फलाहार अथवा उपवास शुरू किये, जन्माष्टमी इत्यादि दूसरी तिथियों को भी उपवास करने लगा। परन्तु सयम की दृष्टि से फलाहार और अन्नाहार में मुझे बहुत भेद न दिखाई दिया। अनाज के नाम से हम जिन वस्तुओं को जानते हैं और उनमें जो स्वाद मिलता है वही फलाहार में भी मिलता है और आदत पड़ने के बाद तो मैंने देखा कि उनमें अधिक ही स्वाद मिलता है। इस कारण इन तिथियों के दिन सूखा उपवास अथवा एकासने को अधिक महत्त्व देता गया। फिर प्रायश्चित्त आदि का भी कोई निमित्त मिल जाता तो उस दिन भी एकासना कर डालता। इससे मैंने यह अनुभव किया कि शरीर के अधिक स्वच्छ हो जाने से स्वादों की वृद्धि

हुई। भूख घटी और मैंने देखा कि उपवासादि जहाँ एक ओर सयम के साधन हैं, वहीं दूसरी ओर वे भोग के साधन भी बन सकते हैं। यह ज्ञान हो जाने पर इसके समर्थन में उसी प्रकार के मेरे तथा दूसरों के कितने ही अनुभव हुए हैं। मुझे तो यद्यपि अपना शरीर अधिक अच्छा और दृढ़ सुडौल बनाना था, तथापि अब तो मुख्य हेतु था सयम की साधना और स्वादों को जीतना। इसलिए भोजन की चीजों में और उनकी मात्रा मे परिवर्तन करने लगा परन्तु स्वाद तो हाथ धोकर पीछे पड़े रहते। एक वस्तु को छोड़कर जब उसकी जगह दूसरी वस्तु लेता तो उसमें भी नये और अधिक स्वाद उत्पन्न होने लगते। इन प्रयोगों में मेरे साथ और साथी भी थे। हरमान केलनबेक इनमें मुख्य थे। इनका परिचय दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के इतिहास में दे चुका हूँ। इसलिए फिर यहाँ देने का इरादा छोड़ दिया है। उन्होंने मेरे प्रत्येक उपवास में, एकासन में, एव दूसरे परिवर्तनों में, मेरा साथ दिया था। जब हमारा आन्दोलन का रंग खूब जमा था तब तो मैं उन्हीं के घर में रहता था। हम दोनों अपने इन परिवर्तनों के विषय में चर्चा करते और नये परिवर्तनों में पुराने स्वादों से भी अधिक स्वाद लेते। उस समय तो यह सवाद बड़े मीठे लगते थे। यह नहीं मालूम होता था कि इसमें कोई बात अनुचित होती थी। पर अनुभव ने सिखाया कि ऐसे स्वादों में गोते लगाना भी अनुचित था। इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्य को स्वाद के लिये नहीं, बल्कि शरीर को कायम रखने के लिये ही भोजन करना चाहिए। प्रत्येक इन्द्रिय जब केवल शरीर के, और शरीर के द्वारा आत्मा के, दर्शन के ही लिये काम करती है तब उसके रस शून्यवत् हो जाते हैं। और तभी कह सकते हैं कि वह स्वाभाविक रूप में अपना काम करती है।

ऐसी स्वाभाविकता प्राप्त करने के लिए जितने प्रयोग किये जाँय

उतने ही कम हैं और ऐसा करते हुए यदि अनेक शरीरों की आहुति देनी पड़े तो भी हमें उनकी परवा न करनी चाहिए। अभी आज कल उलटी गंगा बह रही है। नाशवान शरीर को सुशोभित करने, उसकी आयु को बढ़ाने के लिए हम अनेक प्राणियों का बलिदान करते हैं। पर यह नहीं समझते कि उससे शरीर और आत्मा दोनों का हनन होता है। एक रोग को मिटाते हुए, इन्द्रियों के भोगों को भोगने का उद्योग करते हुए, हम नये-नये रोग पैदा करते हैं, और अन्त में भोग भोगने की शक्ति भी खो बैठते हैं। एवं सबसे बढ़कर आश्चर्य की बात तो यह है कि इस क्रिया को अपनी आँखों के सामने होते देखते हुए भी हम उसे देखना नहीं चाहते।

प्राण है। समय पर काम देने और पथ प्रदर्शन के लिये एक पुस्तक सदैव के लिए सहचरी बना लेनी चाहिए।

आपको थियेटर और सिनेमा त्याग देना चाहिए। दिल-बहल यह है जिससे हृदय को शान्ति मिले, वह आपे से बे-आपे न आवे। इसलिए आपको उन भजन मण्डलियों में जाना चाहिए अ शब्द और संगीत दोनों ही आत्मा की उन्नति करते हैं।

आप अपनी भूख बुझाने के लिये भोजन करेंगे, जीभ के स्व के लिए नहीं। भोगी पुरुष खाने के लिये जीता है, संयमी पु जीने के लिए खाता है। आप भड़कानेवाले मसालों, स्नायुओं उत्तेजना देनेवाली शराब और सत्य और असत्य की भावना मार डालनेवाली नशीली चीजों का परित्याग कर दें। आप अपने भोजन के समय और परिमाण नियमित कर लेने चाहिए।

६—जब आपकी विषय-वासनाएं आपको घर दबोचने धमकी दें, तो आप अपने घुटनों के बल बैठ जायें और परमात्मा सहायता के लिये पुकार लगायें। रामनाम हमारा अमोघ सहाय है। बाह्य सहायता के लिये हिप बाथ लेना चाहिये अर्थात् ठंडे पा से भरे हुए टब में अपनी टांगे बाहर निकालकर लेटना चाहिए ऐसा करने से आपकी विषय-वासनाएं शीघ्र ही शान्त होती दिखा देंगी। आप कमजोर न हों और सर्दी लग जाने का भय न हो उसमें कुछ मिनट तक बैठे रहें।

७—प्रातःकाल और शयन से पहले रात्रि समय खुली हवा तेजी से टहलने की कसरत कीजिये।

८—'शीघ्र सोना और शीघ्र जागना, मनुष्य को आरोग्य धनवान् और बुद्धिमान् बनता है'—यह प्रमाणित कहावत है। बजे सोना और ४ बजे उठना अच्छा नियम है। खाली पेट

चाहिए। इसलिए आपका अन्तिम भोजन छै बजे शाम के बाद में न होना चाहिए।

६—याद रखिये कि प्राणिमात्र की सेवा करने—और इस प्रकार ईश्वर की महत्ता और प्रेम प्रदर्शित करने के लिये मनुष्य परमात्मा का प्रतिनिधि है। सेवा कार्य आपका एक मात्र सुख हो। फिर आपको जीवन में अन्य सुखों की आवश्यकता न रह जायगी।

ब्रह्मचर्य्य के साधन

ब्रह्मचर्य्य और उसकी प्राप्ति के संबंध में मेरे पास अनेक पत्र आ रहे हैं। मैंने पिछले अवसरों पर जो बातें कही हैं, उन्हीं को दूसरे शब्दों में दुहराना चाहता हूँ। ब्रह्मचर्य्य केवल कृत्रिम संयम नहीं है, बल्कि उसका अर्थ सभी इन्द्रियों पर पूर्ण नियंत्रण और मन, वचन तथा कर्म से विषयों की लोलुपता से मुक्त रहना है। इस प्रकार यह आत्म-ज्ञान अथवा ब्रह्म की प्राप्ति का राजपथ है। आदर्श ब्रह्मचारी को ऐंद्रिक वासना अथवा संतानोत्पत्ति की इच्छा से युद्ध नहीं करना पड़ता। ये उसे कभी कष्ट नहीं दे सकते। संपूर्ण संसार उसके लिये एक विशाल परिवार होगा। और वह अपनी संपूर्ण आकांक्षाओं को मानव जाति के कष्टों को दूर करने में केंद्रीभूत कर देगा। संतानोत्पत्ति की इच्छा उसके लिये घृणित वस्तु होगी। जिस व्यक्ति ने मानव जाति के कष्टों को उसकी समस्त व्यापकता में समझ लिया है, वह वासनाओं से कभी विचलित न होगा। वह स्वाभाविक रूप से अपने में शक्ति के स्रोत का अनुभव करेगा, और उसे सदा अदूषित रूप में रखने का प्रयत्न करेगा। उसकी विनम्र शक्ति से संसार में उसका गौरव होगा और वह सम्राट् से भी अधिक अपना प्रभाव उत्पन्न करेगा।

परंतु मुझसे कहा जाता है कि यह असंभव आदर्श है और मैं पुरुष तथा स्त्री के मध्य स्वाभाविक आकर्षण का कुछ मूल्य नहीं समझता। मैं इस बात में विश्वास करना अस्वीकार करता हूँ कि उपर्युक्त ऐंद्रिक दांपत्य संबंध स्वाभाविक कहा जा सकता है। उस दशा में शीघ्र ही हम लोगों पर विपत्ति की बाढ़ आ जायगी। मनुष्य और स्त्री के बीच स्वाभाविक संबंध भाई और बहन, माता और पुत्र अथवा पिता और पुत्री के मध्य आकर्षण है। यह वह

स्वाभाविक आकर्षण है, जिसपर संसार ठहरा हुआ है। यदि मैं संपूर्ण स्त्री-समाज को बहन, पुत्री अथवा माता तुल्य न समझता तो मेरा काम करना तो दूर रहा, जीवित रह सकना असंभव हो जाता। यदि मैं उनकी ओर वासना-पूर्ण नेत्रों से देखता, तो वह विनाश का बिल्कुल निश्चित मार्ग होता।

संतानोत्पादन स्वाभाविक घटना अवश्य है, परंतु कुछ निश्चित सीमा तक। उन सीमाओं का उल्लंघन करने से स्त्री-समाज संकटापन्न हो जाता है, जाति नपुंसक हो जाती है, रोग उत्पन्न हो जाते हैं, अनाचार की वृद्धि होती है, और संसार पाप की ओर अग्रसर होता है। ऐंद्रिक वासनाओं में फँसा हुआ मनुष्य बिना लंगर के जहाज की तरह से है। यदि ऐसा कोई व्यक्ति समाज का नेता हो और वह अपने लेखों की भरमार कर दे, जिनसे लोग उसके प्रवाह में प्रवाहित हो जाय तो समाज की क्या दशा होगी! और फिर भी आज हम वही बातें घटित होते देख रहे हैं! मान लीजिए, किसी प्रकाश के चारों ओर चक्कर लगाता हुआ, कोई कीट अपने क्षणिक आनंद की घड़ियाँ गिन रहा हो और हम लोग इसको एक दृष्टांत मानकर उसका अनुसरण करनेवाले हों तो हमारी क्या अवस्था होगी! नहीं, मैं अपनी संपूर्ण शक्तियों से अवश्य ही घोषित करूँगा कि स्त्री और पुरुष के मध्य इन्द्रिय विषयक आकर्षण अस्वाभाविक है। विवाह स्त्री पुरुषों के हृदयों को कुत्सित वासनाओं से शुद्ध कर देने और उन्हें ईश्वर के अधिक निकट पहुँचाने का साधन है। स्त्री और पुरुष के मध्य वासना हीन प्रेम असंभव नहीं है। मनुष्य पशु नहीं है। वह अनेक पाशविक योनि धारण करने के पश्चात् इस उच्चयोनि को प्राप्त हुआ है। वह खड़े होने के लिये उत्पन्न हुआ है, न कि चारों पैर से चलने या रेंगने के लिए। मनुष्यता से पाशविकता इतनी दूर है, जितनी आत्मा से पार्थिव वस्तु।

अत में इसकी प्राप्ति के साधनों को संक्षेप में लिखूँगा।

पहली बात इसकी आवश्यकता का अनुभव करना है।

दूसरी बात धीरे-धीरे इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना है। ब्रह्मचारी को अपनी रसना पर नियन्त्रण रखना अत्यंत आवश्यक है। उसे जीवित रहने के लिये भोजन करना चाहिए, न कि आनंद के उपभोग के लिये। उसे केवल पवित्र वस्तु के सामने अपने नेत्र बंद कर लेने चाहिए। इसी कारण नेत्र को पृथ्वी की ओर झुकाकर चलना विनम्र सदाचार का लक्षण है। एक वस्तु से दूसरी वस्तु पर आँखें नचाना नहीं। इसी प्रकार ब्रह्मचारी को अश्लील या अपवित्र बातें न सुननी चाहिए। साथ ही तीव्र उत्तेजक वस्तुएँ न सूँघनी चाहिए। पवित्र मिट्टी की सुगंध कृत्रिम सुगंधित पदार्थों और इत्र की सुगंधि से अधिक मधुर होती है। ब्रह्मचर्य के इच्छुक सभी व्यक्तियों को जागते समय अपने हाथ पैर सदा स्वास्थ्यकर कार्यों में लगाए रहना चाहिए। उसे कभी-कभी उपवास भी करना चाहिए।

तीसरी बात पवित्र विचारवाले साथी और पवित्र मित्र होना है।

अंतिम किंतु अत्यंत आवश्यक प्रार्थना यह है कि उसे प्रतिदिन नियम-पूर्वक हृदय से रामायण का पाठ करना चाहिए और ईश्वर के आशीर्वाद के लिए प्रार्थना करना चाहिए।

इन सब बातों में से कोई भी बात प्रत्येक साधारण स्त्री या पुरुष के लिये कठिन नहीं है। वे स्वयं सादगी की मूर्ति हैं। किंतु उनकी सादगी ही भ्रामक है। जहाँ कहीं दृढ़ इच्छा होती है, वहाँ सुगम मार्ग मिल जाता है। मनुष्य इसके लिये दृढ़ इच्छा नहीं रखते, इसलिये व्यर्थ में भटकते रहते हैं। संसार आत्म-संयम या ब्रह्मचर्य्य के पालन पर ही रुका हुआ है। तात्पर्य यह कि यह आवश्यक और कार्यान्वित होने योग्य है।

ब्रह्मचर्य्य के अनुभव

[नेटाल में एक बार ज़ुलू लोगों ने बलवा खड़ा कर दिया था। उस समय महात्माजी ने घायलों की सेवा करने का काय स्वीकार किया था। महात्माजी के अनुभव, ब्रह्मचर्य्य के विषय में यहीं पक्के हुए थे। अपनी आत्मकथा में उन्होंने इस विषय पर जो प्रकाश डाला है, वही यहाँ दिया जाता है।]

ब्रह्मचर्य्य के विषय में मेरे विचार यहीं परिपक्व हुए। अपने साथियों से भी मैंने उसकी चर्चा की। हाँ, यह बात अभी मुझे स्पष्ट नहीं दिखाई देती थी कि ईश्वर दर्शन के लिये ब्रह्मचर्य्य अनिवार्य है। परतु यह बात मैं अच्छी तरह जान गया कि सेवा के लिये उसकी बहुत आवश्यकता है। मैं जानता था कि इस प्रकार की सेवाएँ मुझे दिन दिन अधिकाधिक करनी पड़ेंगी और यदि मैं भोग-विलास में, प्रजोत्पत्ति और संतान पालन मे लगा रहा तो पूरी तरह सेवा मैं न कर सकूँगा। मैं दो घोड़े पर सवारी नहीं कर सकता। यदि पत्नी इस समय गर्भवती होती तो मैं निश्चित होकर आज इस सेवा कार्य मे नहीं कूद सकता था। यदि ब्रह्मचर्य का पालन न किया जाय तो कुटुम्ब-वृद्धि मनुष्य के उस प्रयत्न की विरोधक हो जाय, जो उसे समाज के अभ्युदय के लिये करना चाहिए। पर यदि विवाहित होकर भी ब्रह्मचर्य्य का पालन हो सके तो कुटुम्ब-सेवा, समाज सेवा की विरोधक नहीं हो सकती। मैं इन विचारों के भँवर में पड़ गया और ब्रह्मचर्य्य का व्रत ले लेने के लिये कुछ अधीर हो उठा। इन विचारों से मुझे एक प्रकार का आनद हुआ और मेरा उत्साह बढ़ गया। इस समय कल्पना ने सेवा का क्षेत्र बहुत विशाल कर दिया।

फिनिक्स में पहुँचकर मैंने ब्रह्मचर्य्य विषयक अपने विचार

भोजन में अधिक संयम और अधिक परिवर्तन की प्रेरणा की। फिर जो परिवर्तन मैं पहले मुख्यतः आरोग्य की दृष्टि से करता था, वे अब धार्मिक दृष्टि से होने लगे। इसमें उपवास और अल्पाहार ने अधिक स्थान लिया। जिनके अंदर विषय-वासना रहती है, उनकी भिवहुजत स्वाद लोलुप रहती है। यही स्थिति मेरी भी थी। जननेंद्रिय और स्वादेंद्रिय पर कब्जा करते हुए मुझे बहुत विडम्बनाएँ सहनी पड़ी हैं और अब भी मैं यह दावा नहीं कर सकता कि इन दोनों पर मैंने पूरी विजय प्राप्त कर ली है। मैंने अपने को अत्याहारी माना है। मित्रों ने जिसे मेरा संयम माना है, उसे मैंने कभी वैसा नहीं माना। जितना अंकुश मैं रख सका हूँ, उतना यदि न रख सका होता, तो मैं पशु से भी गया-बीता होकर अब तक कभी का नाश को प्राप्त हो गया होता। मैं अपनी खामियों को ठीक-ठीक जानता हूँ और कह सकता हूँ कि उन्हें दूर करने के लिये मैंने भारी प्रयत्न किए हैं। मैं उसीसे इतने साल तक इस शरीर को टिका सका हूँ।

इस बात का भान होने के कारण और इस प्रकार की संगति अनायास मिल जाने के कारण मैंने एकादशी के दिन फलाहार उपवास शुरू किए। जन्माष्टमी इत्यादि दूसरी तिथियों का भी पालन करने लगा। परंतु संयम की दृष्टि से फलाहार और अन्नाहार में मुझे बहुत भेद न दिखाई दिया। अनाज के नाम से हम जिन वस्तुओं को जानते हैं, उनमें से जो रस मिलता है, वही फलाहार से भी मिलता है, और आदत पड़ने के बाद मैंने देखा कि उनसे अधिक रस मिलता है। इस कारण इन तिथियों के दिन सूखा उपवास अथवा एक बार भोजन करने को अधिक महत्व दिया गया। फिर प्रायश्चित आदि का भी कोई निमित्त मिल जाता तो उस दिन भी एक बार भोजन कर डालता। इससे मैंने यह अनुभव किया कि

शरीर के अधिक स्वच्छ होने से रसों की वृद्धि हुई। भूख बढी और मैंने देखा कि उपवास आदि जहाँ एक ओर सयम के साधन हैं, वहीं दूसरी ओर वे भोग के साधन भी बन सकते हैं। यह ज्ञान हो जाने पर इसके समर्थन में उसी प्रकार के मेरे तथा दूसरों के कितने ही अनुभव हुए हैं। मुझे तो यद्यपि अपना शरीर अच्छा और गठित बनाना था, तथापि अब तो मुख्य हेतु था संयम को साधना और रसों को जीतना। इसलिये भोजन की चीजों मे और उनकी मात्रा में परिवर्तन करने लगा। परतु रस तो हाथ धोकर पीछे पडे रहते। एक वस्तु को छोडकर जब उसकी जगह दूसरी वस्तु लेता, तो उनमें से भी नए और अधिक रस उत्पन्न होने लगते। इन प्रयोगों में मेरे साथ और साथी भी थे। उन्होंने मेरे प्रत्येक उपवास में एक बार भोजन करने मे एव दूसर परिवर्तनों में मेरा साथ दिया था। हम दोनों इन परिवर्तनो के विषय में चर्चा करते और नए परिवर्तनों से पुराने रसों से भी अधिक रस पीते। उस समय तो ये सवाद बडे मीठे लगते थे। यह नहीं मालूम होता था कि उनमें कोई बात अनुचित है। पर अनुभव ने सिखाया कि ऐसे रसों मे गोते खाना भी अनुचित था। इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्य को रस के लिये नहीं, बल्कि शरीर को क़ायम रखने के लिये भोजन करना चाहिए। प्रत्येक इन्द्रिय जब शरीर के और शरीर के द्वारा आत्मा के दर्शन क लिये काम करती है, तब उसके रस शून्यवत् हो जाते हैं और तभी कह सकते हैं कि वह स्वाभाविक रूप म अपना काम करती है।

ऐसी स्वाभाविकता प्राप्त करने के लिये जितने प्रयोग किए जायँ, उतने ही कम हैं। और ऐसा करते हुए यदि अनेक शरीरों की आहुति देनी पड़े तो भी हमें उसकी परवा न करनी चाहिए। अभी आजकल उल्टी गगा बह रही है। नाशवान शरीर को शोभित करने, उसकी

आयु को बढ़ाने के लिये हम अनेक प्राणियों का बलिदान करते हैं। पर यह नहीं समझते कि उससे शरीर और आत्मा दोनों का हनन होता है। एक रोग मिटाते हुए इन्द्रियों के भोगों को भोगने का उद्योग करते हुए हम नए नए रोग पैदा करते हैं और अन्त को भोग भोगने की शक्ति भी खो बैठते हैं। और सबसे बढ़कर आश्चर्य की बात तो यह है कि इस क्रिया को अपनी आँखों के सामने होते देखते हुए भी हम उसे देखना नहीं चाहते।

× × × ×

जो लोग ब्रह्मचर्य का पालन करने की इच्छा रखते हैं उनको यहाँ एक चेतावनी देने की आवश्यकता है। यद्यपि मैंने ब्रह्मचर्य के साथ भोजन और उपवास का निकट संबंध बताया है, फिर भी यह निश्चित है कि इसका मुख्य आधार हमारा मन है। मलिन मन उपवास से शुद्ध नहीं होता। भोजन का उसपर असर नहीं होता। मन की मलिनता विचार से, ईश्वर ध्यान से और अन्त को ईश्वर के प्रसाद से ही मिटती है, परंतु मन का शरीर के साथ निकट संबंध है। और विकारयुक्त मन अपने अनुकूल भोजन की तलाश में रहता है। सविकार मन अनेक प्रकार के स्वाद और भोगों को खोजता रहता है। फिर उस भोजन और भोगों का असर मन पर होता है। इस अंश तक भोजन पर अंकुश रखने की और निराहार रहने की आवश्यकता अवश्य उत्पन्न होती है।

मुद्रक—प० गिरिजाशंकर मेहता

मेहता फाइन आर्ट प्रेस, काशी।

संयम-शिक्षा

महात्मा गांधी

ब्रह्मचारी की शक्ति के सामने सारा संसार मस्तक झुकायेगा। उसका प्रभाव मुकुट धारी राजा की अपेक्षा कहीं अधिक पड़ेगा।

—गांधीजी

संयम-शिक्षा

महात्मा गांधी

प्रकाशक

शारदा-सदन, प्रयाग

पहली बार } जून, १९३३ { मूल्य ।=)

विषय-सूची

एक बात

संयम की समस्या, भारतीय जीवन की अत्यन्त आवश्यक, महत्त्वपूर्ण और ऐसी समस्या है जिसकी किसी भी दृष्टि से उपेक्षा नहीं की जा सकती। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संयम और सदाचार की नितान्त आवश्यकता है। प्राचीन भारत में आरम्भ से इस प्रश्न पर अधिक ध्यान दिया जाता था। यहाँ बच्चों के जीवन का श्रीगणेश ही ब्रह्मचर्य की कठोर साधना से होता था। प्रत्येक ब्रह्मचारी को अपने प्रारम्भिक जीवन के २५ वर्ष ब्रह्मचर्य की अग्नि-परीक्षा में प्रवेश कर बिताने पड़ते थे। फलस्वरूप हिमालय के अञ्चल में बाल क्रीड़ा करनेवाले बच्चे, भागीरथी और सिन्धु के किनारे, सिंह शावकों की भाँति स्वतन्त्र वायु मण्डल में निद्वन्द्व विचरण करनेवाले ब्रह्मचारी, आगे चलकर गौतम, कपिल और कणादि के रूप में विश्व के रङ्गमञ्च पर अवतीर्ण हुए और उन्होंने मानव-जीवन की सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा जटिल से जटिलतम पहेलियों को सुलझाकर सांख्य, मीमांसा और न्याय जैसे उच्च कोटि के अमर ग्रंथों के रूप में अपने अद्भुत ज्ञान के वे अमृत फल दिये जिन्हें पाकर विश्व का धरा धाम धन्य होगया!

ही स सयम की शिक्षा पर ज़ोर देते आरहे हैं। अपने व्याव हारिक जीवन के प्रत्येक क्षण को उन्होंने सयम के सूत्र में जकड़ कर बाँध रखा है। ब्रह्मचर्य और सयम के सम्बन्ध में उन्होने जो प्रयोग किये हैं, वे, आगे आनेवाली पीढ़ियों तक, अनेक प्रकार की आधि-व्याधियों से पीड़ित विश्व के सन्तप्त प्राणियों के लिए राम-बाण औषधि का काम देंगे। उन प्रयोगों में सचमुच पराधीन भारत के गिरे हुए लोगों के आत्मोद्धार की समस्या का अचूक इलाज निहित है। इस पुस्तक में महात्माजी के ब्रह्मचर्य और सयम सम्बन्धी विचारों का सङ्कलन किया गया है इस उद्देश्य को सामने रखकर कि, उनके तपोनिष्ठ जीवन के अनुभव, तथा मानव-जीवन को स्वर्गीय आनन्द से ओत प्रोत कर देनवाल दिव्य ज्ञान की प्रकाश किरणें अधिक से अधिक हिन्दी भाषा लोगों के अन्तस्तल में प्रवेश करें।

आशा है कि सयम शिक्षा' इस उद्देश्य को पूरा करने में सहायक सिद्ध होगा।

सुरेन्द्र शर्मा

संयम-शिक्षा

अथवा

अमरजीवन की साधना

ब्रह्मचर्य

हमारे व्रतों में तीसरा व्रत ब्रह्मचर्य का है। दूसरे सब व्रत एक सत्य के व्रत से ही उत्पन्न होते हैं, और उसी के लिये उनका अस्तित्व रहा है। जो मनुष्य सत्य का वरण किये हुये है वह उसी की उपासना करता है, और वह यदि किसी भी दूसरी चीज़ की आराधना करता है तो व्यभिचारी ठहरता है। इस दशा में विकार की आराधना क्योंकर की जा सकती है? जिसकी सारी प्रवृत्ति

एक सत्य के दर्शन के लिये है वह सन्तान पैदा करने या गृहस्थी चलाने के काम में क्योंकर पड़ सकता है? भोग विलास द्वारा किसी को सत्य की प्राप्ति हुई हो, ऐसी एक भी मिसाल हमारे पास नहीं है।

अहिंसा के पालन को लें तो उसका सम्पूर्ण पालन भी ब्रह्मचर्य के बिना अशक्य है। अहिंसा के मानी है, सर्वव्यापी प्रेम। पुरुष के एक स्त्री को या स्त्री के एक पुरुष को अपना प्रेम अर्पण कर चुकने पर उसके पास दूसरे के लिये क्या रहा? इसका तो यही मतलब हुआ कि 'हम दो पहले और दूसरे सब पीछे।' पतिव्रता स्त्री पुरुष के लिये और पत्नीव्रती पुरुष स्त्री के लिये सर्वस्व होमने को तैयार होगा, यानी इससे यह ज़ाहिर है कि उससे सर्वव्यापी प्रेम का पालन हो ही नहीं सकता। वह सारी सृष्टि को अपना कुटुम्ब कभी बना ही नहीं सकता, क्योंकि उसके पास, उसका अपना माना हुआ कुटुम्ब है, या तैयार हो रहा है। जितनी उसमें वृद्धि होगी, सर्वव्यापी प्रेम में उतनी ही बाधा पड़ेगी। हम देखते है कि सारे जगत में यही हो रहा है। इसलिये अहिंसा व्रत का पालन करनेवाला विवाह कर नहीं सकता, विवाह के बाहर के विकार की तो बात ही क्या है?

तो फिर जो विवाह कर चुके हैं, उनका क्या हो ? उन्हें क्या सत्य किसी दिन नहीं मिलेगा ? वे कभी सर्वार्पण नहीं कर सकेंगे ? हमने इसका रास्ता निकाला ही है। वह रास्ता यह है कि विवाहित अविवाहित-सा बन जाय। इस दशा में ऐसा सुन्दर अनुभव और कोई मैंने किया ही नहीं। इस स्थिति का स्वाद जिसने चखा है, वही इसकी गवाही दे सकता है। आज तो इस प्रयोग की सफलता सिद्ध हुई कही जा सकती है। विवाहित स्त्री पुरुष का एक-दूसरे को भाई-बहन मानने लगना सारे झगड़ों से मुक्त होना है। संसारभर की सारी स्त्रियाँ बहनें हैं, माताएँ हैं, लड़कियाँ हैं, यह विचार ही मनुष्य को एक दम ऊँचा उठाने वाला है, बन्धन से मुक्त करनेवाला है। इससे पति पत्नी कुछ खोते नहीं, उलटे अपनी पूँजी बढ़ाते हैं। कुटुम्ब-वृद्धि करते हैं। विकार रूप मैल को दूर करने से प्रेम भी बढ़ता है, विकार नष्ट करने से एक-दूसरे की सेवा भी अधिक अच्छी हो सकती है। एक दूसरे के बीच कलह के अवसर कम होते हैं। जहाँ प्रेम स्वार्थ और एकांगी है, वहाँ कलह की गुंजाइश ज्यादा है।

इस मुख्य बात का विचार करने के बाद और इसके हृदय में पैठ जाने पर ब्रह्मचर्य से होनेवाले शारीरिक लाभ, वीर्य-लाभ

आदि बहुत गौण होजाते हैं। इरादा करके भोग-विलास के लिये वीर्य नष्ट करना और शरीर को निचोड़ना कैसी मूर्खता है! वीर्य का उपयोग तो दोनों की शारीरिक और मानसिक शक्ति बढ़ाने में है। विषय भोग में उसका उपयोग करना, उसका अत्यन्त दुरुपयोग है, और इस कारण वह अनेक रोगों का मूल कारण बन जाता है।

ब्रह्मचर्य का पालन, मन, वचन और काया से होना चाहिये। हर व्रत के लिये यही ठीक है। हमने गीता में पढ़ा है कि जो शरीर को काबू में रखता हुआ जान पड़ता है, पर मन मे विकार का पोषण किया करता है, वह मूढ़ मिथ्याचारी है। सब किसी को इसका अनुभव होता है। मन को विकारपूर्ण रखकर, शरीर को दबाने की कोशिश करना हानिकर है। जहाँ मन है, वहाँ अन्त को शरीर गये बिना नहीं रहता।

यहाँ एक भेद समझ लेना ज़रूरी है। मन को विकारवश होने देना एक बात है, और मन का अपने आप, अनिच्छा से, बलात् विकार को प्राप्त होना, या होते रहना दूसरी बात है। इस विकार में हम यदि सहायक न बनें तो आख़िर जीत हमारी ही है। हम प्रतिपल यह अनुभव करते हैं कि हमारा शरीर तो

क़ाबू में रहता है, पर मन नहीं रहता। इसलिये शरीर को तुरन्त ही वश में करने की रोज़ कोशिश करने से हम अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं—कर चुकते हैं। यदि हम अपने मन के अधीन हो जायँ तो शरीर और मन में विरोध खड़ा होजाता है, और मिथ्याचार का आरम्भ होजाता है। जब तक मनोविकार को दबाते ही रहते हैं तब तक दोनों साथ साथ चलते हैं।

इस ब्रह्मचर्य का पालन बहुत कठिन, लगभग अशक्य ही माना गया है। इसके कारण का पता लगाने से मालूम होता है कि ब्रह्मचर्य का संकुचित अर्थ किया गया है। जननेन्द्रिय-विकार के निरोध को ही ब्रह्मचर्य का पालन माना गया है। मेरी राय में यह अधूरी और खोटी व्याख्या है। विषयमात्र का निरोध ही ब्रह्मचर्य है। जो और और इन्द्रियों को जहाँ-तहाँ भटकने देकर केवल एक ही इन्द्रिय को रोकने का प्रयत्न करता है वह निष्फल प्रयत्न करता है, इसमें शक ही क्या है? कान से विकार की बातें सुनना, आँख से विकार उत्पन्न करनेवाली वस्तु देखना, जीभ से विकारोत्तेजक वस्तु चखना, हाथ से विकारों को भड़कानेवाली चीज़ को छूना और साथ ही जननेन्द्रियों को रोकने का प्रयत्न करना, यह तो आग में हाथ डालकर जलने से बचने का प्रयत्न

करने के समान हुआ। इसलिये जो जननेन्द्रिय के रोकने का प्रयत्न करे, उसे पहले ही से प्रत्येक इन्द्रिय को उसके विकारों से रोकने का निश्चय कर ही लेना चाहिये। मैंने सदा से यह अनुभव किया है कि ब्रह्मचर्य की सङ्कुचित व्याख्या से नुकसान पहुँचा है। मेरा तो यह निश्चय मत है और अनुभव है कि यदि हम सब इन्द्रियों को एक साथ वश में करने का अभ्यास करें तो जननेन्द्रिय को वश में करने का प्रयत्न शीघ्र ही सफल हो सकता है, तभी उसमें सफलता प्राप्त की जा सकती है। इसमें मुख्य स्वाद इन्द्रिय है। इसीलिये उसके सयम को हमने पृथक् स्थान दिया है।

ब्रह्मचर्य के मूल अर्थ को सब लोग याद रखें। ब्रह्मचर्य अर्थात् ब्रह्म की—सत्य की शोध में चर्या, अर्थात् तत्सम्बन्धी आचार। इस मूल अर्थ से सर्वेन्द्रिय सयम का विशेष अर्थ निकलता है। केवल जननेन्द्रिय-सयम के अधूरे अर्थ को तो हम भूला ही दें।

अस्वाद

यह व्रत ब्रह्मचर्य से निकटसम्बन्ध रखनेवाला है। मेरा अपना अनुभव तो यह है कि यदि इस व्रत का भलीभाँति पालन किया जाय तो ब्रह्मचर्य अर्थात् जननेन्द्रिय संयम बिल्कुल आसान होजाय। पर आमतौर से इसे कोई भिन्न व्रत नहीं मानता, क्योंकि स्वाद को बड़े मुनिवर भी नहीं जीत सके हैं। इसी कारण इस व्रत को पृथक् स्थान नहीं मिला। यह तो मैंने अपने अनुभव की बात कही है। वास्तव में बात ऐसी हो या न हो, तो भी चूँकि हमने इस व्रत को अलग माना है, इसलिये स्वतन्त्र रीति से इसका विचार करना ही उचित है।

अस्वाद का अर्थ है, स्वाद न करना। स्वाद अर्थात् रस, ज़ायका। जिस तरह दवा खाते समय हम इस बात का विचार नहीं करते कि वह ज़ायकेदार है या नहीं, पर शरीर के लिये उसकी आवश्यकता समझकर ही उसे योग्य मात्रा में खाते हैं, उसी तरह अन्न को भी समझना चाहिये। अन्न अर्थात् समस्त खाद्य पदार्थ—अतः इसमें दूध और फल भी शामिल हैं। जैसे थोड़ी

मात्रा में जो हुई दवा असर नहीं करती, या थोड़ा असर करती है, और ज़्यादा लेने पर नुक़सान पहुँचाती है, वैसे ही अन्न का भी हाल है। इसलिये स्वाद के लिये किसी भी चीज़ को चखना व्रत का भङ्ग है। ज़ायक़ेदार चीज़ को ज़्यादा खाने से तो सहज ही व्रत का भङ्ग होता है। इससे यह प्रकट है कि किसी पदार्थ का स्वाद बढ़ाने, बदलने या उसके अस्वाद को मिटाने का ग़रज़ से उसमें नमक आदि मिलाना व्रत का भङ्ग करना है। लेकिन अगर हम जानते हों कि अन्न में नमक की अमुक मात्रा में ज़रूरत है और इसलिये उसमें नमक छोड़ें, तो इससे व्रत भङ्ग नहीं होता।

शरीर पोषण के लिये आवश्यक न होते हुये भी मन को धोखा देने के लिये आवश्यकता का आरोपण करके कोई चीज़ मिलाना स्पष्ट ही मिथ्याचार कहा जायगा।

इस दृष्टि से विचार करने पर हमें पता चलेगा कि जो अनेक चीज़ें हम खाते हैं, वे शरीर-रक्षा के लिये ज़रूरी न होने से त्याज्य ठहरती हैं, और यों जो असंख्य चीज़ों को छोड़ देता है उसके समस्त विकारों का शमन होजाता है। 'पेट जो चाहे कराये,' 'पेट चण्डाल है;' 'पेट सुई, मुँह सुई,' पेट में पड़ा चारा, तो कूदन

लगा विचारा,' 'जब आदमी के पेट में आती है रोटियाँ, फूली नहीं बदन में समाती हैं रोटियाँ'—आदि कहावतें बहुत सारगर्भित हैं। इस विषय पर इतना कम ध्यान दिया गया है कि व्रत की दृष्टि से खुराक को पसन्द करना लगभग नामुमकिन होगया है। इधर बचपन ही से माँ बाप झूठा प्यार करके, अनेक प्रकार की ज़ायकेदार चीज़ें खिला पिलाकर बालकों के शरीर को निकम्मा और उनको जीभ को कुत्ता बना देते हैं। फलत बडे होने पर उनकी जीवन यात्रा शरीर से रोगी और स्वाद की दृष्टि से महा-विकारी पायी जाती है। इसके कडुवे फलों को हम पग-पग पर देखते है। अनेक तरह के खर्च करते हैं, वैद्य डाक्टरों की सेवा उठाते हैं और शरीर तथा इन्द्रिया को वश में रखने के बदले उनके गुलाम बनकर पङ्गु सा जीवन बिताते हैं। एक अनुभवी वैद्य का कहना है कि उसने दुनिया में एक भी नीरोग मनुष्य नहा देखा। थोडा भी स्वाद किया कि शरीर भ्रष्ट हुआ और तभी से उस शरीर के लिये उपवास की ज़रूरत पैदा होगयी।

इस विचार धारा से कोई घबराये नहीं। अस्वाद व्रत की भयङ्करता देखकर उसे छोड़ने की भी ज़रूरत नहीं है।

जब हम कोई व्रत लेते हैं तब उसका यह मतलब नहीं कि तभी से उसका पूर्णतया पालन करने लग जाते हैं। व्रत लेने का अर्थ है, उसका सम्पूर्ण पालन करने के लिये, मरते दम तक मन, वचन और कर्म से प्रामाणिक तथा दृढ़ प्रयत्न करना। कोई व्रत कठिन है, इसीलिये उसकी व्याख्या को शिथिल करके हम अपने आप को धोखा न दें। अपनी सुविधा के लिए आदर्श को नीचे गिराने में असत्य है, हमारा पतन है। स्वतंत्र रीति से आदर्श को पहचानकर, उसके चाहे जितना कठिन होने पर भी, उसे पाने के लिये जीतोड़ प्रयत्न करने का नाम ही परम अर्थ है, पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ का अर्थ हम केवल नर तक ही परिमित न रखें। मूलार्थ के अनुसार जो पुर यानी शरीर में रहता है, पुरुष है, इस अर्थ के अनुसार पुरुषार्थ शब्द का उपयोग नर नारी दोनों ही के लिये हो सकता है। जो तीनों कालों में महाव्रतों का सम्पूर्ण पालन करने में समर्थ है, उसके लिए इस जगत में कुछ कार्य कर्तव्य नहीं है। वह भगवान् है, मुक्त है। हम तो अल्प मुमुक्षु, सत्य का आग्रह रखनेवाले, और उसका शोध करनेवाले प्राणी हैं। इसलिये गीता की भाषा में धीरे धीरे, पर अतन्द्रित रहकर प्रयत्न करते चलें। ऐसा करने से किसी दिन प्रभु प्रसादी

के योग्य हो जायँगे और तब हमारे समस्त विकार भी भस्म हो जायँगे।

अस्वाद व्रत के महत्त्व को समझ चुकने पर हमें उसके पालन का नये सिरे से प्रयत्न करना चाहिये। इसके लिए चौबीसों घंटे खाने ही की चिन्ता करना आवश्यक नहीं है। सावधानी की—जागृति की—बहुत ज़रूरत है। ऐसा करने से कुछ ही समय में हमें मालूम होने लगेगा कि हम कब और कहाँ स्वाद करते हैं। मालूम होने पर हमें चाहिये कि हम अपनी स्वाद वृत्ति को दृढ़ता के साथ कम करें। इस दृष्टि से संयुक्त पाक, यदि वह अस्वाद वृत्ति से किया जाय, बहुत सहायक है। उसमें हमें रोज़-रोज़ इस बात का विचार नहीं करना पड़ता कि आज क्या पकावेंगे और क्या खावेंगे। जो कुछ बना है और जो हमारे लिये त्याज्य नहीं है, उसे ईश्वर की कृपा समझकर, मन में भी उसकी टीका न करते हुये, शरीर के लिये जितना आवश्यक हो, संतोषपूर्वक उतना ही खाकर हम उठ जायँ। ऐसा करनेवाला सहज ही अस्वाद व्रत का पालन करता है। संयुक्त रसोई बनानेवाला हमारा बोझ हलका करता है, हमारे व्रतों का रक्षक बनता है। संयुक्त रसोई बनानेवाले हमें स्वाद कराने की दृष्टि से कुछ भी

न पकावे, केवल समाज के शरीर पोषण के लिये ही रसोई तैयार करें। वास्तव म तो आदर्श स्थिति यह है, जिसम अग्नि का खर्च कम से कम या बिलकुल न हो। सूर्यरूपी महा अग्नि जो खाद्य पकाती है उसी से हमें अपने लिये खाद्य पदार्थ चुन लेने चाहिये। इस विचार दृष्टि से यह साबित होता है कि मनुष्य केवल फलाहारी है। लेकिन यहाँ इतने गहरे पैठने की जरूरत नहीं है। यहाँ तो विचार करना था कि अस्वाद व्रत क्या है, उसके मार्ग में कौन सी कठिनाइयाँ है और नहीं हैं, तथा उसका ब्रह्मचर्य के साथ कितना अधिक निकट का सम्बन्ध है। यह बात ठीक-ठीक हृदयङ्गम हो जाने पर सब लोग इस व्रत को पूर्णत पालन करने का शुभ उद्योग करें।

सयम क्या है ?

भादरण की एक सावजनिक सभा में आत्म सयम की व्याख्या करते हुये महात्मा गाँधी ने कहा था—

आप की इच्छा है कि मैं ब्रह्मचर्य क सम्बन्ध में कुछ कहूँ। कितनी ही बातें ऐसी हैं जिन पर मैं 'नवजीवन' में कभी-कभी लिखता हूँ। परन्तु उनपर भाषण तो शायद ही देता हूँ, क्योंकि यह विषय कहकर नहीं समझाया जा सकता। आप तो साधारण ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में मेरे विचार सुनना चाहते हैं, उस ब्रह्मचय के सम्बन्ध में नहीं, जिसका व्यापक अर्थ है, 'समस्त इंद्रियों का सयम।' शास्त्रकारों ने साधारण ब्रह्मचय को भी बड़ा कठिन बताया है। यह बात ९९ फी सदी सच है, पर इसमें एक फी सदी कमी है। इसका पालन इसलिये कठिन जान पड़ता है कि हम दूसरी इन्द्रियों का सयम नहीं करते। दूसरी इन्द्रियों में मुख्य है, जिह्वा। जो अपनी जिह्वा को वश में रख सकता है उसके लिये ब्रह्मचय सुगम होजाता है। प्राणिशास्त्र विशारदों का कहना है

के लिये नहीं। सर्दी से ठिठुरे हुये लड़के को जब हम अँगीठी के पास बैठा देंगे, या मुहल्ले में कहीं खेलने-कूदने को भेज देंगे, तभी उसका शरीर वज्र की तरह मज़बूत होगा। जो ब्रह्मचर्य का पालन करता है उसका शरीर वज्र की तरह मज़बूत ज़रूर होना चाहिये। हम तो बच्चों के शरीर को नष्ट कर डालते हैं। हम उस घर में बन्द रखकर गरम कर देना चाहते हैं। इससे तो उसके चमड़े में ऐसी गर्मी भर जाती है जिसे हम खाजा के नाम से पुकार सकते हैं। हमने शरीर को लाड़ प्यार से खराब कर दिया है।

घर में तरह-तरह की बातें करके हम बालकों के मन पर बुरा प्रभाव डालते हैं। हम उनकी शादी की बातें करते हैं और इसी तरह की चीज़ें और अनेक दृश्य भी उन्हें दिखाते हैं। मुझे तो ताज्जुब होता है कि हम जगली ही क्यों न होगये ? ईश्वर ने मनुष्य की रचना इस प्रकार की है कि पतन के अनेक अवसर आने पर भी वह बच जाता है। उसकी लीला एसी गहन है। यदि हम ब्रह्मचर्य के रास्ते में ये सब विघ्न दूर कर दें तो उसका पालन बहुत सुगमता से होजाय।

इस दशा में, हम ससार के साथ शारीरिक मुक़ाबला करना चाहते हैं। उसके दो मार्ग हैं। एक आसुरी, और दूसरा दैवी।

आसुरी मार्ग है—शारीरिक बल प्राप्त करने के लिये हर तरह के उपायों से काम लेना—मास आदि हर तरह की चीज़ें खाना। मेरे बचपन में मेरा एक दोस्त मुझसे कहा करता कि हमें मास ज़रूर खाना चाहिये, अन्यथा हम अँगरेज़ों की तरह हट्टे-कट्टे और मज़बूत न हो सकेंगे। जापान को भी जब दूसरे देश के साथ मुक़ाबला करना पड़ा तब वहाँ मांस खाने की प्रथा चल पड़ी। यदि आसुरी ढग से शरीर को तैयार करने की इच्छा हो तो इन चीज़ों का सेवन करना पड़ेगा। परन्तु यदि दैवी साधन से शरीर तैयार करना हो तो उसका एक मात्र उपाय ब्रह्मचर्य है। जब मुझे कोई नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहकर पुकारता है तब मुझे अपने ऊपर दया आती है। इस मानपत्र में मुझे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहा गया है। जिन लोगो ने इस अभिनन्दन-पत्र का मसौदा तैयार किया है उन्हें पता नहीं है कि नैष्ठिक ब्रह्मचर्य किसे कहते हैं? और जिसके बाल बच्चे होगये हैं उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कैसे कह सकते हैं? नैष्ठिक ब्रह्मचारी को न तो कभी बुख़ार आता है, और न कभी उसके सिर में दर्द होता है। उसे न कभी खाँसी होती है और न कभी पेट के फोड़े की शिकायत ही होती है। डाक्टर लोग कहते हैं कि नारगी का बीज आँत में रह जाने से

भी पेट का फोड़ा होजाता है। परन्तु जिसका शरीर स्वच्छ और नीरोग होता है उसमें ये बीज टिक ही नहीं सकते।

मैं चाहता हूँ कि मुझे नैष्ठिक ब्रह्मचारी बताकर कोई मिथ्या वादी न हों। नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का तेज तो मुझसे कई गुना अधिक होना चाहिये। मैं आदर्श ब्रह्मचारी नहीं हूँ। हाँ, मैं वैसा बनना ज़रूर चाहता हूँ। मैंने तो ब्रह्मचर्य की सीमा बतानेवाले अपने अनुभव के कुछ कण आपके सामने रखे हैं।

ब्रह्मचारी रहने का यह मतलब नहीं है कि मैं किसी स्त्री को छू न सकूँ, या अपनी बहन को स्पर्श न करूँ। परन्तु ब्रह्मचारी रहने का अभिप्राय यह है कि स्त्री का स्पर्श करने से किसी तरह का विकार ऐसे न पैदा हो जैसे कि काग़ज़ को छू लेने से नहीं होता। मेरी बहन बीमार हो, और ब्रह्मचर्य के कारण उसकी सेवा करने या उसे छूने में, मुझे हिचकना पड़े तो वैसा ब्रह्मचर्य तीन कौड़ी का है। हम मुर्दा शरीर को छूकर जिस प्रकार निर्विकार दशा का अनुभव करते हैं उसी प्रकार किसी सुन्दर युवती को छूकर हम निर्विकार दशा में रह सकें तभी हम ब्रह्मचारी हैं। यदि आप यह चाहते हैं कि बालक ऐसे ब्रह्मचारी बनें, तो इसका पाठ्य-क्रम आप नहीं बना सकते, ऐसा अभ्यास-क्रम, तो मुझ जैसा

चाहे वह अधूरा ही क्या न हो, कोइ ब्रह्मचारी ही बना सकता है।

ब्रह्मचारी स्वाभाविक सन्यासी होता है। ब्रह्मचर्याश्रम तो सन्यासाश्रम से भी बढ़कर है। परन्तु हमने उसे गिरा दिया है। इससे हमारे गृहस्थाश्रम और वानप्रस्थाश्रम दोनों ही बिगड़ गये हैं, और सन्यास का तो नाम भी नहीं रह गया है। हमारी ऐसी असहाय अवस्था होगइ है।

ऊपर जो आसुरी माग बताया गया है उस पर अनुगमन करके तो आप पाँच सौ वर्षों में भी पठानों का मुकाबिला न कर सकेंगे। यदि आज दैवी माग का अनुकरण हो तो आज ही पठानों का मुकाबला किया जा सकता है, क्योंकि दैवी साधन से आवश्यक मानसिक परिवतन एक क्षण में हो सकता है। परन्तु शारीरिक परिवतन करने के लिये तो युग बीत जाते हैं। हम दैवी माग का अनुकरण तभी कर सकेंगे जब हमारे पहले पूर्व जन्म का पुण्य होगा, और हमारे लिये माँ बाप उचित साधन पैदा करेंगे।

राम कृपा

एक सज्जन लिखते हैं—

"आपने एक बार काठियावाड़ की यात्रा में कहा था कि मैं जो तीन पहिनों से बच गया सो केवल राम नाम के भरोसे। इस सम्बन्ध में "सौराष्ट्र" ने कुछ ऐसी बातें लिखी हैं जो समझ में नहीं आतीं। उनमें कहा गया है कि आप मानसिक पाप से न बचे। इस पर आप यदि अधिक प्रकाश डालें तो बड़ी कृपा होगी।"

पत्र-लेखक को मैं नहीं जानता। यह पत्र उन्होंने अपने भाई के हाथ मेरे पास पहुँचा दिया। ऐसी बातों की चर्चा सब-साधारण के सामने आम तौर पर नहीं की जा सकती। यदि साधारण आदमी किसी के निजी जीवन में गहरे पैठने की आदत डालें तो उसका फल बुरा हुए बिना न रहेगा।

मेरा निजी जीवन सार्वजनिक होगया है (दुनियाँ में एक भी बात ऐसी नहीं है जिसे मैं प्राइवेट रख सकूँ)। इस तरह के उचित या अनुचित प्रश्नों से मैं बच नहीं सकता। बचने का

मुझे इच्छा भी नहीं है। मेरे प्रयोग आध्यात्मिक हैं। कितने ही प्रयोग नये हैं। वे प्रयोग आत्म निरीक्षण पर आधारित हैं। 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' के सूत्र के अनुसार मैंने प्रयोग किये हैं। इसमें ऐसी धारणा का समावेश है कि जो बात मेरे सम्बन्ध में लागू है वही और लोगों के सम्बन्ध में भी होगी। इसलिये मुझे कितनी ही गुप्त बातों के उत्तर देने की भी ज़रूरत पड़ जाती है। फिर उपयुक्त प्रश्न का उत्तर देते हुए मुझे राम नाम की महिमा बताने का भी अनायास अवसर मिल जाता है। उसे मैं कैसे खो सकता हूँ ?

अब सुनिये, तीनों अवसरों पर मैं किस प्रकार ईश्वर कृपा से बच गया। तीनों अवसर वार वधुओं से सम्बन्ध रखते हैं। दो के पास विभिन्न अवसरों पर मुझे मित्रगण ले गये थे। पहले अवसर पर झूठी शर्म का मारा मैं वहाँ जा फँसा और यदि ईश्वर ने न बचाया होता तो ज़रूर मेरा पतन होजाता। जिस घर में मैं ले जाया गया वहाँ उस स्त्री ने ही मेरा तिरस्कार किया। मैं यह बिल्कुल नहीं जानता कि ऐसे मौकों पर किस तरह क्या कहना चाहिये, और किस तरह बरतना चाहिये। इससे पहले ऐसी स्त्रियों के पास तक बैठने में, मैं

अपमान समझता था। इसी कारण ऐसे घर में घुसते समय भी मेरा हृदय काँप रहा था। मकान में घुसने के बाद उसके चेहरे की तरफ भी मैं न देख सका। मुझे पता नहीं कि उसका चेहरा था भी कैसा! ऐसे मूढ़ को वह धपला क्यों न निकाल बाहर कर देती? उसने मुझे दो चार बातें सुनाकर विदा कर दिया। उस समय तो मैंने यह न समझा कि ईश्वर ने बचाया। मैं तो खिन्न होकर थके पाँव वहाँ से लौट आया। मैं शरमिन्दा हुआ। अपनी मूढ़ता पर मुझे दुःख भी बहुत हुआ। मुझे मालूम हुआ हुआ, मानो मुझमें राम नहीं है, पीछे मुझे मालूम हुआ कि मेरी मूढ़ता ही मेरी ढाल थी। ईश्वर ने मुझे बेवकूफ बनाकर उबार लिया। नहीं तो मैं, जो बुरा काम करने के लिये गन्दे घर में घुसा, कैसे बच सकता था?

दूसरा अवसर इससे भी भयङ्कर था। यहाँ मेरी बुद्धि पहले की तरह निर्दोष न थी। मैं सावधान अधिक था। इस पर भी मेरी पूजनीया माताजी की दिलाई हुई प्रतिज्ञारूपी ढाल मेरे पास थी। विलायत की बात है। मैं जवान था। दो मित्र एक घर में रहते थे। थोड़े ही दिन के लिये वे एक गाँव में गये। मकान मालिकिन आधी वेश्या थी। उसके साथ हम दोनों ताश खेलने

लगे। उन दिनों में अवकाश मिलने पर ताश खेला करता था। विलायत में माँ-बेटा भी निर्दोष भाव से ताश खेल सकते हैं, खेलते ही हैं। उस समय भी हमने रीति के अनुसार ताश खेलना स्वीकार कर लिया। मुझे तो पता भी न था कि मकान मालिकिन अपना शरीर बेचकर अपनी जीविका चलाती है। ज्यों-ज्यों खेल जमने लगा त्या त्यों रंग भी बदलने लगा। उस बाई ने विषय चेष्टा आरम्भ कर दी। मैं अपने मित्र को देख रहा था। वे मर्यादा छोड़ चुके थे। मैं ललचाया। मेरा चेहरा तमतमा गया। उसम व्यभिचार का भाव भर गया। मैं अधीर होगया।

जिसकी राम रक्षा करता है उसे कौन गिरा सकता है? उस समय राम मेरे मुख में तो नहीं था, परन्तु वह मेरे हृदय का स्वामी ज़रूर था। मेरे मुख में तो विषयोत्तेजक भाषा थी। मेरे मित्र ने मेरा रंग-ढंग देखा। हम एक-दूसरे से अच्छी तरह परिचित थे। उन्हें ऐसे कठिन अवसरों की याद थी, जब कि मैं अपने इरादे से पवित्र रह सका था। मित्र ने देखा कि इस समय मेरी बुद्धि बिगड़ गई है। उन्होंने देखा कि यदि इस रंगत में रात अधिक जायगी तो मैं भी उनकी तरह पतित हुये बिना न रहूँगा।

विषयी मनुष्यों में भी अच्छे विचार होते हैं। इस बात का

पता मुझे पहलेपहल इन्हीं मित्र के द्वारा लगा। मेरी हीन दशा देखकर वे दुःखी हुए। मैं उम्र में उनसे छोटा था। राम ने उनके द्वारा मेरी सहायता की। उन्होंने प्रेम बाण छोड़ते हुये कहा—"मौनिया! (यह मोहनदास का दुलार का नाम है। मेरे माता पिता तथा हमारे परिवार के सबसे बड़े भाई मुझे इसी नाम से पुकारते थे। इस नाम के पुकारनेवाले चौथे ये मित्र मेरे धर्म भाई साबित हुये।) मौनिया, होशियार रहना! मैं तो गिर चुका हूँ, तुम जानते ही हो, पर तुम्हें न गिरने दूँगा। अपनी माँ के सामने की हुई प्रतिज्ञा याद करो। यह काम तुम्हारा नहीं। भागो यहाँ से, जाओ अपने बिछौने पर! हटो, ताश रख दो!"

मैंने कुछ उत्तर दिया या नहीं, याद नहीं है। मैंने ताश रख दिये। ज़रा दुःख हुआ। लज्जित हुआ। छाती धड़कने लगी। मैं उठ खड़ा हुआ। अपना बिस्तर सँभाला।

सवेरे मैं जगा। राम-नाम का आरम्भ हुआ। मन में कहने लगा, कौन बचा, किसने बचाया, धन्य प्रतिज्ञा! धन्य माता, धन्य मित्र! धन्य राम! मेरे लिये तो यह चमत्कार ही था।

यदि मेरे मित्र ने मुझ पर राम बाण न चलाये होते तो मैं आज कहाँ होता!

मेरे लिये तो यह ईश्वर साक्षात्कार का अवसर था। अब यदि मुझसे दुनियाँ पूछे कि ईश्वर नहीं, राम नहीं, तो उसे मैं झूठा कहूँगा। यदि उस भयंकर रात को मेरा पतन हो गया होता तो आज मैं सत्याग्रह की लड़ाइयाँ न लड़ा होता, तो मैं अस्पृश्यता के मैल को न धोता होता, मैं चरखे की पवित्र ध्वनि न उच्चार करता होता, तो आज मैं अपने को करोड़ों स्त्रियों के दर्शन करके पावन होने का अधिकारी न मानता होता, तो मेरे आसपास आज लाखों स्त्रियाँ ऐसे निःशङ्क होकर न बैठती होतीं, जैसे किसी बालक के आसपास बैठती हैं, मैं उनसे दूर भागता होता और वे भी मुझसे दूर रहतीं। यह उचित भी था। अपने जीवन का सबसे भयङ्कर समय मैं इस प्रसंग को मानता हूँ। स्वच्छन्दता का प्रयोग करते हुये मैंने संयम सीखा। राम को भूलते हुये मुझे राम के दर्शन हुये।

रघुवीर तुमको मेरी लाज।

हौं तो पतित पुरातन कहिये, पार उतारो जहाज।

तीसरा प्रसंग हास्यजनक है। एक यात्रा में जहाज़ के एक

कप्तान और एक अंगरेज़ यात्री से मेरा मेल होगया। जहाँ जहाज़ किसी बन्दर पर ठहरता वहाँ कप्तान और बहुत से यात्री वेश्याघर ढूंढ़ते। कप्तान ने मुझसे बन्दर देखने के लिये चलने को कहा। मैंने उसका मतलब नहीं समझा। हम सब लोग एक वेश्या के घर के सामने आकर खड़े होगये। उस वक्त मैंने जाना कि बन्दर देखने जाने का मतलब क्या है? तीन औरतें हमारे सामने खड़ी की गई। मैं तो स्तम्भित होगया। शर्म के मारे न कुछ कह सका, और न भाग ही सका। मुझे विषय की इच्छा तो ज़रा भी न थी। वे दोनों आदमी तो कमरे में घुस गये। तीसरी बाई मुझे अपने कमरे में ले गई। मैं सोच ही रहा था कि क्या करूँ—इतने ही में दोनों आदमी बाहर निकल आये। पता नहीं, उस औरत ने मेरे बारे में क्या ख्याल किया होगा! वह मेरे सामने हँस रही थी। मेरे दिल पर उसका कोई प्रभाव न पड़ा। हम दोनों ही की भाषा भिन्न थी। वहाँ मेरे बोलने का काम तो था ही नहीं। उन मित्रों के पुकारने पर मैं बाहर चला आया। मैं कुछ शरमाया तो ज़रूर। उन्होंने अब मुझे ऐसी बातों में बेवकूफ़ समझ लिया। आपस में उन्होंने मेरी दिल्लगी भी उड़ाई। मुझ पर उन्हें तरस आया। उस दिन से कप्तान के समक्ष संसार के

मूखों में शामिल होगया। फिर उसने कभी मुझे मन्दर देखने के लिये चलने को न कहा। यदि मैं अधिक समय तक वहाँ रहता, अथवा मैं उस बाड़ की बोली जानता होता तो मैं नहीं कह सकता कि मेरी क्या दशा होती। इतना ज़रूर जानता हूँ कि उस दिन भी मैं अपने पुरुषार्थ के बल पर नहीं बचा था, बल्कि ईश्वर ने ही ऐसी बातों में मूढ़ रखकर मुझे बचाया।

उस भाषण के समय मुझे तीन ही अवसर याद आये थे। पाठक यह न समझें कि और अवसर मुझे मिले ही न थे। हर अवसर पर मैं राम नाम के बल पर बचा हूँ। ईश्वर ख़ाली हाथ आनेवाले नियल ही को बल देता है—

जब लग गज बल अपनो बरत्यौ, नेक सर्‌यौ नहिं काम।
निबल होय बलराम पुकार्‌यौ, आये आधे नाम॥

इस दशा में यह राम नाम है क्या चीज़? क्या तोते की तरह राम राम रटना? कदापि नहीं। अगर ऐसी ही बात हो तो हम सब का बेड़ा राम-नाम रट कर पार होजाय। राम-नाम तो हृदय से निकलना चाहिये। फिर चाहे उसका उच्चारण शुद्ध हो या न हो, हृदय की तोतली बोली ईश्वर के दरबार में क़बूल होती है। हृदय भले ही 'मरा-मरा' पुकारता रहे, फिर भी हृदय

से निकली हुई आवाज़ जमा के सीगे में जमा होगी, परन्तु यदि मुख से शुद्ध राम नाम निकलता हो और हृदय का स्वामी हो रावण, तो वह शुद्ध उच्चारण भी जमा के सीगे में दर्ज न होगा।

'मुख में राम बगल में छुरी' वाले बगुला भगत के लिये राम-नाम की महिमा तुलसीदास ने नहीं गाई। उनके सीधे पासे भी उलटे पड़ेंगे। 'बिगड़ी' का सुधारनेवाला राम ही है। इसी लिये भक्त सूरदास ने गाया—

बिगरी कौन सुधारे, राम बिन बिगरी कौन सुधारे रे।
बनी बनी के सब कोई साथी, बिगरी के नहिं कोई रे॥

इसलिए पाठक खूब समझ लें कि राम नाम हृदय का बोल है। जहाँ वाणी और मन में एकता नहीं, वहाँ वाणी केवल मिथ्या है, दम्भ है, शब्द जाल है। ऐसे उच्चारण से चाहे दुनियाँ भले ही धोखा खा जाय, परन्तु अन्तर्यामी राम कहीं धोखा खा सकता है? हनुमान ने सीता की दी हुई माला के मनके फोड़ डाले यह देखने के लिये कि उसके अन्दर राम-नाम है या नहीं? अपने को समझदार समझनेवाले सुभटों ने [illegible] सीताजी की माला का ऐसा अनादर किया?

हनुमान ने उत्तर दिया—'यदि इसके भीतर राम नाम न हो तो यह माला सीताजी की दी हुई होने पर भी मेरे लिये भार भूत होगी।'

इसपर उन समझदार सुभटों ने मुँह बनाकर पूछा—'क्या तुम्हारे भीतर राम नाम है?'

हनुमान ने छुरी से तुरन्त अपना हृदय चीरकर दिखाते हुये कहा—देखो इसमें राम-नाम के सिवा और कुछ हो, तो कहना।

सुभट लज्जित हुये। हनुमान पर पुष्प-वर्षा हुई। उस दिन से राम-कथा के समय हनुमान का आवाहन आरम्भ हो गया।

हो सकता है कि यह कथा कवि या नाटककार की रचना हो, परन्तु उसका सार अनन्त काल के लिये सच्चा है। जो हृदय में है वही सच है।

प्रयोग

एक सज्जन पूछते है—ब्रह्मचर्य क्या है? क्या पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य पालन करना सम्भव है? यदि सम्भव है तो क्या आप पालन करते है?

ब्रह्मचर्य का वास्तविक अर्थ है—ब्रह्म की खोज करना। ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त है। अतः ध्यान, धारणा और आत्मानुभव से उसे अपने अन्तःकरण में खोजना चाहिये। समस्त इन्द्रियों के पूर्ण संयम के बिना आत्मानुभव असम्भव है। इसलिये ब्रह्मचर्य का मतलब है—मन, वचन और कर्म से हर समय, हर जगह सब इन्द्रियों का संयम।

ऐसे ब्रह्मचर्य का पूर्णतया पालन करनेवाले स्त्री या पुरुष होते हैं। ऐसे व्यक्ति परमेश्वर के निकट होते हैं, वे ईश्वरवत् होते हैं। इस प्रकार पूर्णतया ब्रह्मचर्य का पालन करना सम्भव है। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। यह कहते हुये मुझे दुःख होता है कि ब्रह्मचर्य की उस पूर्ण अवस्था तक मैं नहीं पहुँच सका हूँ। परन्तु वहाँ तक पहुँचने के लिये मैं अथक उद्योग कर रहा हूँ

और इसी जीवन में वह पूर्ण अवस्था प्राप्त करने की आशा मैंने नहीं छोड़ी है।

अपने शरीर पर मैंने पूरा अधिकार कर लिया है। जागृत अवस्था में मैं बहुत सावधान रहता हूँ। मैंने वाणी का सयम कर लिया है, परन्तु विचारों के सम्बन्ध में मुझे अभी बहुत कुछ करना है। जब मैं अपने विचारो को किसी खास बात पर जमाना चाहता हूँ तब दूसरे विचार आकर मुझे तङ्ग करते हैं। इससे विचारों में परस्पर सङ्घर्षण होता है। जागृत अवस्था में मैं विचारों के पारस्परिक सङ्घर्षण को रोक लेता हूँ। मैं अपवित्र विचारों से मुक्त हूँ, परन्तु सोते समय मैं अपने विचारों पे इतना सयत नहीं रख पाता। सोते समय हर तरह के विचार मन में आजाते हैं। कभी-कभी ऐसे स्वप्न भी देखता हूँ, जिनकी कोइ आशा नहीं होती। कभी पहले भोगी हुई बातो की वासना जग उठती है। जब इच्छायें दूपित होती है तब स्वप्नदोप भी होता है। यह पाप-मय जीवन का चिन्ह है।

मेरे दूपित विचार क्षीण होते जा रहे हैं, कि-तु अभी उनका नाश नहीं हो पाया। यदि अपने विचारों पर पूर्णतया अधिकार कर लिया होता तो पिछले दस वर्षों में मुझे जो पसली का दर्द,

संग्रहणी, पेट का फोड़ा आदि बीमारियाँ हुई, वे कभी न होतीं। मेरा विश्वास है कि निष्पाप आत्मा स्वस्थ शरीर में वास करता है। कहने का मतलब यह है कि ज्यों-ज्यों आत्मा पाप से मुक्त होकर निर्विकार होता जाता है, त्यों-त्यों शरीर भी नीरोग होता जाता है। किन्तु यहाँ स्वस्थ शरीर का अर्थ बलवान् शरीर नहीं है। शक्तिशाली आत्मा केवल दुबल शरीर में निवास करता है। जैसे जैसे आत्मा की शक्ति बढ़ती जाती है वैसे ही वैसे शरीर दुबल होता जाता है। शरीर बिल्कुल स्वस्थ होने पर भी दुबल हो सकता है। बलिष्ठ शरीर बहुधा रोग ग्रस्त रहता है, रोग-ग्रस्त न हो तो भी बलवान् शरीर को संक्रामक रोग बड़ी जल्दी दबा लेता है। स्वस्थ शरीर पर संक्रामक रोगों की छूत का कोई असर नहीं पड़ सकता। शुद्ध रक्त में ऐसे रोगों के कीटाणुओं को दूर करने का गुण होता है।

इस प्रकार की अद्भुत स्थिति को प्राप्त करना कठिन अवश्य है, अन्यथा मैं अब तक उसे प्राप्त कर चुका होता। मेरी आत्मा इस बात की साक्षी है कि इस प्रकार की ऊँची और दुर्लभ अवस्था प्राप्त करने के लिये मैं कोई भी बात उठा नहीं रखता। ऐसा कोई भी बाहरी कारण नहीं है जो अपने लक्ष्य तक पहुँचने में मुझे रोक

सके। परन्तु हमारे लिये पूर्व जन्म के संस्कारों को मिटाना सहज नहीं है। पाप से रहित पूर्ण अवस्था की कल्पना मेरे सामने है। मुझे कभी-कभी उसकी धुँधली झलक भी दिखाई देती है। इस अवस्था को प्राप्त करने में यद्यपि विलम्ब हो रहा है, तो भी अब तक की प्रगति को देखते हुए मैं तनिक भी निराश नहीं हुआ हूँ, किन्तु यदि अपनी आशा पूर्ण होने से पहले मैं मर भी जाऊँ, तो भी मैं इसमें अपनी असफलता नहीं समझूँगा, इसलिए कि पुनर्जन्म में मैं उतना ही विश्वास करता हूँ जितना कि इस शरीर के अस्तित्व पर। इसी कारण मैं समझता हूँ कि थोड़े से थोड़ा प्रयत्न भी कभी निष्फल नहीं जाता।

अब तक मैंने ब्रह्मचर्य का निरूपण बड़े व्यापक अर्थ में किया है। ब्रह्मचर्य का प्रचलित अर्थ है—मन, वचन और कर्म से वासनाओं का संयम। यह अर्थ भी ठीक है इसलिए कि पाशविक वासनाओं का संयम अत्यन्त कठिन समझा जाता है। जिह्वा के संयम पर इतना अधिक ज़ोर नहीं दिया गया, इसीलिए वासनाओं का दमन इतना कठिन, यहाँ तक कि असम्भव प्राय हो गया है। वैद्यों और डाक्टरों का विश्वास है कि रोगी शरीर को वासना अधिक सताती है, इसी कारण रोग से जर्जरित

दुर्बल समाज को ब्रह्मचर्य का पालन करना कठिन जान पड़ता है।

मैंने ऊपर दुर्बल, किन्तु स्वस्थ शरीर के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं शारीरिक बल की उपेक्षा करता हूँ। मैंने तो स्वाभाविक ढंग से ब्रह्मचर्य के उत्कृष्ट रूप का वर्णन किया है। इससे भ्रम फैल सकता है। जो सब इन्द्रियों का पूर्ण सयम करना चाहता है उसे अन्त में शारीरिक दुर्बलता का स्वागत करना ही पड़ेगा। शरीर का मोह न रहने पर, शारीरिक बल की इच्छा भी नहीं रहती। किन्तु उस ब्रह्मचारी का शरीर, जिसने विषय-वासनाओं पर विजय प्राप्त कर ली है, अत्यन्त तेजस्वी और बलवान होना चाहिये। वह ब्रह्मचर्य सचमुच अद्भुत है, जिस आदमी का स्वप्न में भी विषय-सम्बन्धी दूषित विचार नहीं सताते वह सचमुच विश्व के लिये वन्दनीय है। ऐसे ब्रह्मचारी के लिए दूसरी इन्द्रियों का सयम भी बहुत सरल है।

ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में एक दूसरे सज्जन लिखते हैं—

"मेरी दशा बड़ी दयनीय है। दफ्तर में, सड़क पर, पढ़ने-लिखने, काम करने में और यहाँ तक कि प्रार्थना करते समय

भी, पाप पूर्ण विचार मेरे मन म घुसे रहते हैं । मैं अपने मानसिक विचारों का सयम कैसे करूँ ? समस्त स्त्री-जाति को माता के समान केसे देखूँ ? दुष्ट विचारों को कैसे दबा दूँ ? आपका ब्रह्मचर्यवाला लेख मेरे सामने रखा है परन्तु उससे मुझे तनिक भी लाभ नहीं होता ।"

यह दशा सचमुच हृदय को दहला देनेवाली है । हम में से बहुत से आदमी इसी दशा में रहते है । परन्तु जब तक मन उन विचारा के साथ सङ्घर्ष करता है तब तक निराश होने की कोई बात नहा है । यदि आँखें पाप की ओर बढ़ें तो उन्हें बन्द कर लेना चाहिये । यदि कान अपराध करें तो उनमें रुई भर लेनी चाहिये । आँखें नीची करके चलने की आदत बहुत अच्छी है । जहाँ गन्दी बात हों या गन्दे गीत गाये जा रहे हों, वहाँ से उठकर चला जाना चाहिये ।

मेरा अनुभव तो यह है कि जो व्यक्ति स्वाद को नहीं जीत सका वह विषयों का नहीं जीत सकता । स्वाद को जीतना सहज नहीं है । किन्तु वासना का सयम जिह्वा के सयम के साथ बँधा है । स्वाद को जीतने का एक नियम तो यह है कि मिर्च मसालों को बिल्कुल ही या जितना हो सके छोड़ दिया जाय । दूसरा

यह है कि इस भावना को सदा ही जागृत किया जाय कि हम स्वाद के लिये नहीं, किन्तु शरीर रक्षा के लिये भोजन करते हैं।

वासनाओं पर विजय पाने का सबसे बड़ा और ज़बर्दस्त साधन तो राम नाम या ऐसा ही कोई दूसरा मंत्र है। द्वादश मंत्र भी काम देता है। अपनी अपनी भावना के अनुसार ही प्रत्येक व्यक्ति मंत्र का जप करे। मुझे बचपन ही से राम नाम सिखाया गया था। मुझे सकट के समय बराबर उससे सहारा मिलता है। जो मंत्र हम जपें उसमें तन्मय हो जायँ। यदि और विचार बीच में बाधा डालें, तो इसका पर्वा न करें। जो व्यक्ति श्रद्धा से जप करेगा, उसे सफलता अवश्य मिलेगी। इसपर मुझे पूरा विश्वास है। मंत्र, साधक के जीवन का सहारा बन जाता है और उस सारे सङ्कटों से बचा देता है। इस प्रकार के पवित्र मंत्रों का उपयोग किसी सांसारिक लाभ के लिये न करना चाहिये। वास्तव में इन मंत्रों का महत्व तो अपनी नियत को सुरक्षित रखने में है। प्रत्येक साधक तुरन्त ही यह अनुभव कर लेगा। तोते की तरह मंत्र रटने से कोई लाभ नहीं है। उसमें अपना आत्मा को प्रवेश करा देने की ज़रूरत है।

मेरा व्रत

वैराग्य का प्रभाव

विवाह के समय से ही मेरे हृदय में एक पत्नी व्रत का भाव जम गया था। पत्नी के प्रति वफ़ादार रहना मेरे सत्य व्रत का एक अंग था। परन्तु अपनी पत्नी के साथ भी ब्रह्मचर्य से रहने की ज़रूरत मुझे दक्षिण अफ्रिका में मालूम पड़ी। मेरे इस विचार पर रामचन्द्र भाइ का प्रभाव विशेष रूप से पड़ा था। एक बार मैं कह रहा था कि मि० ग्लैडस्टन के प्रति श्रीमती ग्लैडस्टन का प्रेम सराहनीय है। मैंने कहीं पढ़ा था कि हाउस आफ़ कामन्स की बैठक में श्रीमती ग्लैडस्टन अपने पति को चाय बनाकर पिलाती थीं। उस प्रेम निष्ठ दम्पति के जीवन का यह नियम ही बन गया था। मैंने यह बात कविजी (रामचन्द्र भाइ) को पढ़कर सुनाई और दाम्पत्य प्रेम की बड़ी प्रशंसा की। रामचन्द्र भाइ ने कहा— 'इसमें आपको कौन-सी बात महत्त्वपूर्ण जान पड़ती है?—श्रीमती ग्लैडस्टन का पत्नी भाव या सेवा भाव?

यदि वे मि० ग्लैडस्टन की बहन होता तो ? या उनकी वफ़ादार नौकर होता, और फिर भी उसी प्रेम से चाय पिलाता तो ? ऐसी बहनों, या ऐसी नौकरानियों के उदाहरण क्या आज हमें न मिलेंगे ? और नारी जाति के बदले ऐसा प्रेम यदि मनुष्यों में देखा होता तो आपको इतना हर्ष और आश्चर्य न होता ? इस बात पर विचार कीजियेगा।"

रामचन्द्र भाई विवाहित थे। उनकी यह बात उस समय मुझे कठोर मालूम हुई, परन्तु उनके इन वचनों ने मुझे लोह चुम्बक की तरह जकड़ लिया। पुरुष नौकर की ऐसी स्वामि भक्ति का मूल्य पत्नी की स्वामि निष्ठा के मूल्य से हज़ार गुना अधिक है। पति पत्नी में प्रेम का होना कोई ताज्जुब की बात नहीं है। स्वामी और सेवक में ऐसा प्रेम पैदा करना पड़ता है। मेरी दृष्टि में कविजी की बातों का बल दिन पर दिन बढ़ता गया।

मेरे मन में यह विचार उठा कि अपनी पत्नी के साथ मुझे कैसा बर्ताव करना चाहिये। स्त्री को विषय भोग का साधन बनाने से उसके प्रति वफ़ादारी कैसे हो सकती है? जब तक मैं वासना का शिकार रहूँगा तब तक वफ़ादारी का मूल्य ही क्या होगा?

पत्नी की ओर से कभी मेरे ऊपर ज़ियादती नहीं हुई। इसलिए स्वेच्छानुसार मेरे लिए ब्रह्मचर्य पालन की पूरी सुविधा थी। वासना में अपनी आसक्ति ही मुझे इस व्रत के पालन करने से रोक रही था।

सयम का श्रीगणेश

सजग होजाने के बाद भी मैं दो बार अपने उद्योग में असफल हुआ। मेरे इस उद्योग का आदर्श ऊँचा न था। केवल सन्तानोत्पत्ति को रोकना ही मुख्य उद्देश था। विलायत में मैंने सन्तति निग्रह के बाहरी साधनों के सम्बन्ध में कुछ बातें पढ़ ली था। मि० हिल्स सन्तति निग्रह के बाहरी साधनों के विरोधी तथा सयम के समर्थक थे। उनके विचारों का मेरे हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा। आगे चलकर अनुभव के द्वारा वे ही विचार मेरे स्थायी हो गये। इसी कारण सन्तति निरोध की ज़रूरत मालूम पड़ते ही मैंने सयम से रहने का श्रीगणेश कर दिया।

सयम से रहने में बड़ी कठिनाइयां थीं। हम घर में अपनी चारपाइयाँ दूर रखते। मैं रात को थककर सोने का उद्योग करने लगा। इन उद्योगों का परिणाम तत्काल तो न दिखाई दिया,

परन्तु भूतकाल पर दृष्टि-पात करने से मालूम होता है कि इन्हीं सब उद्योगों से मुझे अन्तिम बल मिला।

प्रथम से रहने का अन्तिम निश्चय तो मैं सन् १९०६ में कर सका, उस वक्त सत्याग्रह आरम्भ नहीं हुआ था। मुझे स्वप्न में भी उसका ध्यान न था। बोअर युद्ध के बाद नेटाल में 'जूलू' लोगों का बलवा हुआ। उन दिनों मैं जोहान्सबर्ग में वकालत करता था। मेरे मन में विचार उठा कि इस समय बलवे में नेटाल-सरकार को मैं अपनी सेवायें समर्पित कर दूँ। मैंने ऐसा ही किया। सरकार ने मेरी सेवायें स्वीकृत भी करलीं। इसी समय मेरे मन में यह भाव उठा कि सन्तानोत्पत्ति और सन्तति-रक्षण दोनों ही लोक-सेवा के मार्ग में विरोधी हैं। बलवे में सेवा करने के कारण मुझे अपना जोहान्सबर्ग वाला घर तितर बितर कर देना पड़ा। बड़ी सजधज से सजाये हुए घर को और उसमें बहुत सी सामग्री जुटाये हुए एक महीना भी न हुआ होगा कि मैंने उसे छोड़ दिया। स्त्री-बच्चों को रहने के लिए फ़ीनिक्स भेज दिया, और मैं घायलों की सेवा करने वालों का एक जत्था बनाकर चल दिया। इन कठिनाइयों का सामना करने के कारण मैंने अनुभव किया कि यदि मुझे लोकसेवा

के काम में तन्मय होकर लग जाना है तो, पुत्र, धन, आदि की कामना से भी अलग होकर मुझे वानप्रस्थ धर्म का पालन करना चाहिये।

बलवे में मुझे लगभग डेढ़ महीना रहना पड़ा। यह छः सप्ताह का समय मेरे जीवन का अत्यन्त मूल्यवान् समय था। ब्रह्मचर्य-व्रत का महत्त्व इस समय मेरी समझ में सबसे अधिक आया। मैंने अनुभव किया कि यह व्रत बन्धन नहीं, बल्कि स्वतन्त्रता का द्वार है। अब तक मेरे उद्योगों में आवश्यक सफलता नहीं मिलती थी इसलिए कि मुझमें दृढ़ता नहीं थी। मुझे अपनी शक्ति पर विश्वास न था। मुझे ईश्वर की कृपा पर भरोसा नहीं था। इसीलिए मेरा मन अनेक विकारों के अधीन था। मैंने अनुभव किया कि व्रत बन्धन से अलग रहकर आदमी मोह में फँसता है। व्रत के बन्धन से बँधना तो व्यभिचार से मुक्त होकर एक पत्नी से सम्बन्ध रखना है। 'मेरा विश्वास तो उद्योग में है, व्रत के बन्धन में बँधना नहीं चाहता'—यह बात निर्बलता की द्योतक है और इसकी तह में छिपकर भोग की इच्छा मौजूद है। जो चीज़ त्याग करने योग्य है उसे बिल्कुल छोड़ देने में क्या हानि हो सकती है? जो साँप मुझे काटनेवाला है उसे मैं

निश्चय ही हटा देता हूँ। केवल उसे हटाने के लिये उद्योग ही नहीं करता इसलिए कि मैं जानता हूँ कि केवल उद्योग का फल मृत्यु के रूप में प्रकट होगा। उद्योग में साँप की विकराल मूर्ति के स्पष्ट ज्ञान की कमी है। इसी तरह हम जिस चीज़ को छोड़ देने का उद्योग मात्र करते हैं उसके छोड़ देने की ज़रूरत हमें स्पष्ट रूप से मालूम नहीं पड़ी। इस बात से यही प्रकट होता है। 'मेरे विचार यदि पीछे से बदल जायँ तो क्या होगा!' इस तरह की शङ्का से व्रत लेते हुए हमें डर लगता है। इस विचार में स्पष्ट दर्शन का अभाव है। इसी कारण निष्कुलानन्द ने कहा है—

'त्याग न टिके वैराग बिना'

जहाँ किसी वस्तु में पूर्ण वैराग्य हो गया वहाँ ——— लिए व्रत लेना स्वभावतः अनिवार्य हो जाता है।

आहार

"ब्रह्मचर्य पालन के लिए उपवास करना अनिवार्य है।"

अस्वाद के सम्बन्ध में पहले लिखा जा चुका है। मैंने स्वयं अनुभव करके देखा है कि यदि स्वाद को जीत लें तो ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करना बहुत सुगम हो जाता है। मेरे भोजन सम्बन्धी प्रयोग आहार की दृष्टि से नहीं, किन्तु ब्रह्मचारी की दृष्टि से किये गये हैं। मेरा अनुभव है कि भोजन कम, सादा बिना मिर्च मसाले का और स्वाभाविक रूप में होना चाहिए। ब्रह्मचारी का आहार तो वन-पके फल हैं। मैं ६ वर्ष तक स्वयं इसका प्रयोग कर चुका हूँ। जिन दिनों मैं हरे अथवा सूखे वन पके फलों पर रहता था उन दिनों सचमुच बिल्कुल निर्विकार अवस्था का अनुभव करता था। फलाहार जब अन्नाहार में परिणत होगया तब यह दशा न रही। फलाहार के दिनों में ब्रह्मचर्य से रहना सुगम था, परन्तु वह दूधाहार के कारण कष्टसाध्य होगया है। ब्रह्मचारी के लिए दूधाहार विघ्न डालनेवाला है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। इसका यह मतलब नहीं है कि हर ब्रह्मचारी के लिए दूध छोड़ना

आवश्यक है। ब्रह्मचर्य पर आहार का क्या असर पड़ता है, इस सम्बन्ध में अभी और प्रयोगों की ज़रूरत है। दूध की तरह शरीर के अंग प्रत्यङ्ग को सुदृढ़ बनानेवाला और उतनी ही सुगमता से पच जानेवाला फलाहार अभी तक मुझे नहीं मिला। अब तक कोई वैद्य, हकीम या डाक्टर भी ऐसे फल या अन्न नहीं बता सका है। इसलिए यह जानते हुए भी कि दूध विकारोत्पादक है, मैं किसी से उसके छोड़ने की सिफारिश नहीं कर सकता।

उपवास

बाहरी उपचारों में जिस तरह आहार के प्रकार और परिमाण की मर्यादा ज़रूरी है उसी तरह उपवास की बात भी है। इन्द्रियाँ बड़ी बलवान् हैं। चारों ओर से जब उनको घेरा जाता है तभी वे क़ाबू में रहती हैं। यह बात सभी जानते हैं कि आहार के बिना वे अपना काम नहीं कर सकतीं। इस कारण इस बात में मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है कि स्वेच्छानुसार किये गये उपवासों से इन्द्रियों के दमन करने में बड़ी मदद मिलती है। कितने ही आदमी उपवास करते पर भी सफल नहीं होते। वे यह मान लेते हैं कि केवल उपवास ही से सब काम चल जायगा। ऐसे लोग

बाहरी उपवास तो करते हैं, किन्तु मन से छप्पन भोगों का ध्यान करते हैं। उपवास के समय वे विचार करते हैं कि उपवास समाप्त होने पर क्या क्या खायेंगे। इतने पर भी शिकायत यह की जाती है कि न तो स्वादेन्द्रिय का सयम हो पाया, और न जननेन्द्रिय का। असल में उपवास से तो वहीं लाभ होता है जहाँ सयम में मन भी साथ देता है। इसका मतलब यह है कि मन में वासना और भोगो के प्रति विराग होना ज़रूरी है। विषय का मूल तो मन में है। उपवास करते हुए भी आदमी विषयासक्त रह सकता है। उपवास के बिना विषयासक्ति का समूल नाश सम्भव नहीं है। इसी कारण उपवास ब्रह्मचय व्रत के पालन का अनिवार्य अङ्ग है।

सयमी और भोगी

सयमी या त्यागी, तथा स्वच्छन्द या भोगी के जीवन में अ तर होता है। समता तो केवल ऊपरी ही होती है। अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है। आँखों से दोनों ही काम लते हैं। परन्तु ब्रह्मचारी देव दर्शन करता है और भोगी नाटक सिनेमा देखने में तल्लीन रहता है। कान का उपयोग दोनों ही करते हैं। पर एक

ईश्वरीय भजन सुनता है और दूसरा विलासी गीतों को सुनने में सुख अनुभव करता है। दोनों ही जगते हैं। परन्तु एक तो जागृत अवस्था म अपने हृदय-मन्दिर में बैठे हुए राम की उपासना करता है और दूसरा नाच-रङ्ग देखने की धुन में सोना भूल जाता है। भोजन दोनों ही करते हैं। परन्तु एक शरीर रूपी तोप की रक्षा के लिए पेट में अन्न डालता है, और दूसरा स्वाद के लिए बहुत सी चीज़ों को पेट में भरकर उसे ख़राब करता है। इस प्रकार दोनों ही तरह के लोगों के आचार विचार में अन्तर रहता है, और यह अन्तर दिन पर दिन बढ़ता ही जाता है, घटता नहीं।

स्वास्थ्य का राजमार्ग

स्वास्थ्य अच्छा बनाये रखने के लिए अनेक आवश्यक कुञ्जियों की ज़रूरत है। सबसे अधिक और मुख्य ब्रह्मचर्य की कुञ्जी आवश्यक है। स्वास्थ्य के लिए स्वच्छ जल-वायु और उत्तम भोजन हितकर होता है। यदि हम जितना स्वास्थ्य सम्हालें, उतना ही बिगाड़ दें, तो स्वस्थ कैसे बन सकते हैं? जितना धन हम कमावें, उतना ही ख़र्च कर दें, तो अन्त में निर्धन होने से कैसे बच सकते हैं? इसीलिए, स्त्री पुरुष दोनों ही को स्वास्थ्य धन के संचय के लिए ब्रह्मचर्य पालन की बहुत सख्त ज़रूरत है। जो अपने वीर्य की रक्षा करता है वही वीर्यवान् और बली बन सकता है।

ब्रह्मचर्य क्या है? ब्रह्मचर्य का वास्तविक अर्थ है कि पुरुष और स्त्री एक दूसरे से भोग न करें और न एक दूसरे को विकार की दृष्टि से देखें और छुएँ ही। उनके मन में स्वप्न में भी विकार के विचार न उठें। एक दूसरे को कामुकता की दृष्टि से न देखें। ईश्वर ने हमें जो गुप्त शक्ति प्रदान की है, बड़ी दृढ़ता

के साथ हम उसे संचित कर और शारीरिक, मानसिक और आत्मिक ओज तथा पौरुष का आलोक प्राप्त करने के लिए हम उसका पूरा उपयोग करें।

हीन दशा

अब ज़रा हम इस बात पर विचार करें कि हमारे चारों ओर क्या तमाशा हो रहा है? पुरुष और स्त्री, बूढ़े और तरुण प्रायः सभी काम लिप्सा के जाल में जकड़े हुए हैं। वासना से अन्ध होने के कारण उन्हें सत्य असत्य की पहचान तक नहीं है। वासना के जाल में जकड़े हुए उन्मत्त लड़के लड़कियों को मैंने स्वयं पागलों की तरह भटकते हुए देखा है। मेरा अनुभव भी इसी तरह का है। क्षणभर के सुख के लिए हम बड़े परिश्रम से पैदा की हुई अमूल्य निधि के रूप में संचित अपनी जीवनी शक्ति को पलभर में गँवा देते हैं। मद उतरने पर हम अपना खजाना खाली पाते हैं। दूसरे दिन सवेरे हमारा शरीर भारी और सुस्त मालूम पड़ता है और दिमाग़ काम करने से इन्कार कर देता है। फिर शक्ति प्राप्त करने के लिए हम दूध का काढ़ा पीते हैं, भस्म और मोती पड़ी हुई तरह तरह की दवाइयाँ

जाते हैं। वैद्यों के द्वार पर जाकर ताक़त की दवा माँगते हैं और सदा इस तलाश में रहते हैं कि भोग की नष्ट हुई शक्ति फिर से प्राप्त कर लें। इस प्रकार एक के बाद दूसरे दिन और वर्ष बीतते चले जाते हैं। बुढ़ापा आने पर शरीर और दिमाग दोनों ही क्षीण हो जाते हैं।

प्रकृति के नियम के अनुसार हमारी बढ़ी हुई उम्र के साथ ही हमारी बुद्धि भी तेज़ होना चाहिये। जितना लम्बा हमारा जीवन हो उतनी ही अधिक अपने सञ्चित अनुभव और ज्ञान से अपने दूसरे भाइयों का पथ प्रदर्शन करने की हम में योग्यता हो। सच्चे ब्रह्मचारियों का यही हाल रहता है। वे मृत्यु से डरना तो जानते ही नहीं। वे मृत्यु के समय भी ईश्वर को नहीं भूलते वे व्यर्थ की कामनाओं के शिकार नहीं होते। मृत्यु के समय उनके ओठों पर अद्भुत मुस्कान अठखेलियाँ खेलती है। जब परमेश्वर के दरबार में उनके कर्मों का खाता पेश होता है तब वे डर से तनिक भी विचलित नहीं होते, वे ही वास्तव में सच्चे पुरुष और स्त्री हैं। वे ही सच्चे अर्थ में अपने स्वास्थ्य की रक्षा करने में समर्थ हो सके हैं।

अहङ्कार, क्रोध, भय, ईर्ष्या, आडम्बर आदि का कारण है

ब्रह्मचर्य व्रत का भङ्ग होना । मन के वश में न रहने तथा बार-बार वर्षों से भी अधिक नादान बन जाने से, जाने या बिना जाने, हम कौन सा पाप न कर बैठेंगे और हम घोर पाप-कर्म करते हुए भी आगा-पीछा कैसे सोच सकेंगे ?

परन्तु यह पूछा जा सकता है—'क्या कभी किसी ने ऐसा ब्रह्मचारी देखा है ? यदि सब लोग ब्रह्मचारी बन जायँ तो क्या संसार का सर्वनाश न हो जायगा ?' इन प्रश्नों के धार्मिक पहलू पर हमें यहाँ विचार नहीं करना है । केवल सांसारिक दृष्टि से ही इन प्रश्नों पर विचार करना है । मेरी समझ में इन दोनों प्रश्नों की तह में हमारी कमज़ोरी और कायरता छिपी हुई है । असल में हम ब्रह्मचर्य पालन करना ही नहीं चाहते । इसीलिए उससे बचने के लिए बहाने ढूँढ़ते हैं । दुनियाँ में ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करनेवाले बहुत हैं, परन्तु यदि वे यों ही आसानी से मिल जायँ तो उनका मूल्य ही क्या रह ? हीरा निकालने के लिए हज़ारों मज़दूरों को खानों के भीतर घुसना पड़ता है तब कहीं पर्वताकार चट्टानों के ढेर से मुट्ठी भर हीरे मिलते हैं । इस दशा में हीरों से कहीं अधिक मूल्यवान् ब्रह्मचारी हीरों को ढूँढ़ने के लिए कितना अधिक परिश्रम करना पड़ेगा ? इसका हिसाब

लगाना कठिन नहीं है। ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करने से यदि संसार का नाश होता हो, तो हमें क्या? हम ईश्वर तो हैं नहीं जो संसार की चिन्ता करें? जिसने संसार को पैदा किया है वही उसकी रक्षा करेगा। हमें यह जानने की तकलीफ़ नहीं उठानी चाहिए कि और लोग ब्रह्मचर्य पालन करते हैं या नहीं। हम व्यापार, वकालत या डाक्टरी आदि पेशों का काम आरम्भ करते समय तो कभी इस बात का विचार नहीं करते कि यदि सभी आदमी व्यापारी, वकील या डाक्टर बन जायँ तो क्या परिणाम होगा? जो लोग वास्तव में ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहते हैं, इन प्रश्नों का उत्तर उन्हें अपनेआप मिल जायगा।

सांसारिक आदमी इन विचारों के अनुसार कैसे काम करें? विवाहित आदमी क्या करें? जिन लोगों के बाल-बच्चे हैं वे कैसे चलें? जो लोग कामना को वश में नहीं कर सकते वे क्या करें? इस सम्बन्ध में मैं ब्रह्मचर्य का सबसे ऊँचा आदर्श बतला चुका हूँ। हम इस आदर्श को अपने सामने रखें और वहाँ तक पहुँचने का भरसक प्रयत्न करें।

छोटे बच्चों को जब अक्षर लिखना सिखाया जाता है तब उनके सामने अक्षर का उत्तम नमूना रखा जाता है और वे हू बहू

या उससे मिलता-जुलता नक़ल करने की कोशिश करते हैं। इसी प्रकार यदि हम अखण्ड ब्रह्मचर्य का आदर्श अपने सामने रखें और निरन्तर उस आदर्श तक पहुँचने के उद्योग में लगे रहें, तो अन्त में वहाँ तक पहुँचने में सफलता मिलेगी।

वासना के ग़ुलाम

यदि हमारा विवाह हो चुका है, तो क्या हुआ ? प्रकृति के नियम के अनुसार ब्रह्मचर्य तभी तोड़ा जाय जब पति और पत्नी दोनों ही को सन्तान की इच्छा हो, इस विचार को ध्यान में रखकर जो लोग चार या पाँच वर्ष में एक बार ब्रह्मचर्य भंग करते हैं वे वासना के गुलाम नहीं हो जाते और न उनके वीर्य धन के भण्डार में कुछ विशेष घाटा ही होता है। परन्तु दुःख की बात तो यह है कि ऐसे विरले ही स्त्रीपुरुष मिलेंगे जो केवल सन्तान के लिए ही विषय भोग करते हों। बाक़ी हज़ारों आदमी तो ऐसे ही मिलेंगे जो केवल अपनी काम-वासना तृप्त करने के लिए ही भोग करते हैं और फल स्वरूप उनकी इच्छा के विरुद्ध बच्चे पैदा हो जाते हैं।

वासना के उन्माद में हम सचमुच इतने अन्धे हो जाते हैं

कि अपने कामों का परिणाम तक नहीं सोचते। इस सम्बन्ध में स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष अधिक दोषी हैं। वे अपने कामुक उन्माद में अन्धे होकर यह तक भूल जाते हैं कि स्त्री दुर्बल है और उसमें बच्चा पैदा करने तथा उसके पालन पोषण करने की शक्ति नहीं है। पश्चिम के लोगों ने तो इस सम्बन्ध में बिल्कुल हद कर दी है। वे रात दिन भोग विलास में मस्त रहते हैं और ऐसे ऐसे विचित्र उपाय ढूँढ़ निकालते हैं जिससे सन्तान की जिम्मेदारी से भी बच जायँ। इस सम्बन्ध में बहुत सी पुस्तकें लिख डाली गई हैं और सन्तति निग्रह के साधनों के पेश का व्यवसाय चल पड़ा है। अब तक हम इस पाप से मुक्त हैं। किन्तु अपनी स्त्रियों पर मातृत्व का बोझ लादते समय इस बात को ज़रा भी पर्वा नहीं करते कि हमारे बच्चे दुर्बल, नपुंसक और मूर्ख होंगे। बच्चे पैदा होने पर, हम ईश्वर की कृपा की सराहना करते हैं। अपने कर्मों की क्रूरता को छिपाने का हमने एक यह ढंग बना रखा है।

नर से पशु भले !

दुर्बल, लूली, लँगड़ी, विषयी और डरपोक सन्तान का होना ईश्वरीय कोप है। बारह वर्ष की लड़की के बच्चा पैदा होने में

खुशी की बात क्या है, जिसके लिए ढोल पीटे और राग अलाप जायँ ? १२ वर्ष की लड़की का माता बन जाना ईश्वर के शाप के सिवा और क्या है ? यह तो सभी जानते हैं कि अलहड़ पेड़ में समय से पहले फल लग जाने से, पेड़ कमज़ोर हो जाता है। इसी कारण अनेक प्रकार से प्रयत्न करके हम जल्दी उनमें फल नहीं लगने देते। परन्तु जब स्त्री पुरुष के रूप में बालक-बालिका से जब बच्चा पैदा होता है तब हम ईश्वर की प्रशंसा के गीत गाते हैं। यह हमारी मूर्खता नहीं तो और क्या है ? भारत अथवा दुनियाँ के और किसी हिस्से में अगर नपुंसक बच्चे अगणित बढ़ जायँ, तो उससे हमारे देश का या संसार का क्या लाभ होगा? असल बात तो यह है कि हमसे तो वे पशु ही अच्छे हैं जिनमें नर-मादा को संयोग का अवसर केवल बच्चे पैदा कराने के लिए ही दिया जाता है।

असाध्य रोग

गर्भाधान के समय से लेकर, बच्चे के दूध पीना छोड़ने के समय तक स्त्री पुरुष को अलग रहकर पवित्रता के साथ अपना जीवन बिताना चाहिए। परन्तु हम अपने पवित्र कर्तव्य

का उपेक्षा करके भोग विलास में बराबर निमग्न रहते हैं। इस दशा में हमारा मन कितना रोगी है ! यह रोग असाध्य रोग के नाम से पुकारा जाता है। यह रोग थोड़े ही दिनों में हमें मृत्यु के निकट पहुँचा देता है। विवाहित स्त्री पुरुष विवाह का वास्तविक उद्देश्य समझें और सन्तानोत्पत्ति की कामना के सिवा कभी ब्रह्मचर्य-व्रत का भङ्ग न करें।

हमारा आजकल बड़ी दयनीय दशा है। इसमें ऐसा करना बहुत कठिन है। हमारी खुराक, रहन सहन, हमारी बात, आस पास का वायुमण्डल सभी हमारी वासना को जगानेवाले हैं। काम लिप्सा हमारे जीवन में विष का तरह प्रवेश कर चुका है। लोग यह कह सकते हैं कि इतनी गिरी दशा में मनुष्य इस बीमारी से कैसे छुटकारा पा सकते हैं। यह बात इस प्रकार की शङ्का करते फिरनेवालों के लिए नहीं लिखी जा रही। यह तो केवल उन उत्साही लोगों के लिए है जो आत्मोन्नति के लिए निरन्तर जागरूक रहकर भरसक प्रयत्न करने के लिए उद्यत हों। जो लोग वर्तमान स्थिति पर सन्तोष किये बैठे हों उन्हें तो इसका पढ़ना भी दूभर जान पड़ेगा। जो लोग अपनी हीन दशा से ऊब चुके हैं उन्हें इस विचार से लाभ होगा।

इन सब बातों का निष्कर्ष यह है कि जिन लोगों ने अभी तक विवाह नहीं किया वे अविवाहित रहने का उद्योग करें, यदि बिना विवाह के काम ही न चल सके, तो यथा सम्भव देर से शादी करें। अथवा पच्चीस तीस वर्ष तक शादी न करने का प्रयत्न करें। इससे नीरोगता के अतिरिक्त जो लाभ होंगे उनके सम्बन्ध में यहाँ हम कुछ नहीं कहना है। लोग स्वयं अनुभव करके देख सकते हैं।

जो माता पिता इस लेख को पढ़ें उनसे मुझे यह कहना है कि व बचपन में अपने बच्चों की शादी करके, उनके गले में चक्की का पाट न बाँध दें। वे अपने बच्चों के हिताहित पर विचार करें, और केवल अपना अन्धी स्वार्थ पूर्ण लालसा पूरी करने में ही न लगे रहें। बिरादरी में नाम कमाने, तथा अपने घर का झूठी मान मर्यादा की शान के मूर्खता-पूर्ण विचारों को एक दम छोड़ दें। यदि सचमुच वे अपने बच्चों का कल्याण चाहते हैं तो वे उनके शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास की ओर ध्यान दें। बचपन में ही बच्चों के सर पर ज़बरदस्ती गृहस्थी की ज़िम्मेदारी डाल देने से अधिक और उनका अहित क्या हो सकता है?

स्वास्थ्य के नियम

स्वास्थ्य के नियमों के अनुसार स्त्री की मृत्यु के बाद पुरुष और पुरुष की मृत्यु के बाद स्त्री दूसरी शादी न करे। क्या तरुण स्त्री पुरुषों को कभी वीर्य-पात करने की ज़रूरत है? इस सम्बन्ध में डाक्टरों में मत भेद है। कुछ की राय में तरुण स्त्री पुरुषों को वीर्य पात करना चाहिए और कुछ की राय इसके विरुद्ध है। इस दशा में यह ख़याल कर कि एक पक्ष के डाक्टरों की राय हमारी तरफ है, विषय भोग में लिप्त नहीं होजाना चाहिए। मैं अपने तथा दूसरे लोगों के अनुभव के आधार पर निस्सङ्कोच यह कहता हूँ कि स्वास्थ्य-रक्षा के लिए विषय-भोग अनावश्यक ही नहीं, किन्तु अत्यन्त हानिकर है। वर्षों की सञ्चित की हुई तन और मन दोनों ही की शक्ति केवल एकबार के वीर्य पात से इतनी अधिक नष्ट हो जाती है कि फिर उसे प्राप्त करने में बहुत अधिक समय लगता है और फिर भी पहले की अवस्था तो प्राप्त हो ही नहीं सकती। टूटे शीशे को जोड़कर उससे काम भले ही चला लें, पर वह रहेगा तो टूटा ही।

पारस मणि

वार्य रक्षा के लिए शुद्ध जल, वायु, भोजन और पवित्र विचारों की ज़रूरत है। आचरण और स्वास्थ्य का बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। पवित्र आचरण के बिना पूर्ण नीरोगता प्राप्त नहीं की जा सकती। जब जगे तभी सवेरा है यह समझकर जो अपने जीवन में पवित्रता का प्रारम्भ करेगा उसे अपरिमित लाभ होगा।

जिन लोगों ने थोड़े समय भी ब्रह्मचर्य का पालन किया होगा उन्हें अपने मन और शरीर के बढ़े हुए बल का अनुभव ज़रूर हुआ होगा। एक बार यह पारसमणि हाथ लग जाने पर, वे अपने प्राणों की तरह बड़े यत्न से इसकी रक्षा करते होंगे। मुझे स्वयं ब्रह्मचर्य के अपरिमित लाभों का अनुभव है। ब्रह्मचर्य का मूल्य समझ लेने के बाद भी मैंने भूलें कीं, और उनका बुरा फल भोगा है। पिछली भूलों से मैं इस पारस मणि की रक्षा करना सीख गया हूँ। और आगे भी ईश्वर की दया से इसे सुरक्षित रख सकूँगा, इसकी पूरी आशा है।

बचपन में मेरी शादी हुई और उसी दशा में मैं बच्चों का बाप बना। गफ़लत की नींद से जागने पर मालूम हुआ कि मैं

अन्धकार में पड़ा हूँ। मेरी भूलों और अनुभवों से यदि एक आदमी भी बच सकेगा तो मैं यह अध्याय लिखकर अपना परिश्रम सफल समझूँगा। लोग कहते हैं, और मैं इस बात को मानता भी हूँ कि मुझ में शक्ति और उत्साह खूब है। मेरा मन भी दुर्बल नहीं है। कितने ही आदमी तो मुझे हठी बतलाते हैं। किन्तु मेरे मन और शरीर में अभी रोग बाकी है। फिर भी अपने ससर्ग में आये हुए लोगों की अपेक्षा मैं अधिक स्वस्थ समझा जाता हूँ। प्राय बीस वर्ष विषय भोग में लिप्त रहने के बाद ब्रह्मचर्य पालन करके मैं यह अवस्था प्राप्त कर सका हूँ। इस दशा में यदि मैं उन २० वर्षों में भी अपने आपको पवित्र रख सका होता, तो आज मैं कितनी अच्छी दशा में होता! यदि मैंने जीवन भर अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किया होता तो मेरी शक्ति और उत्साह अब से हज़ारों गुना अधिक होता और मैं उसको अपने देश की सेवा में लगा सका होता। जब मेरा ऐसा अधूरा ब्रह्मचारी इतना फायदा उठा सकता है तब अखण्ड ब्रह्मचर्य से कितनी शारीरिक, मानसिक और नैतिक शक्ति प्राप्त हो सकती है इसकी कल्पना करना आसान नहीं है।

जहाँ ब्रह्मचर्य पालन का नियम इतना जटिल है, जहाँ

विवाहितों, विधुर पुरुषों और विधवा स्त्रियों तक को ब्रह्मचर्य-पालन का आदेश दिया जाता है वहाँ असंगत व्यभिचार में लिप्त रहनेवाले लोगों के लिए क्या कहा जा सकता है? पर-स्त्री या वेश्यागमन से पैदा होनेवाली बुराइयों पर धर्म और नीति की दृष्टि से प्रकाश डाला जा सकता है, पर आरोग्य के प्रकरण में उन पर विचार नहीं किया जा सकता। यहाँ केवल इतना ही कहा जा सकता है कि पर-स्त्री और वेश्यागमन में लोग सुज़ाक, गरमी आदि नाम न लेनेवाली बीमारियों से सड़ते हुए दिखाई देते हैं। प्रकृति की दया से ऐसे लोगों को पापों का फल तुरन्त ही मिल जाता है। फिर भी उनकी आँखें नहीं खुलतीं और जीवन भर अपनी बीमारियों के इलाज के लिए डाक्टरों का दरवाज़ा खटखटाते फिरते हैं। यदि पर-स्त्री और वेश्यागमन बन्द हो जावे तो आधे डाक्टर बेकार हो जायँगे। मानव-समाज इन बीमारियों का इतना शिकार हुआ है कि विचारशील डाक्टरों ने तो यहाँ तक कह डाला है कि अगर पर-स्त्री और वेश्यागमन इसी तरह बराबर जारी रहा तो कोई दवा मनुष्य जाति को नष्ट होने से नहीं बचा सकती। इन बीमारियों की दवाएँ इतनी ज़हरीली होती हैं कि वे थोड़े दिनों तक आराम देती दिखाई पड़ती हैं पर ऐसी अनेक

नई बीमारियाँ पैदा कर देता है जो पीढ़ियों तक पीछा नहीं छोड़तीं।

अब विवाहित स्त्री पुरुषों के ब्रह्मचर्य पालन के उपाय बतला कर इस प्रसङ्ग के समाप्त कर देंगे। ब्रह्मचर्य के लिए शुद्ध जल, वायु और भोजन ही के सम्बन्ध म सावधान रहने से काम नहीं चलेगा। पति को अपनी पत्नी के साथ का एकान्तवास भी छोड़ देना पड़ेगा। सम्भोग के सिवा पति और पत्नी के एकान्तवास की कभी ज़रूरत ही नहीं पड़ती। रात में वे दोनों ही अलग अलग कमरा में सोवें और दिन में निरन्तर अच्छे कामा में लगे रहें। वे ऐसी पुस्तकें और महापुरुषा के पुण्य चरित्रों का पाठ करें जो उनके मन के पवित्र विचारों से ओत प्रोत कर दें। स्त्री पुरुष दोनों ही सदा इस बात पर विचार करते रहें कि भोग में दुःख ही दुःख है। यदि उनके मन में वासना प्रवेश कर तो ठंडे पानी से नहा लें। यह काम कठिन है। परन्तु हमें यदि स्वास्थ्य का परमानन्द प्राप्त करना है तो कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करनी ही पड़ेगी।

सत्य और संयम

एक मित्र ने महादेव देसाई को लिखा है—

"आपको याद होगा कि 'नवजीवन' में गांधीजी ने एक लेख लिखते हुए स्वीकार किया था कि उन्हें अब भी कभी-कभी स्वप्नदोष होजाता है। उसे पढ़ते ही मैं सोचने लगा कि ऐसे लेखों से कोई फायदा नहीं है। आगे चलकर मालूम हुआ कि मेरा यह भय निराधार नहीं था।

विलायत-यात्रा में अनेक प्रलोभनों के रहते हुए भी मैंने और मेरे साथियों ने अपना चरित्र शुद्ध रखा। स्त्री, मदिरा, मांस से हम बिल्कुल अलग रहे। पर गांधीजी का लेख पढ़कर एक मित्र ने कह डाला—"गांधीजी के भीषण प्रयत्नों के बाद भी, यदि उनकी यह हालत है तो हम किस खेत की मूली हैं? हम दशा में ब्रह्मचर्य पालन का उद्योग व्यर्थ है। गांधीजी की स्वीकारोक्ति से मेरा दृष्टिकोण बिल्कुल बदल गया है। मुझे तो तुम बिल्कुल गया-बीता ही समझ लो।" अनेक युक्तियों के साथ बहस करके मैंने उन्हें समझाने का उद्योग किया, किन्तु कोई सफलता

न मिली। मैंने उनसे कहा—यदि गाधीजी ऐसे त्रुटियों को ब्रह्मचर्य पालन करना कठिन है, तो हमें तो और भी अधिक जागरूक और प्रयत्नशील होना चाहिए। परन्तु इस प्रकार की दलीलों से कोई लाभ नहीं हुआ। आज तक जिस व्यक्ति का चरित्र निष्कलङ्क और पवित्र था, वह अब कलङ्कित हो गया। यदि मम सिद्धान्त के अनुसार इसका दोष कोई गाधीजी पर लगावे, तो आप या गांधीजी क्या कहेंगे?

जब तक मेरे सामने ऐसा केवल एक उदाहरण था तब तक मैंने आपको नहीं लिखा। उसके लिए शायद मुझे आप अपवाद कहकर टाल देते। परन्तु इसके बाद कई ऐसे उदाहरण मेरे सामने आए जिनसे मेरा भय और भी सच सिद्ध होगया।

मैं यह जानता हूँ कि जो बहुत सी बातें गाधीजी के लिए सरल हो सकती हैं वे मेरे लिए बहुत कठिन हैं। किन्तु ईश्वर की दया से मैं यह भी कह सकता हूँ कि कुछ बातें जो मेरे लिए सरल हो, वे ही उनके लिए असम्भव हो सकती हैं। ऐसे ही यह भाव ने मुझे पतन के गर्त में गिरने से बचा लिया। गाधीजी की स्वीकारोक्ति से तो मेरा चित्तविचलित हो-चुका है।

क्या आप इस ओर गांधीजी का ध्यान आकर्षित करेंगे? और खासकर ऐसे अवसर पर, जबकि वे अपनी आत्म-कथा लिख रहे हैं। बिलकुल नङ्गे रूप में सत्य प्रकट करना वीरता ज़रूर है, किन्तु इससे 'नवजीवन' और 'यंग इण्डिया' के पाठकों में भ्रम फैल सकता है। मुझे डर है कि जो चीज़ एक व्यक्ति के लिए अमृत है वही दूसरे के लिए कहीं ज़हर साबित न हो।"

इस शिकायत से मुझे कोई ताज्जुब नहीं हुआ। जब असहयोग आन्दोलन का ज़ोर था तब मैंने अपनी एक ग़लती मान ली। इस पर एक मित्र ने बड़ी सरलता से कहा था—"आपको यदि कोई अपनी भूल मालूम हो तो भी उसे प्रकट न करना चाहिए। लोगों के मन में यह भाव जमा रहना चाहिए कि ऐसा भी एक आदमी है जिससे कोई भूल नहीं होती। आप ऐसे ही समझे जाते थे। अब आपने अपनी भूल स्वीकार कर ली है, अतः लोग हताश हो जायँगे।" इस पत्र को पढ़कर मुझे हँसी आई और दुःख भी हुआ। यह विचार ही मेरे लिए असह्य था कि लोगों को विश्वास दिलाया जाय कि जो आदमी ग़लती करता है उससे कभी ग़लती नहीं होती।

किसी भी आदर्श का सच्चा स्वरूप जान लेने से लोगों को सदा लाभ ही होता है। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि मेरे अपनी ग़लती मान लेने से जनता को लाभ ही हुआ है। और मेरे लिए तो यह ढँग सर्वोत्तम सिद्ध हुआ है।

सत्य का प्रकाश

मेरे दूषित स्वप्नों के सम्बन्ध में भी यही बात है। पूर्ण ब्रह्मचारी न होने पर, यदि मैं वैसा होने का दावा करूँ तो इससे संसार की बड़ी हानि होगी। क्योंकि ऐसा करने से ब्रह्मचर्य में धब्बा लगेगा और सत्य का प्रकाश धुँधला पड़ जायगा। ब्रह्मचर्य का झूठा दावा करके मैं उसका मूल्य कम करने का साहस क्यों करूँ! आज मैं देखता हूँ कि ब्रह्मचर्य पालन करने के लिए जो उपाय मैं बतलाता हूँ वे पूर्ण नहीं हैं। सब जगह और सब लोगों पर उनका एक-सा प्रभाव नहीं पड़ता इसलिए कि मैं पूर्ण ब्रह्मचारी नहीं हूँ। दुनियाँ यह माने कि मैं पूर्ण ब्रह्मचारी हूँ, और मैं ब्रह्मचर्य का सीधा और सच्चा मार्ग न दिखा सकूँ, तो यह कितनी भयङ्कर बात होगी।

मैं सच्चा साधक हूँ। सदा जागृत रहता हूँ। मेरा उद्योग दृढ़ है। और मैं विघ्न बाधाओं से कभी डरता नहीं। केवल मेरी

इतनी ही बात से दूसरा को उत्साह क्यों न मिले ? झूठे प्रमाणों द्वारा कोई नतीजा निकालने की ग़लती क्यों की जाय ? साथ यह बात क्यों न देखी जाय कि जो आदमी किसी समय व्यभिचारी और विकार पूर्ण था, वह आज यदि अपनी पत्नी के या ससार की सवश्रेष्ठ सुन्दरी स्त्रियों के साथ भी, अपनी लड़की या बहिन का सा व्यवहार कर सकता है, तो गिर से गिरा आदमी भी उठ सकता है ? हमारे स्वप्नदोषों को, या विकार भरे विचारों का तो ईश्वर दूर करेगा ही।

पत्र-लेखक के वे मित्र जो मेरी स्वप्न-दोष की स्वीकारोक्ति को जानकर अपने पथ से विचलित हुए, कभी आगे बढ़े ही न थे। उन्हें झूठा नशा था, जो एक ज़रा से धक्के में तुरन्त ही उतर गया। ब्रह्मचर्य एवं महाव्रतों की सत्यता मेरे जैसे किसी भी व्यक्ति के ऊपर निर्भर नहीं है। उसके पीछे भी लाखों तेजस्वी महापुरुषों ने तप किया है और कुछ लोग तो उस पर पूर्ण रूप से विजय तक प्राप्त कर चुके हैं।

उन चक्रवर्ती महापुरुषों की पंक्ति में खड़े होने का जब मुझे अधिकार प्राप्त होगा तब मेरी भाषा में आज से भी कहीं अधिक निश्चय, बल और ओज दिखाई देगा। वास्तव

में वही मनुष्य स्वस्थ कहा जायगा जिसके विचारों में विकार नहीं है जिसकी नींद स्वप्न से भङ्ग नहीं होती, और जो निद्रित रहने पर भी जागरूक रहता है। ऐसे आदमी को कभी क्विनैन खाने की ज़रूरत नहीं पड़ती, उसके निर्विकार रूप में मलेरिया आदि बीमारियों के कीटाणुओं को नष्ट कर देने की शक्ति होती है। शरीर, मन और आत्मा की ऐसी ही स्वस्थ दशा को प्राप्त करने के लिए मैं उद्योग कर रहा हूँ। इसमें हारने की तो कोई बात ही नहीं है। इस उद्योग में उस पत्र के लेखक, उसके श्रद्धावान मित्रों तथा अन्य पाठकों को, अपने साथ चलने के लिए मैं आमन्त्रित करता हूँ और चाहता हूँ कि लेखक की तरह वे मुझसे भी अधिक तेज़ी के साथ आगे बढ़ें। जो लोग पीछे हों वे मेरे ऐसे आदमियों के उदाहरण से आगे बढ़कर आत्मविश्वासी बनें। मुझे जो कुछ भी सफलता मिल सकी है, वह मेरे निर्बल और विकार वश होने पर भी, सतत उद्योग, श्रद्धा और ईश्वर-कृपा से ही मिल सकी है।

इन सब बातों से स्पष्ट है कि किसी भी व्यक्ति को निराश होने का कोई कारण नहीं है। मेरा महात्मापन थोड़ा काम का

नहीं है। यह तो मेरे बाहरी छोटे-मोटे कामों, ख़ासकर राजनैतिक कामों के कारण है। यह क्षणिक है, इसलिए दो दिन में बह जायगा। मेरा सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य-पालन ही मेरे कामों का सबसे अधिक मूल्यवान् अंश है। उस अंश की कोई भूलकर भी अवज्ञा न करे, उसी में मेरा सर्वस्व है। उसमें दीख पड़नेवाली विफलता, सफलता की सीढ़ी है। इसलिए निष्फलता को भी मैं प्यार की दृष्टि से देखता हूँ।

सन्तति-निरोध

"स्त्री-पुरुष के सम्मिलन का उद्देश्य सम्भोग नहीं, किन्तु सन्तानोत्पत्ति है"। जब से मैं हिन्दुस्तान में वापस आया हूँ तभी से लोग मुझसे कृत्रिम साधनों के द्वारा सन्तति निग्रह की चर्चा कर रहे हैं। अब से ३५ वर्ष पहले इस ओर मेरा ध्यान गया था। उन दिनों मैं इंग्लैंड में पढ़ता था। उस समय वहाँ संयम के पक्षपाती एक सज्जन और एक डाक्टर में बड़ा विवाद चल रहा था। संयमवादी सज्जन प्राकृतिक साधनों के सिवा और दूसरे उपायों के मानने के लिए तैयार न थे। और डाक्टर कृत्रिम उपायों का माननेवाला था। उसी समय से मैं कुछ दिनों तक तो कृत्रिम साधनों का पक्षपाती रहा और बाद को उनका कट्टर विरोधी बन गया। इधर मैं देखता हूँ कि कुछ हिन्दी पत्रों में सन्तति निग्रह के कृत्रिम साधनों का वर्णन। बड़े नंगे रूप में किया गया है। इस अनुचित और अश्लील ढंग से सुरुचि को आघात पहुँचता है। एक लेखक ने तो मेरा नाम भी बेधड़क होकर सन्तति निग्रह के लिए कृत्रिम साधनों का प्रयोग करने के

समर्थकों में दे दिया है। मुझे ऐसा एक भी अवसर याद नहीं है, जब कि मैंने कृत्रिम साधनों के पक्ष में कभी कोई बात कही या लिखी हो।

सन्तति निग्रह की आवश्यकता के सम्बन्ध में दो मत हो ही नहीं सकते। उसका तो युगानुयुग से केवल एक ही उपाय चला आया है, और वह उपाय है आत्म संयम या ब्रह्मचर्य। यह वह रामबाण औषधि है जिसका सेवन करने से प्रत्येक व्यक्ति को लाभ होगा। डाक्टर लोग, यदि सन्तति-निग्रह के लिए कृत्रिम उपाय खोजने के बदले, आत्म-संयम के साधन प्रचलित कर दें तो सचमुच मानव-जाति का बड़ा उपकार होगा। स्त्री-पुरुष के सम्मिलन का उद्देश्य सम्भोग नहीं, किन्तु सन्तानोत्पत्ति है। जब संतानोत्पत्ति की इच्छा न हो तब सम्भोग करना पाप है।

कृत्रिम साधनों का समर्थन करना मानो पाप पथ की ओर जाने के लिए लोगों का उत्साह बढ़ाना है। इससे स्त्री-पुरुष उच्छृङ्खल हो जाते हैं। जिस ढंग से सन्तति निग्रह के लिए इन कृत्रिम साधनों को महत्व दिया जा रहा है उससे संयम का मार्ग अवरुद्ध होगा। कृत्रिम उपायों से नपुंसकता और मानसिक निर्बलता बढ़ेगी। यह दवा बीमारी से भी बदतर साबित होगी।

अपने कर्म से बचने का उपाय करना अनीति है और पाप है। जो आदमी ज़रूरत से ज़्यादा खा लेता है उसके लिए यही अच्छा है कि उसके पेट में दर्द हो और उसे उपवास करना पड़े। जिह्वा को वश में न रखकर, मनमाने ढँग से ठूँस ठूँसकर पेट भर लेना, और फिर तरह तरह की दवाएँ खाकर उसके परिणाम से बचने की कोशिश करना बुरा है। पशु की तरह विषय भोग में लिप्त रहकर उसके फल से बचना तो बहुत ही बुरा है। प्रकृति का शासन बहुत ही कठोर है। अपना नियम भङ्ग होने पर वह बड़ी सख़्ती से बदला लेती है। नैतिक फल तो नैतिक संयम ही से मिल सकते हैं। दूसरे प्रकार के सभी संयमों से उनका उद्देश ही नष्ट हो जाता है। कृत्रिम साधनों के समर्थक तो आरम्भ ही से यह मानते हैं कि जीवन के लिए भोग आवश्यक है। इससे अधिक ग़लत तर्क और भ्रामक विचार और क्या हो सकता है?

जो लोग सन्तति निग्रह के लिए उत्सुक हैं उन्हें चाहिए कि प्राचीन ऋषियों के द्वारा चलाये गये उचित उपायों की खोज कर और उनके प्रचार की व्यवस्था सोचें। उनके आगे बहुत काम पड़ा है। बाल विवाह से सहज ही में जन संख्या बढ़ रही है।

हमारा वर्तमान रहन-सहन भी बेरोक सन्तानोत्पत्ति का एक बहुत बड़ा कारण है। यदि इन कारणों की जाँच-पड़ताल करके उन्हें दूर करने का प्रयत्न किया जाय तो हमारा समाज नैतिक दृष्टि से बहुत ही ऊँचा उठ जायगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। यदि हमारे इन जल्दबाज़ और अधीर उत्साही लोगों ने उनकी ओर से आँखें बन्द करलीं, और चारों ओर कृत्रिम साधनों का ही बाज़ार गर्म रहा तो नैतिक पतन के सिवा कोई दूसरा परिणाम न होगा।

हमारा समाज पहले ही से अनेक कारणों से निर्बल और पगु बन रहा है। इन कृत्रिम साधनों के प्रयोग से तो यह और भी अधिक नि सत्व तथा प्राणहीन बन जायगा। इसलिए वे लोग जो बिना सोचे-समझे कृत्रिम साधनों का प्रचार कर रहे हैं, नये सिरे से इस विषय का अध्ययन और मनन करें, और अपनी कुत्सित करतूतों से बाज़ आवें तथा विवाहित और अविवाहित दोनों ही तरह के लोगों में ब्रह्मचर्य पालन की भावना जगाने में जुट पड़ें। सन्तति निरोध का यही एक मात्र ऊँचा और सीधा रास्ता है।

मनोवृत्तियाँ

एक अँगरेज़ सज्जन लिखते हैं—"यंग इंडिया" में आपने सन्तति निग्रह पर जो लेख लिखे हैं उन्हें मैं बड़े ध्यान से पढ़ता रहा हूँ। मुझे आशा है कि आपने जे० ए० हडफील्ड की 'साइकालोजी एण्ड मॉरल्स' नाम की पुस्तक पढ़ी होगी। मैं उस पुस्तक के नीचे लिखे अवतरण की ओर आपका ध्यान दिलाता हूँ—

"विषय भोग उस दशा में स्वेच्छाचार कहलाता है जब कि यह प्रवृत्ति प्रीति के विरुद्ध मानी जाती हो और विषय भोग निर्दोष आनन्द तब माना जाता है जब यह प्रवृत्ति प्रेम का चिह्न मान ली जाय। इस प्रकार विषय वासना का व्यक्त होना वास्तव में दाम्पत्य प्रेम को प्रगाढ़ बनाता है, उसे नष्ट नहीं करता। एक ओर मनमाना सम्भोग करने से, और दूसरी ओर सम्भोग के विचार का तुच्छ सुख मानने के भ्रम में पड़कर उससे बचते रहने से, अक्सर अशान्ति पैदा हो जाती है और प्रेम कम हो जाता है।" इसका मतलब यह है कि लेखक के विचार से, सम्भोग में

सन्तानोत्पत्ति के सिवा दाम्पत्य प्रेम को बढ़ाने का धार्मिक गुण भी रहता है।

यदि लेखक की बात सच है तो मुझे ताज्जुब है कि आप अपने इस सिद्धान्त का समर्थन कैसे करते हैं कि सन्तान-उत्पन्न करने की इच्छा से किया गया सम्भोग ही उचित है, अन्यथा नहीं। मेरे विचार से तो लेखक की बात बिल्कुल सच है। केवल इसलिए नहीं कि, वह एक मानस शास्त्र विशारद है, बल्कि मुझे स्वयं ऐसे उदाहरणों का पता है कि जिनमें शारीरिक प्रसङ्ग के द्वारा प्रेम व्यक्त करने की स्वाभाविक इच्छा को रोकने से दाम्पत्य जीवन बिल्कुल नीरस या नष्टप्राय हो गया है।

एक दूसरा उदाहरण लीजिए—एक युवक और एक युवती परस्पर प्रेम करते हैं और उनका ऐसा करना ईश्वरीय व्यवस्था का एक अङ्ग है। परन्तु उनके पास अपने बालक को शिक्षित बनाने के लिए काफी धन नहीं है। आप इससे सहमत हैं कि यदि बच्चों को शिक्षा देने का हैसियत न हो, तो सन्तान पैदा करना पाप है, अथवा यह समझ लीजिए कि बच्चा पैदा करने से स्त्री का स्वास्थ्य बिगड़ जायगा, या यह कि, उसके पहले ही बहुत बच्चे हो चुके हैं।

आपके कथनानुसार तो इस प्रकार के दम्पति के लिए दो ही मार्ग हैं। या तो वे विवाह करके एक दूसरे से अलग रहें, पर ऐसा होने पर इवफील्ड की उपयुक्त दलील के अनुसार उनके प्रेम का खात्मा हो जायगा। अथवा वे अविवाहित रहें, लेकिन इस दशा में भी उनका प्रेम तो जाता ही रहेगा। इसका कारण यह है कि प्रकृति बलपूर्वक आदमी की बनाई हुई योजनाओं की अवहेलना किया करती है। हाँ, यह हो सकता है कि वे एक दूसरे से अलग होकर रहें। परन्तु वियोग की दशा में भी उनके मन में विकार तो उठते ही रहेंगे। यदि सामाजिक व्यवस्था बदलकर ऐसी करदी जाय, जिसमें सब लोग उतने बच्चों का पालन कर सकें। जितने कि वे पैदा करें, तो भी समाज को अत्यधिक बच्चे पैदा होने का, और प्रत्येक स्त्री को सीमा से अधिक सन्तान उत्पन्न करने का डर तो बना ही रहेगा। पुरुष अपने आपको अत्यधिक वश में करके भी वर्ष में एक बच्चा तो पैदा कर ही लेगा। आपको या तो ब्रह्मचर्य का समर्थन करना चाहिए, या सन्तति निग्रह का, क्योंकि समय समय पर किये हुए सम्भोग के फल स्वरूप जैसा कि कभी कभी पादरियों में होता है, एक स्त्री, ईश्वर की इच्छा के नाम पर पुरुष

के द्वारा प्रत्येक वर्ष एक बच्चा पैदा करने के कारण मर सकती है।

जिसे आप आत्म-सयम क नाम से पुकारते है, वह प्रकृति के काम में उतना ही बड़ा, बल्कि उससे भी अधिक हस्तक्षेप है जितना कि गर्भाधान का रोकने क कृत्रिम साधन हैं। सम्भव है कि पुरुष इन साधनों की सहायता से अत्यधिक सम्भोग करे, परन्तु उससे सन्तान की उत्पत्ति तो रुक जायगी। अन्त में इसका दु ख उन्हीं को भोगना पड़ेगा, किसी दूसरे को नहीं। जो लोग इन साधनों का उपयोग नहीं करत वे भी आधिक्य के दोष से मुक्त नहीं हैं, और उनके पापों के फल केवल उन्हीं को नहीं, बल्कि उनकी उस सन्तति का भी भोगने पड़ते है, जिनकी उत्पत्ति को वे रोक नहीं सकते।

इङ्गलैण्ड म आजकल खाना के मालिकों और मजदूरों में जो झगड़ा चल रहा है, उसमें खानों के मालिकों की विजय निश्चित है। इसका कारण यह है कि खानों क मजदूरों की सख्या बहुत है। सन्तानोत्पत्ति की निरकुशता से बेचारे बच्चा का ही नुकसान नहीं होता, परन्तु समस्त मानव जाति का होता है।"

इस पत्र मे मनोवृत्तियों और उनके प्रभाव का बड़ा अच्छा

परिचय मिलता है। जब आदमी का दिमाग़ रस्सी को साँप समझ लेता है तब उस विचार के कारण वह बहुत घबरा जाता है, या तो वह भागता है, या उस कल्पित साँप को मार डालने के अभिप्राय से लाठी उठाता है। दूसरा आदमी किसी ग़ैर स्त्री को अपनी पत्नी मान बैठता है और उसके मन में पशु प्रवृत्ति पैदा हो जाती है। जिस क्षण उसे अपनी भूल मालूम हो जाती है उसी क्षण उसका विकार ठण्डा पड़ जाता है।

यही बात उपर्युक्त उस मामले के सम्बन्ध में भी मानी जाय, जिसकी पत्र लेखक ने चर्चा की है। "सम्भोग की इच्छा को तुच्छ समझ लेने के भ्रम में पड़कर उससे परहेज़ करने से बहुधा अशान्ति पैदा होती है। और प्रेम में कमी आ जाती है।" यह एक मनोवृत्ति का प्रभाव हुआ। परन्तु यदि संयम प्रेम बन्धन को अधिक दृढ़ बनाने के लिए किया जाय, प्रेम को शुद्ध बनाने, तथा एक अधिक अच्छे काम के लिए वीर्य जमा करने के अभिप्राय से किया जाय तो वह अशान्ति की जगह शान्ति ही पैदा करेगा। और प्रेम बन्धन को ढीला न करके, उसे और भी मज़बूत बना देगा। यह दूसरी मनोवृत्ति का प्रभाव हुआ।

जो प्रेम पशु प्रवृत्ति की तृप्ति पर आधारित है वह आख़िर

स्वार्थ नहीं तो और क्या है ? यह स्वार्थ थोड़े से दबाव से उखड़ पड़ सकता है। फिर यदि पशु-पक्षियों की सम्भोग-तृप्ति को आध्यात्मिक रूप न दिया जाय तो मनुष्यों में होनेवाली सम्भोग-तृप्ति को आध्यात्मिक रूप क्यों दिया जाय ? हम जो चीज जैसी है, उसे वैसी ही क्यों न देखें ? वंश का चलाने के लिए यह एक ऐसा काम है जिसकी ओर हम सब ज़बरदस्ती खींचे जाते हैं। परन्तु मनुष्य इसका अपवाद है, क्योंकि वही एक ऐसा प्राणी है जिसे ईश्वर ने मर्यादा के भीतर रहकर स्वतन्त्र इच्छा दी है, और उसी के बल पर वह जाति की उन्नति के लिए, तथा पशुओं की अपेक्षा अपने उच्चतम आदर्श को पूरा करने के लिए, जिसके लिए उसने संसार में प्रवेश किया है, इन्द्रिय-भोग न करने की क्षमता रखता है। संस्कार-वश ही हम यह मानते हैं कि बच्चे पैदा करने के कारण के सिवा, स्त्री-प्रसङ्ग दाम्पत्य प्रेम की वृद्धि के लिए भी ज़रूरी है। बहुत से आदमियों का अनुभव तो यह है कि केवल विषय-भोग के लिए ही किया गया स्त्री-प्रसङ्ग न तो प्रेम को बढ़ाता है, और न, उसको विशुद्ध और चिरस्थायी बनाने के लिए ही आवश्यक है।

ऐसे भी उदाहरण बहुत से पेश किये जा सकते हैं कि जिनमें

आत्म सयम मे प्रेम और भी दृढ़ हो गया है। हाँ, यह आवश्यक है कि वह आत्म सयम पति और पत्नी के बीच परस्पर आत्मोन्नति के लिए स्वेच्छानुसार किया जाना चाहिए। मानव-समाज तो निरन्तर उन्नति की ओर अग्रसर होनेवाली, अथवा आध्यात्मिक विकास करती रहनेवाली चीज़ है। यदि मानव-समाज इस प्रकार उन्नतिशील है, तो उसका आधार शारीरिक वासनाओं पर दिन पर दिन अधिकाधिक नियन्त्रण करने पर निर्भर होना चाहिए। इस दृष्टि से विवाह तो एक ऐसी धर्म ग्रंथि समझा जाना चाहिए, जो पति और पत्नी दोनों ही पर शासन करे और उनपर यह बन्धन अनिवार्यत लगाए कि वे सदा केवल अपने ही बीच विषय भोग करेंगे, और वह भी केवल सन्तान पैदा करने के उद्देश से, उस दशा में जब कि, वे दोनों ही उसके लिए उद्यत और उत्सुक हों।

जिस प्रकार उक्त लेखक सन्तानोत्पत्ति के अतिरिक्त भी स्त्री प्रसङ्ग को आवश्यक बतलाता है उसी प्रकार यदि हम भी कहना प्रारम्भ करें तो तर्क के लिए कोई जगह नहीं रह जाती। ससार के प्रत्येक भाग म थोड़े से उत्तम पुरुषों के पूर्ण सयम के उदाहरण होते हुए उच्च सिद्धान्त को कोई स्थान नहीं है। यह कहना कि

ऐसा संयम मानव-समाज के लिए कठिन है, म यम की सम्भवता और उत्तमता के विरुद्ध कोई दलील नहीं हो सकती। सौ वर्ष पहले अधिकांश मनुष्यों के लिए जो बात सम्भव नहीं थी, वह आज सम्भव है। और फिर, असीम उन्नति करने के लिए, हमारे सामने उपस्थित काल-चक्र में १०० वर्षों का समय ही कितना है? यदि वैज्ञानिकों का अनुमान सत्य है तो कल ही तो हमें आदमी का चोला मिला है! उसकी मर्यादा कौन जानता है? और किसमें साहस है कि जो उसकी मर्यादा स्थिर कर सके? हम नित्य ही भला या बुरा करने की असीम शक्ति उसमें पाते हैं।

यदि संयम को सम्भव और श्रेयस्कर मान लिया जाय, तो हमें उसके पूरा करने योग्य बनने के साधन ढूँढ़ निकालने होंगे। यदि हम संयम से रहना चाहते हैं तो, हमें अपनी जीवन चर्या बदलनी ही पड़ेगी। लड्डू हाथ में रहे, और पेट में भी चला जाय, यह कैसे हो सकता है? यदि हम जननेन्द्रिय का संयम करना चाहते हैं, तो हमें अन्य सभी इन्द्रियों का संयम करना ही होगा। यदि हाथ, पैर, नाक, कान, आँख आदि की लगाम ढीली कर दी जाय, तो जननेन्द्रिय का संयम असम्भव है। अशान्ति, चित्तविक्षेपन, हिस्टीरिया, पागलपन आदि रोग, जिनके लिए

लोग ब्रह्मचर्य पालन करने के प्रयत्न का दोष बतलाते हैं, वास्तव में अन्य इन्द्रिया के असयम का फल सिद्ध होंगे। कोई भी आदमी पाप का अथवा प्राकृतिक नियमों को तोड़ने का, दड भोगे बिना रह नहीं सकता।

शब्दों पर मैं कभी नहीं झगड़ता। यदि आत्म-सयम, प्रकृति के नियम का उसी प्रकार उल्लघन है, जिस प्रकार कि सन्तति निरोध के कृत्रिम उपाय हैं, तो भले ही यह बात कही जाय। परन्तु मेरा ख्याल तो तब भी यही बना रहेगा कि पहला उल्लघन कर्त्तव्य है और श्रेयस्कर है इसलिए कि, उससे व्यक्ति और समाज का कल्याण होता है, और इसके विपरीत दूसरे से उन दोनों का पतन। बढ़ती हुई सन्तान सख्या का निरोध करने के लिए ब्रह्मचर्य का एक ही सच्चा रास्ता है। स्त्री प्रसग के बाद बढ़ती हुई सन्तान रोकने के लिए कृत्रिम साधनों का प्रयोग करने से तो मानव-समाज का नाश ही होगा।

यदि खानों के मालिक गलत रास्ते पर होते हुए भी जीत जायँगे, तो इसलिए नहीं कि, मज़दूरों से उनकी सन्तान की सख्या बहुत बढ़ गई है, बल्कि इसलिए कि, मज़दूरों ने सयम का पाठ नहीं सीखा है। यदि उन लोगों के बच्चे न होते, तो

उनमें आगे बढ़ने के लिए उत्साह ही न होता। क्या उन्हें शराब पीने, जुआ खेलने, या तमाखू पीने की ज़रूरत है? क्या यही इस बात का उचित उत्तर हो जायगा कि खानों के मालिक इन्हीं दोषों में लिप्त रहते हुए भी उनके ऊपर हावी हैं? यदि मज़दूर लोग पूँजीपतियों से श्रेष्ठ होने का दावा नहीं करते, तो उन्हें ससार की सहानुभूति माँगने का अधिकार ही क्या है? क्या इसलिए कि पूँजीपतियों की सख्या बढ़े और पूँजीवाद का पञ्जा मज़बूत हो? हमें यह आशा दिलाकर प्रजा-सत्ता की दुहाई दीजाती है कि जब दुनियाँ में उसका बोलबाला होगा तब हमें अच्छे दिन देखने को मिलेंगे। इसलिए हमें उचित है कि हम स्वय उन्हीं बुराइयों में न फँसे जिनका दोष हम पूँजीपतियों और पूँजीवाद पर मढ़ते हैं।

मुझे बड़े दुःख के साथ इस बात का अनुभव है कि आत्म सयम आसानी से नहीं किया जा सकता। परन्तु उसकी धीमी चाल से हमें तनिक भी नहीं घबराना चाहिए। जल्दबाज़ी से कुछ काम नहीं बनता। धैर्य खो देने से, जन साधारण, अथवा मज़दूरों में अत्यधिक बच्चे पैदा करने की फैली हुई बुराई दूर नहीं होगी। मज़दूरों की सेवा करनेवालों के सामने, करने के लिए

बहुत बड़ा काम है। उन्हें अपनी दिन चर्या से वह पाठ निकाल न देना चाहिए, जो मानव-जाति के उत्तम से उत्तम शिक्षकों ने अपने अमूल्य अनुभव के बल पर हमें पढ़ाया है। उनसे जो मौलिक सिद्धान्त विरासत में हमें मिले हैं, उनका प्रयोग आधुनिक प्रयोग-शालाओं से कहीं अधिक उपयोगी और सम्पन्न प्रयोग शालाओं में किया गया था। उन सभी महापुरुषों ने हमें आत्म-संयम की शिक्षा दी है।

साधन

जो लोग भोग विलास को अपना धर्म नहीं मानते, और जो बार बार आत्म-संयम के लिए प्रयत्नशील हैं, उनके लिए नीचे लिखी बातें उपयोगी सिद्ध होंगी—

१—यदि आप विवाहित हैं तो याद रखें कि आपकी पत्नी, आपकी मित्र, सहचरी और सहधर्मिणी है, भोग विलास का साधन नहीं।

२—आत्म-संयम आपके जीवन का नियम है। इसलिए सम्भोग तभी किया जा सकता है जबकि पति पत्नी दोनों ही उसके लिए इच्छुक हों, और वह भी उन नियमों के अनुसार, जिनका उन दोनों ने शान्त चित्त से निश्चय कर लिया हो।

३—यदि आप अविवाहित हैं तो अपने आपको पवित्र रखना, अपने प्रति, समाज और अपने भावी साथी के प्रति आपका पुनीत कर्त्तव्य है।

४—आप सदा उस अदृश्य शक्ति का विचार करें, जो हमारे

हृदय में रहकर सदा हमारी देख भाल करती है, और प्रत्येक अपवित्र विचार से तुरन्त ही हमें सावधान कर देती है।

४—सयत जीवन के नियम, विलासिता के जीवन से अवश्य अलग होने चाहिए। इस कारण आप अपना सहवास, अध्ययन, मनोरञ्जन और भोजन के स्थान सभी बातें सयत करें।

आप खोजकर भले और पवित्र मनुष्यों को अपना साथी बनावें। कामुकता के भावों से भरे उपन्यास और पत्र पत्रिकायें पढ़ना छोड़ दें, और साथ ही उन अमर रचनाओं को पढ़ें जो ससार के लिए जीवन प्रद हैं। समय पर काम देने और पथ-प्रदर्शन के लिए एक पुस्तक को सदा के लिए आप अपनी सहचरी बना लें।

आप थियेटर और सिनेमा त्याग दें। मनोरञ्जन वह है जिसमे हृदय को शान्ति मिले। इसलिए आप उन भजन मडलियों में जायें जहाँ शब्द और सङ्गीत दोनों ही आत्मा को ऊँचा उठाते हैं।

आप अपनी भूख बुझाने के लिए भोजन करें, जीभ के स्वाद के लिए नहीं। भोगी मनुष्य खाने के लिए जीता है, और सयमी पुरुष जीने के लिए खाता है। आप मिर्च मसालों, शराब तथा और दूसरी नशीली चीज़ों को छोड़ दें। आपको अपने भोजन का समय और परिमाण नियत कर लेना चाहिए।

६—जब आपको काम वासना सताने तब आप अपने घुटनों के बल बैठकर सहायता के लिए ईश्वर से प्रार्थना करें। बाहरी सहायता के लिए टब में बैठकर हिप-बाथ ले लें। अर्थात् पानी से भरे हुए टब में अपनी टाँगें बाहर निकालकर कुछ मिनट तक लेटे रहें। ऐसा करने से आपकी वासनाएँ शान्त हो जायँगी।

७—प्रात काल और रात को सोने से पहले खुली हवा में तेज़ी से टहलने की कसरत करें।

८—यह कहावत याद रखें—शीघ्र सोना और शीघ्र जागना, मनुष्य को स्वस्थ, धनी और बुद्धिमान् बनाता है। नियमित रूप से ९ बजे सोकर ४ बजे उठने की आदत डालनी चाहिए। खाली पेट सोना बहुत हितकर है, इसलिए आपका अन्तिम भोजन ६ बजे शाम तक होजाना चाहिए।

९—याद रहे कि प्राणीमात्र की सेवा से ईश्वर की महत्ता और प्रेम प्रदर्शित करने के लिए मनुष्य ईश्वर का प्रतिनिधि है। आप सेवा कार्य ही में सुखी रह, फिर आपको अपने जीवन में और सुखों की ज़रूरत न रह जायगी।

Printed by P. N. Tripathi at the Hindi Mandir Press, Allahabad
& published by Pt. Surendra sharma, Allahabad

चरित्र गठन
और
मनोबल ।
लेखक—
स्व० दयाचन्द्र गोयलीय

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीज़का ९ वाँ ग्रन्थ।

चरित्रगठन और मनोबल।

श्रीयुत राल्फ वाल्डो ट्राइनके 'कैरेक्टर बिल्डिंग थॉट पावर' नामक ग्रन्थका स्वतत्र अनुवाद।

अनुवादकर्त्ता—

स्व० बाबू दयाचन्द्रजी गोयलीय, बी० ए०।

प्रकाशक—

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-कार्यालय,
हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई।

भाद्रपद, १९८६ वि०।

अगस्त, १९२९।

पष्ठावृत्ति]

[मूल्य तीन आने।

प्रकाशक—

नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगांव-बम्बई।

मुद्रक—
म० ना० कुळकर्णी,
कर्नाटक प्रेस,

प्रस्तावना।

इस छोटीसी पुस्तकको पाठकोंकी भेंट करते हुए मुझे इससे अधिक कहनेकी कोइ आवश्यकता नहीं मालूम होती कि यह अँगरेजी भापाके सुप्रसिद्ध लेखक श्रीयुत राल्फ वाल्डो ट्राइन (Ralph Waldo Trine) महोदयकी कैरक्टर बिल्डिंग-थाट पावर (*Character Building Thought Power*) नामक अँगरेजी पुस्तकका स्वतन्त्र अनुवाद है। ट्राइन महाशयका नाम ही उनके ग्रथोंकी उत्तमताके विपयमें काफी प्रमाण है। इस पुस्तकका अँगरेजी भापामें इतना आदर हुआ है कि गत १३ वर्षोंमें इसकी ७७ हजार प्रतियाँ बिक चुकी हैं। इसका विपय इसके नामसे ही प्रकट है। इसका सारांश यह है कि हम स्वय अपने मनोबलसे अपना चरित्र गठन कर सकते हैं। हमारे स्वभाव वास्तवमें हमारे विचारोंसे ही बनते हैं। यदि हम अपने विचारोंको ठीक कर सकें तो स्वभाव ठीक करना कुछ भी कठिन नहीं है।

यह एक चरित्रविपयक पुस्तक है और हमारे जीवनका आधार एक मात्र चरित्रपर है, अतएव हमने इस पुस्तकका हिन्दी अनुवाद करना अत्यावश्यक समझा। हिन्दीमें इस प्रकारकी पुस्तकें बहुत ही कम हैं। यद्यपि हमने इस पुस्तकका स्वतंत्र अनुवाद किया है, तथापि मूल लेखकके भावोंकी रक्षाका यथाशक्ति प्रयत्न किया है। हमें इसके लिखनेमें श्रीयुत मुफ्ती मोहम्मद अनवारुल हक साहेब, एम ए, मन्त्री शिक्षाविभाग, रियासत भोपालके इसी पुस्तकके उर्दू अनुवादसे बहुत सहायता मिली है, जिसके लिए हम मुफ्ती साहबके हृदयसे आभारी हैं।

लखनऊ
३०—८—१४ }

दयाचन्द्र गोयलीय।

चरित्र-गठन
और
मनोबल।

हम अपने जीननके प्रत्येक समयमें ऐसी अनेक नई नई आदतें सीखते रहते हैं जिनका हमें ज्ञान भी नहीं होता। उनमेंसे कुछ आदतें तो बहुत अच्छी होती हैं, परन्तु कुछ बहुत बुरी होती हैं। कुछ ऐसी होती हैं कि स्वयं तो वे बहुत बुरी नहीं होतीं, परन्तु आगे चलकर उनके फल बहुत ही बुरे होते हैं और उनसे बहुत कुछ हानि, कष्ट और पीड़ा पहुँचती है। कुछ उनसे बिलकुल उल्टी होती हैं, जिनसे सदा हर्ष और आनन्द बढ़ता रहता है।

अब प्रश्न यह है कि क्या अपनी आदतें बनाना सदा अपने अधिकारमें है ? क्या यह बात हमारे हाथमें है कि हम जिस तरहकी चाहें अपनी आदतें बना लें, जिस आदतको चाहें ग्रहण करें और जिस आदतको चाहें छोड़ दें ? इसका सक्षिप्त उत्तर यह है कि हाँ, यह बात

बिल्कुल हमारे हाथमें है। हम अपना चरित्र चाहे जैसा बना सकते हैं। **मनुष्य वही हो जाता है जो वह होना चाहता है।** यह शक्ति मनुष्यमात्रमें स्वाभाविक है। परन्तु यह शक्ति उस समय तक कुछ भी कार्यकारी नहीं, जब तक इसका उपयोग मालूम न हो। अतएव पहले इसका उपयोग बताना जरूरी है।

सबसे पहले मनुष्यको इस स्वाभाविक शक्तिके अस्तित्व और कार्यका सम्यक् श्रद्धान होना चाहिए। पश्चात् उस महान् नियमपर विचार करना चाहिए जिसपर चरित्र-गठनकी नींव रक्खी जाती है, जिसके अनुसार प्रवृत्ति करनेसे पुरानी, बुरी, खोटी और नीच आदतें छूट जाती हैं, और नई, अच्छी और ऊँची आदतें पैदा हो जाती हैं और जिससे जीवनमें सर्वदेश या एकदेश परिवर्तन हो सकता है। इसके लिए केवल एक बातकी जरूरत है और वह यह है कि मनुष्य पहले उस नियमपर सच्चे दिलसे विचार करे, और फिर उसके अनुसार कार्य करनेका दृढ़ संकल्प करे।

मनोबल ही मनुष्यके सम्पूर्ण कार्योंका उत्तेजक है। इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्यका प्रत्येक कार्य जो संकल्पद्वारा किया जाता एक विचारका परिणाम है। जिस कार्यका जितना अधिक विचार किया जाता है वह कार्य भी उतना ही अधिक होता है। जो कार्य बार बार किया जाता है, वही धीरे धीरे आदतका रूप धारण करने लगता है। अनेक आदतोंके समूहका नाम ही चरित्र है। इसीको अँगरेजीमें कैरेक्टर Character और हिन्दीमें 'चाल-चलन' कहते हैं। इस लिए तुम जिस तरहके काम करना चाहते हो और जैसा अपने आपको बनाना चाहते हो उसी तरहके विचार तुम्हारे दिलमें आने चाहिए।

जो काम तुम करना नहीं चाहते, जिन आदतोंको तुम ग्रहण करना नहीं चाहते, उनके पैदा करनेवाले विचार कभी क्षणमात्रके लिए भी तुम्हारे मनमें न आने चाहिएँ।

यह एक मानी हुई बात है और इसमें किसीका तनिक भी विवाद नहीं है कि यदि मनमें कोई विचार कुछ समय तक बराबर आता रहे, तो वह (विचार) धीरे धीरे मस्तकके उस भागमें पहुँच जायगा कि जहाँ वह अंतमें कार्यका रूप अवश्य धारण कर लेगा, अर्थात् जहाँ पहुँचकर वह शरीरको अपने अनुसार कार्य करनेके लिए लाचार कर देगा। अब यदि वह विचार अच्छा है तो उसका फल भी अच्छा होगा और यदि वह विचार बुरा है तो उसका परिणाम भी बुरा होगा। हत्या, वध आदि जितने भी बुरे कर्म हैं सब इसी तरह होते हैं और इनके विपरीत जितने उत्तम कार्य हैं, वे भी इसी तरह होते हैं।

समझने और याद रखनेकी बात है कि प्रत्येक कार्यका कारण विचार है, परन्तु किसी प्रकारके विचारको मनमें रखने या न रखनेका हमें पूर्ण अधिकार है। हम अपने मनके स्वतंत्र राजा हैं। पूर्णरूपसे वह हमारे वशमें है और हमको सदैव उसे अपने वशमें रखना चाहिए। यदि कभी वह वशमें न रहे, तो उसके वशमें करनेका एक उपाय है। उसके अनुसार चलनेसे हम मन और विचार दोनोंको अपने अधिकारमें कर सकते हैं।

मनुष्यके शरीरमें यह गुण है कि उसमें किसी कामको बार बार करनेसे उस कामके करनेकी शक्ति बढती जाती है। पहली बार किसी कामके करनेमें जितनी कठिनाई होती है उससे कहीं कम उसी कामको दूसरी बार करनेमें होती है और उससे भी कहीं कम तीसरी

वार करनेमें और तीसरी वारसे भी कम चौथी वारके करनेमें होती है। गरज यह कि हर वार कठिनाई कम होती जायगी और आसानी अधिक माल्हम होती जायगी। धीरे धीरे एक दिन वह काम बिल्कुल आसान हो जायगा और उसमें ज़रा भी कठिनाई न रहेगी। परन्तु हाँ, उससे उल्टा करनेमें बड़ी कठिनाई माल्हम होगी। ठीक यही हालत मस्तककी भी है। एक विचार पहली वार जरा कठिनाईसे पैदा होता है, दूसरी वार उससे आसानीसे, और तीसरी वार उससे भी ज्यादह आसानीसे, इसी प्रकार ज्यादह ज्यादह आसानी होती जायगी और वह विचार धीरे धीरे मनका एक अंग हो जायगा। अब इसको दूर करना कठिन हो जायगा। परन्तु स्मरण रहे कि संसारमें कोई काम कठिन भले ही हो, पर असम्भव कुछ भी नहीं है। धीरे धीरे अभ्यास करनेसे कठिनसे कठिन काम भी सरल होजाता है। यह प्रत्यक्षसिद्ध सिद्धान्त है और सर्वमान्य है। इसमें किसीको कोई भी शंका नहीं हो सकती है। इसी सिद्धान्तको दृष्टिमें रखते हुए प्रत्येक मनुष्य अपने विचारोंको वशमें कर सकता है और उनपर अधिकार पा सकता है। यदि शुरूमें सफलता न हो, या कुछ समय तक होती न दीखती हो, तो कोई परवा नहीं। निराश कभी मत होओ। उद्योग कभी निष्फल नहीं जाता। बार बार कोशिश करो। वार वारकी कोशिशसे एक न एक दिन अवश्य सफलता होगी। जिस कामको तुम कठिन समझते हो वह सरल हो जायगा और जिन विचारोंको अभी तुम वशमें नहीं कर सकते थे, उन्हीं विचारोंपर तुमको पूर्ण अधिकार हो जायगा।

अतएव प्रत्येक व्यक्ति अपने विचारोंको वशमें कर सकता है और मनुष्यमात्र इस शक्तिको प्राप्त कर सकता है कि चाहे जिस प्रकारके

विचारोंको अपने मनमें आनेसे रोक दे । क्योंकि यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है और हमें इसे कभी न भूलना चाहिए कि किसी भी कामके लिए हमारी प्रत्येक बारकी कोशिश उस कामको ज्यादह आसान बना देती है, चाहे शुरूमें असफलता ही क्यों न हो। अर्थात् चाहे शुरूमें हमें किसी काममें सफलता न हो, तो भी ज्यों ज्यों वह काम किया जायगा त्यों त्यों उसमें ज्यादह आसानी होती जायगी । ऐसी दशामें असफलतामें भी सफलता है । क्योंकि उद्योगमें तो असफलता होती नहीं और उद्योग चाहे जब किया जाय काम करनेकी शक्तिको ही बढ़ाता है। एक न एक दिन अवश्य सफलता होगी और हमारी मनोकामना पूर्ण होगी । अतएव यह बात सिद्ध है कि हम अपने विचार चाहे जिस तरहके बना सकते हैं और चाहे जैसा अपना चरित्र निर्माण कर सकते हैं।

यहाँपर दो तीन उदाहरण दिये जाते हैं। आशा है कि उनसे यह विषय बिलकुल स्पष्ट हो जायगा।

मान लो कि एक आदमी किसी बड़ी कम्पनीका कोषाध्यक्ष (खजानची) या किसी बैंकका मैनेजर है। एक दिन उसने एक समाचारपत्रमें पढ़ा कि एक मनुष्यने सिर्फ चार ही पाँच घंटोंमें किसी सौदेमें कई लाख रुपये कमा लिए। थोड़े ही दिनोंके बाद उसने फिर एक ऐसे ही मनुष्यका हाल पढ़ा । अब उसके जीमें भी ऐसी ही लालसा पैदा होने लगी। वह विचार करने लगा कि ये आदमी कितनी थोड़ी देरमें लखपती हो गये ! मैं भी इन्हींका अनुकरण करके शीघ्र लखपती हो जाऊँगा। यही विचार उसके मनमें रात-दिन घूमने लगा। उसने ऐसे दो चार आदमियोंका हाल तो पढ़ा जो एक बारगी अमीर

हो गये, परन्तु यह उसने कभी नहीं सोचा कि ऐसे भी बहुतसे आदमी हैं जो ऐसा करनेसे अपनी सारी पूँजी खोकर भिखारी हो बैठे हैं। उसकी इच्छा दिनोंदिन बढ़ने लगी। अन्तमें एक दिन उसने अपनी तमाम पूँजी वैसे ही किसी काममें लगा दी। परिणाम वही हुआ जो प्राय ऐसी दशाओंमें हुआ करता है, अर्थात् उसको घाटा लग गया—उसकी सारी पूँजी जाती रही। अब वह विचार करता है कि अमुक कारणसे मुझे सफलता नहीं हुई। यदि मेरे पास और रुपया होता, तो मैं अवश्य घाटेको पूरा कर लेता और साथमें बहुत कुछ और भी कमा लेता। अब यह विचार बार बार उसके मनमें आता है और वह सोचता है कि मेरे हाथमें बैंकका जो रुपया है यदि मैं उसे लगा दूँ, तो इसमें कोई हानि नहीं है। शीघ्र ही जो रु कमाऊँगा उसमेंसे दे दूँगा। ऐसी छोटीसी रकमका अदा कर देना क कठिन बात नहीं। अन्तमें एक दिन उससे नहीं रहा जाता है वह बैंकके रुपयोंको भी—जो उसके अधिकारमें हैं—लगा देता है अं खो बैठता है। ऐसी घटनायें प्रतिदिन ही देखने और सुननमें आ हैं। इनका कारण क्या है? दूसरेके रुपयेको अपने उपयोगमें लाने वही एक बुरा विचार। यदि कोई बुद्धिमान् होता तो मनमें आते उस विचारको निकाल देता और अपनी बुरी इच्छाको दबा देत परन्तु वह मूर्ख था। उसने उसे स्थान दिया। जितना जितना व उसे स्थान देगा उतना उतना ही वह विचार बढ़ता जायगा औ अन्तमें इतना जोरदार हो जायगा कि फिर कार्यरूपमें ही परिणत हो दिखलाई देगा और उसका परिणाम घृणा, अपमान, शोक और पश्चा त्ताप होगा। शुरूमें ही जब मनमें कोई विचार उठता है तब उसक

हटा देना आसान होता है। बादमें उसका जोर बढ़ता जाता है और उसका हटाना उत्तरोत्तर कठिन होता जाता है। दियासलाई कितनी छोटी चीज है। शुरूमें उसके बुझानेके लिए केवल एक फूँक काफी है, परन्तु यदि वह किसी चीजमें लग जाय, तो घरभरमें आग लगा देगी और फिर उसका बुझाना कठिन हो जायगा।

एक और उदाहरण लीजिए। इससे यह मालूम होगा कि किस तरह किसी चीजकी आदत पड़ जाती है और किस तरह वही आदत छूट जाती है। मान लो कि एक नवयुवक है। चाहे उसके माता-पिता धनवान् हों, चाहे निर्धन, इससे कुछ मतलब नहीं। चाहे वह उच्च जातिका हो, चाहे नीच जातिका, इससे भी कुछ गरज नहीं। हाँ, इतना जरूर है कि वह एक नेक सदाचारी लड़का है। एक दिन वह अपने मित्रोंके साथ सन्ध्याके समय सैर कर रहा है। उसके मित्र भी वैसे ही साधारण स्थितिके सभ्य सदाचारी लड़के हैं, परन्तु प्राय साधारण लड़कोंके समान वे भी कभी कभी भूल कर बैठते हैं। ऐसा ही उस दिन भी हुआ। उनमेंसे एकने कह दिया कि चलो, आज किसी जगह चलकर साथ साथ खावें। इसमें कुछ भी कठिनाई नहीं हुई, सब हँसते खेलते उस स्थानपर पहुँच गये। वहाँ उनमेंसे एक लड़का बोला कि "भाई कुछ पीनेको भी चाहिए, उसके बिना कुछ आनंद न आयगा।" अब हमारा नवयुवक उस समय इंकार करना सभ्यताके प्रतिकूल और मित्रताके नियमोंके विरुद्ध समझकर हाँमें-हाँ मिला देता है। विवेक अंदरसे रोकता है और पुकारकर कहता है कि सावधान हो, देख, क्या करता है, परन्तु वह इस समय कुछ नहीं सुनता। उसको इस बातका विचार नहीं है कि चरित्रकी दृढ़ता सदा

सच्चे मार्गपर जमे रहनेमें है। वह मित्रोंके साथ उस दिन थोड़ी शराब पी लेता है। यद्यपि वह इस विचारसे नहीं पीता कि उसको शराबसे प्रेम है या वह शराबकी आदत डालना चाहता है, सिर्फ यह खयाल करके पी लेता है कि मित्रोंमें इंकार करना ठीक नहीं है। दैवयोगसे दो-चार वार ऐसा ही मौका पड़ जाता है और हर वार थोड़ी-सी पी लेता है। परन्तु इसका परिणाम बहुत ही बुरा होता है। प्रत्येक वार विवेककी रोक-टोक कम होती जाती है और धीरे धीरे उसे नशेकी चाट पड़ती जाती है। अब तो वह कभी कभी स्वयं भी खरीदकर थोड़ीसी पी लेता है। उसको स्वप्नमें भी इस बातका खयाल नहीं होता कि मैं क्या कर रहा हूँ और इसका क्या भयंकर परिणाम होगा। धीरे धीरे उसको शराबकी आदत पड़ जाती है और अब उसके लिए उसका छोड़ना कठिन हो जाता है। इसपर भी वह कुछ परवा नहीं करता। वह समझता है कि मैं अपनी इच्छासे ही कभी कभी पी लेता हूँ, जब देखूँगा कि इसकी आदत ही पड़ गई, तब छोड़ दूँगा। परन्तु यह केवल उसका भ्रम है। उसके लिए शराब दिन दिन ज़रूरी होती जाती है और एक दिन वह आता है कि जब हम उसे पक्का शराबी देखते हैं। अब उसे स्वयं अपनी हालतपर शोक और पश्चात्ताप होता है। लज्जा, घृणा, अपमान और निर्धनताके कारण उसे अपने पिछले दिनोंकी याद आती है। परन्तु अब उसका जीवन बिल्कुल नीरस और निराश हो गया है। यह उसके लिए आसान था कि वह शराबको कभी पीता ही नहीं, या पीता भी, तो इस अवस्थाको पहुँचनेसे पहले ही उसका त्याग कर देता। परन्तु वर्तमान अवस्थामें भी चाहे यह कितनी ही गिरी हुई हो, कितनी ही बुरी हो,

वह चाहे तो इसका त्याग कर सकता है और फिर एक वार पहलेके समान सुख और शान्तिको प्राप्त कर सकता है । आप पूछेंगे कि इसका उपाय क्या है ? उपाय यह है कि जब उसके मनमें शराब पीनेकी इच्छा हो, तत्काल उस इच्छाको रोक दे—एक मिनिटकी देर न करे । यदि जरा भी देर करेगा—जरा भी उस इच्छाको अपने मनमें स्थान देगा, तो फिर उसका निकालना कठिन हो जायगा । चिनगारीका पहले ही बुझा देना आसान है । जब घरमें आग लग जाती है, तब उसका बुझाना कठिन हो जाता है। अतएव बुरे विचारको मनमें आते ही रोक दो । इसीमें सारी सफलता है ।

यहाँ एक बात और कह देनी जरूरी है कि कोई विचार केवल उस विचारको दूर करनेका ही विचार करनेसे दूर नहीं होता, उसके दूर करनेका सरल और निश्चित उपाय यह है कि मनको किसी और कार्यमें लगाया जाय अथवा मनमें उस विचारसे कोई प्रतिकूल या अन्य कोई उत्तम विचार भरा जाय । ऐसा करनेसे बुरा विचार स्वयमेव मनसे निकल जायगा और उत्तम विचार उसका स्थान ले लेगा । पहले पहल किसी विचारको निकालनेके लिए तबीयतपर दबाव डालना होगा, परन्तु ज्यों ज्यों उसके लिए उद्योग किया जायगा त्यों त्यों उसमें कठिनाई कम और आसानी अधिक होती जायगी और इसके विपरीत उत्तम विचारोंको मनमें स्थान देनेकी शक्ति बढ़ती जायगी। परिणाम यह होगा कि धीरे धीरे शराब पीने अथवा और किसी बुरे कामको करनेका विचार कम होता जायगा और यदि कभी ऐसा विचार आयगा भी, तो वह आसानीसे निकाल दिया जा सकेगा और एक दिन वह आयगा कि जब उस विचारका मनमें प्रवेश ही न होने पायगा ।

एक उदाहरण और भी दिया जाता है। मान लो कि एक आदमीका स्वभाव जरा चिड़चिड़ा है, अर्थात् उसे जल्दी गुस्सा आ जाता है। यदि कोई उसे कुछ कह देता है अथवा उसकी इच्छाके विरुद्ध कोई काम कर देता है, तो वह बिगड़ खड़ा होता है और नाराज भी होने लगता है। अब इस दशामें वह जितना अधिक बुरा मानेगा और जितना अधिक अपने क्रोधको जाहिर करेगा, उतना ही अधिक उसका क्रोध बढता जायगा। जरा जरा सी बातपर उसे क्रोध आने लगेगा और उसके लिए क्रोधका त्याग करना दिन, दिन कठिन होने लगेगा, यहाँ तक कि क्रोध, घृणा, शत्रुता और बदला लेनेकी इच्छा उसके स्वभाव हो जायँगे। प्रसन्नता—प्रफुल्लता सदाके लिए विदा हो जायगी और हरएकके साथ उसका चिड़चिड़ानेका व्यवहार हो जायगा। परन्तु यदि वह जिस समय क्रोध आवे उसी समय उसे दबा दे और अपने मनको किसी और विषयकी तरफ लगा दे, तो उसे प्रथम तो क्रोध आ ही नहीं सकता और यदि आयगा भी, तो शीघ्र ठंडा पड़ जायगा। यदि फिर कभी क्रोध आयगा और वह उसे शान्त करनेका प्रयत्न करेगा तो उसको पहलेसे ज्यादह आसानी होगी। इस तरह थोड़े दिनोंमें ही उसका क्रोध छूट जायगा। तब न कोई बात उसे भड़का सकेगी और न किसी भी बातसे उसे क्रोध आयगा। इसके विपरीत उसकी तबीयतमें क्षमा, शान्ति, दया और प्रेम पैदा हो जायँगे जिनका आज वह विचार भी नहीं कर सकता।

इसी प्रकार उदाहरणपर उदाहरण लिये जाओ। एक एक आदत, एक एक स्वभावको देखो। हर जगह इसी उपायको उपयोगी पाओगे। दूसरोंकी बुराई करना, उनके अवगुण देखना, ईर्ष्या, द्वेष, निर्दयता,

कायरता, और इनसे उल्टी तमाम आदतें इसी तरह विचारोंसे पैदा होती हैं। इसी तरह हमारे मनमें राग, द्वेष पैदा होता है। इसी प्रकार हमारी तबीयतमें हर्ष, विषाद, शोक, आनन्द, या खेद पैदा होता है। ऐसे ही हम स्वय अपने तथा दूसरोंके लिए आशा और प्रसन्नताके स्रोत हो सकते हैं और ऐसे ही उनके लिए निराशा और दु खके कारण वन सकते हैं।

मनुष्यके जीवनमें इससे ज्यादह सच्ची और कोई वात नहीं है कि हम जैसा बननेका विचार करते हैं वैसा ही वन जाते हैं। यह वात विल्कुल सच है और इसकी सचाईमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि आदमी जैसा विचार करता है, वैसा ही वन जाता है। उसका चरित्र आदतोंका समूह है। उसकी आदतें उसके कार्योंसे वनी हैं और उसका प्रत्येक कार्य विचारपूर्वक है, अर्थात् प्रत्येक कार्यके पूर्वमें उसके मनमें उस कार्यके करनेका विचार पैदा हुआ है। अतएव यह वात विल्कुल स्पष्ट है कि हमारे विचारोंसे ही हमारा चरित्र बनता है। विचार ही मूल कारण हैं।

विचारोंसे ही हम अभीष्टको प्राप्त कर सकते हैं और विचारोंसे ही ऊँचेसे ऊँचे पदपर पहुँच सकते हैं। केवल दो वातें जरूरी हैं। एक यह कि मनुष्यको अपना उद्देश्य और मनोरथ निश्चित कर लेना चाहिए, दूसरी यह कि सदा उनकी प्राप्तिके लिए उद्योग करते रहना चाहिए--चाहे उसमें कितनी ही कठिनाइयाँ सहनी पड़ें और कितनी ही आपत्तियोंका सामना करना पड़े। स्मरण रक्खो कि स्थिरप्रकृति और दृढचरित्र मनुष्य वही है जो अपने मनोरथकी सिद्धिमें भावी लाभके लिए वर्तमान सुखकी परवा नहीं करता, सदा उसको तिलां-

जलि देनेको तैयार रहता है। वह कठिनाइयाँ दूर करता हुआ और आपत्तियोंको सहता हुआ अपने उद्देश्यकी प्राप्तिमें लवलीन रहता है और एक दिन अवश्य सफलताको प्राप्त कर लेता है। उसकी मनोकामना पूरी हो जाती है और वह इच्छातीत हो जाता है।

हमारा जीवन केवल क्षणिक सुखोंके लिए नहीं है। हमारे जीवनका उद्देश्य केवल सांसारिक या शारीरिक सुखोंको प्राप्त करना नहीं है, किन्तु हमारा जीवन उच्चतम उद्देश्योंकी पूर्ति करने, श्रेष्ठतम चरित्रकी प्राप्ति करने और मनुष्य-जातिकी सर्वोत्तम सेवा करनेके लिए है। इसमें ही हमको सबसे अधिक आनन्द मिलेगा। क्योंकि वास्तवमें सच्चा आनन्द इसीमें है। जो कोई इस आनन्दको और किसी रीतिसे प्राप्त करना चाहता है, अथवा इसके लिए और किसी उपायका अवलंबन करना चाहता है, वह कदापि सफलता प्राप्त नहीं कर सकता, अर्थात् उसको सच्चा स्थायी आनन्द कभी नहीं मिल सकता।

प्रश्न यह नहीं है कि हमारे जीवनकी क्या दशा है? कैसी अवस्था है? किन्तु यह है कि हम उस दशाका—उस अवस्थाका—कैसे और क्योंकर सामना करते हैं? चाहे हमारे जीवनकी कैसी ही दशा हो, चाहे वह सर्वथा हमारे प्रतिकूल हो, परन्तु हमें कदापि उसकी शिकायत नहीं करनी चाहिए। शिकायतसे कुछ काम नहीं चलता। शिकायतसे उल्टा विषाद और उद्वेग पैदा होता है। विषादसे वह शक्ति जिससे हमारे जीवनमें एक नये प्रकारका जीवन पैदा होता है दुर्बल हो जाती है और सम्भव है कि वह सर्वथा नष्ट भी हो जाय। अतएव यदि हमारी अवस्था हमारे प्रतिकूल हो, तो हमें चाहिए कि हम उसे अपने अनुकूल बना लेवें और यदि हम अनुकूल नहीं बना सकते,

तो हमें स्वयं उसके अनुकूल हो जाना चाहिए। ऐसा करनेसे हमको कोई आपत्ति नहीं सता सकती और कोई घटना दुखी नहीं कर सकती।

प्रत्येक मनुष्यके जीवनमें ऐसी घटनायें नित्य होती रहती हैं जिनको वह अपने लिए बहुत ही बुरी समझता है। स्वयं मूल ग्रन्थकर्त्ता महाशय लिखते हैं कि "मेरे जीवनमें समय-समयपर ऐसी अनेक घटनायें हुईं जिनको मैं बहुत ही बुरी समझता था, जिनसे मुझे कभी कभी लज्जित और अपमानित भी होना पड़ा और पीड़ा—वेदनायें भी सहनी पड़ीं। परन्तु अब मुझे उनका लाभ मालूम होता है। अब मैं उनका अर्थ और उपयोग समझता हूँ। अब मैं उनको लाखों रुपयोंके बदलेमें भी भूलना पसन्द नहीं करता। उनसे मुझे एक बड़ी भारी शिक्षा मिली है और वह यह है कि चाहे आज मेरी कैसी ही दशा हो, चाहे कैसी ही दु खकी अवस्था हो और भविष्यत्में भी चाहे कैसी ही स्थिति हो, परन्तु मैं उसका सहर्ष स्वागत करूँगा और तनिक भी शोक या विषाद न करूँगा। मैं उसको यह विचार करके अपने लिए सर्वोत्तम और उपयोगी ही समझूँगा कि यद्यपि मैं इस समय यह नहीं जानता कि यह अवस्था क्यो है, इससे क्या लाभ है और इसका क्या परिणाम होगा, परन्तु एक समय आयगा जब मैं इसके रहस्यको जान सकूँगा और उस समय ईश्वरको धन्यवाद दिये बिना न रह सकूँगा।" इसमें सन्देह नहीं कि जिस समय कोई घटना होती है, उसी समय उसके लाभको समझना कठिन होता है और बादमें भी उसका भेद समझना आसान नहीं होता, परन्तु जहाँ तक बुद्धिमानों और दूरदर्शियोंने अवलोकन किया है, जो घटनायें आज सर्वथा विपरीत और प्रतिकूल मालूम होती हैं उनका फल भी एक न एक दिन

अच्छा ही हुआ है। गरज यह कि मनुष्यके जीवनमें ऐसी कोई क्रिया नहीं होती जो उसके लिए उपयोगी न हो और कोई बात ऐसी नहीं होती जो निरर्थक हो। प्राय हरएक आदमी अपनी हालतको, अपनी तकलीफको, सबसे ज्यादह खराब समझता है। प्रत्येक मनुष्य यही समझता है कि संसारमें मेरे समान कोई दुखी नहीं, मैं सबसे अधिक दुखी हूँ। जो आपत्ति मुझे सहनी पड़ती है वह शायद ही किसीको सहनी पड़ी हो। उसको इस बातका खयाल नहीं रहता कि हरएक आदमी अपनी अपनी तकलीफोंमें फँसा हुआ है। किसीको कोई तकलीफ है, किसीको कोई रंज है, किसीको कोई कष्ट है, किसीको कोई दु ख है। मेरी हालत भी उन जैसी ही है। जो दु ख मुझे उठाने पड़े हैं और जिनको मैं बहुत ही भारी समझता हूँ, वे ही दु ख मेरे सैकड़ों भाइयोंको उठाने पड़े हैं। बस, हम इसी बातको समझनेमें भूल करते हैं। हम अपने दु खोंको दु ख समझते हैं। उन्हींका हम अनुभव करते हैं। दूसरोंके दु खोंको देखते तक भी नहीं। इसी कारणसे हम अपने दु खोंको उनके दु खोंकी अपेक्षा अधिक समझते हैं। परन्तु असल बात यह है कि प्रत्येक मनुष्यकी अवस्था भिन्न है। अत एव प्रत्येक मनुष्यका चरित्र और व्यवहार भी भिन्न भिन्न होना आवश्यक है। प्रत्येक मनुष्यको स्वयं विचार करना चाहिए कि किन कारणोंसे मेरी दशा ऐसी खराब है और मैं ऐसी हीनावस्थामें हूँ। फिर उन कारणोंको दूर करने और उस शक्तिके बढ़ानेका उद्योग करना चाहिए जिससे अपनी दशा सुधरे और सुख प्राप्त हो। यह कार्य प्रत्येक मनुष्यको स्वयं करना चाहिए। इसमें दूसरेका कोई काम नहीं। हाँ, इतना हम अवश्य कर सकते हैं कि एक दूसरेको उन उपायों और नियमोंका

ज्ञान करा सकते हैं जो इस कार्यमें उपयोगी हैं—जिनसे यह काम बड़ी आसानीसे हो सकता है। नियमोंका पालन प्रत्येक मनुष्यका काम है। जब वह स्वय उन नियमोंका पालन करेगा तब ही उसे लाभ होगा। वैद्यका काम ओषधि बता देनेका है, ओषधि सेवन करना रोगीका काम है।

यदि हम अपने आपको किसी हालतमेंसे—जिसमें हम जानते-बूझते या भूलकर, इरादा करके या बिना इरादेके फँस गये हैं—निकालना चाहते हैं, तो इसका सबसे अच्छा उपाय यह है कि हम उन कारणोंपर विचार करें जिनसे ऐसी हालत हो गई है और फिर उस प्राकृतिक नियमको मालूम करें जिसपर उसका आधार है। जब यह नियम मालूम हो जाय तब हमको उसका विरोध या प्रतिकूलता नहीं करनी चाहिए, किन्तु उसके अनुकूल या सहकारी रहना चाहिए। यदि हम उसके अनुकूल कार्य करेंगे, तो वह हमारे लिए बड़ा उपयोगी और लाभदायक होगा और हमको हमारे अभीष्ट मनोरथ तक पहुँचा देगा, परन्तु यदि हम उसका विरोध करेंगे अथवा उसके अनुकूल न चलेंगे तो इसका परिणाम हमारे लिए बड़ा हानिकर होगा। वह हमारा सर्वनाश किये बिना न छोड़ेगा। प्राकृतिक नियम अटल है। वह अपनी चाल नहीं बदल सकता और हमारे विरोध या प्रतिकूलतासे रुक नहीं सकता। भावार्थ यह है कि यदि उसके अनुकूल चलोगे तो तुम्हारी सम्पूर्ण इच्छायें पूर्ण हो जायँगी, परन्तु यदि उससे प्रतिकूल रहोगे तो याद रक्खो, हानि और दु ख उठाओगे।

कुछ दिन हुए मैं एक औरतसे मिला। उसके पास पाँच छह एकड़ जमीन थी। उसके पतिका कुछ वर्ष पहले देहान्त हो गया

था। यद्यपि वह बड़ा नेक और मेहनती आदमी था, परन्तु उसमें एक बड़ा भारी अवगुण था। वह जो कुछ कमाता था सब शराबमें उड़ा देता था। जब वह मरा तब उसकी औरतके पास उस पाँच छह एकड़ जमीनका भी कर देनेको रुपया न था। उसको किसी प्रकारका भी कहींसे सहारा न था और निजका तथा पाँच छह बच्चोंका बोझ उसके सिरपर था, परन्तु ऐसी दशामें भी उसने साहस और धैर्यको नहीं छोड़ा। वह तनिक भी निराश न हुई। उसने वीरता और दृढ़तासे आपत्तियोंका सामना किया और इस बातका दृढ़ निश्चय रक्खा कि ऐसे अनेक उपाय हैं,—यद्यपि वे मुझे इस समय स्पष्टतया दृष्टिगोचर नहीं होते हैं–जिनसे मैं इन दु खोंसे मुक्त हो सकती हूँ। उसने शीघ्र ही अपने टूटे फूटे सामानको ठीक किया और एक बोर्डिंग हाऊसमें काम करना शुरू किया। वह कहती थी कि मैं ४ बजे उठती हूँ और रातको १० बजे तक काम करती रहती हूँ। जाड़ेके दिनोंमें जब लड़के चले जाते हैं, तब मैं आसपासके ग्रामोंमें दाईका काम करने लगती हूँ। इस प्रकार अब वह अपनी जमीनका कर भी देती है और उसके बच्चे स्कूलमें भी पढ़ते हैं। अब वे बच्चे बड़े हो गये हैं और कुछ न कुछ अपनी माताको सहायता भी पहुँचाते हैं। यह उस औरतने स्वयं अपने पुरुषार्थसे किया है। वह कदापि निराश या हतोत्साह नहीं हुई और उसने कभी भय या अरुचिको अपने हृदयमें स्थान नहीं दिया। न उसने कभी भाग्यको उलहना दिया और न कभी साहसको त्यागा, जो कुछ सामने आया सदा हर्षपूर्वक उसे सहन किया और जो कुछ मिला उसीपर संतोष किया। वह कहती थी कि "मुझे इस बातसे बड़ा हर्ष है कि मैं सदा कार्यतत्पर रही, और मेरी दशा चाहे

कितनी ही गिरी हुई हो, चाहे कितनी ही दु खमय हो, परन्तु मैं सदा ऐसे स्त्री पुरुषोंको देखती रही हूँ जिनकी दशा मुझसे भी गिरी हुई है और जिनकी मैं कुछ कुछ सहायता कर सकती हूँ। मुझे इससे बहुत सन्तोष होता है और मैं समझती हूँ कि ससारमें मैं ही सबसे अधिक दु खी नहीं हूँ, परन्तु बहुतसे मुझसे भी अधिक दु खी मौजूद हैं। मैं तो अब एक तरहसे सुखी हूँ। अब मुझे अपनी जमीनके कर चुकानेकी चिन्ता नहीं रही।" वास्तवमें अब वह औरत सुखी है। चरित्रकी दृढ़ता, स्वभावकी नम्रता, दूसरोंके प्रति प्रेम और मित्रता तथा सत्यकी सदा जय होती है। इस बातकी सम्यक् श्रद्धा और गुणोंके कारण वह स्त्री उन हजारो स्त्री-पुरुषोंसे श्रेष्ठ है जो बाह्यमें उससे अच्छी दशामें मालूम होते हैं। अब वे बातें जो बहुतोंका जी तोड़ देनेके लिए काफी थीं, उस स्त्रीके उद्योगसे उसके अनुकूल होकर उसके लिए उपयोगी हो गई हैं।

विचार करो कि यदि यह स्त्री ऐसी बुद्धिमती और दूरदर्शिनी न होती तो क्या परिणाम होता? किस प्रकार यह आपत्तियोंको सहन करती और किस तरह कठिनाइयोंका सामना करती? शान्ति उसकी तबीयतमेंसे जाती रहती, उत्साह उसका नष्ट हो जाता और भय और चिन्तासे वह सदैव ग्रसित रहती। अथवा वह उस ईश्वरीय नियम और प्राकृतिक सिद्धान्तके विरुद्ध चलती जिसके कारण उसकी यह दशा हुई। उसका जीवन बिल्कुल निरर्थक हो जाता और जिन मनुष्योंसे उसका काम पड़ता वे सब उससे घृणा करने लगते। अथवा वह यह विचार करती कि मेरे उद्योग और पुरुषार्थसे कुछ काम न चलेगा, किसी न किसीको अवश्य मेरी सहायता

करनी चाहिए और इस आपत्तिसे मुझे निकालना चाहिए। इस प्रकार कदापि उसकी इच्छा पूर्ण न होती, उल्टी उसकी आपत्ति दिन दिन बढ़ती जाती और वह उत्तरोत्तर अधिक अधिक कष्टोंका अनुभव करने लगती। कारण कि वह सदा इसी बातका विचार करती—ये ही विचार उसके मनमें घूमते रहते। न वह जमीनको रख सकती और न दूसरोंका कुछ उपकार कर सकती। वह न केवल अपने लिए किन्तु ससार भरके लिए दु ख और घृणाका कारण हो जाती।

अतएव किस मनुष्यकी कैसी दशा है और वह किस हालतमें है, इससे कुछ प्रयोजन नहीं है। प्रयोजन इससे है कि वह उस दशामें किस तरह रहता है। यदि वह दु खमें है तो उस दु खको किस तरह सहन करता है। यदि आपत्तिमें है तो किस तरह उस आपत्तिका सामना करता है। बस, इसीसे सब बातोंका पता लग जायगा। यदि हमको किसी समय अपनी दशा सबसे गिरी हुई और असह्य मालूम हो, तो हमको उनकी दशाका विचार करना चाहिए जिनकी दशा हमसे भी गिरी हुई है। जो हमसे धनमें, बलमें—सब बातोंमें कम हैं, ऐसे मनुष्योंका संसारमें अभाव नहीं। एकसे एक ऊँचा और एकसे एक नीचा है। जहाँ दृष्टि पसारकर देखोगे वहीं ऐसे उदाहरण मिलेंगे। इस विचारसे हमको कुछ शान्ति होगी और हमारा बोझ कम हो जायगा।

कहते हैं कि जब सिकन्दर बादशाह मरा तब उसकी माताको बहुत ही दु ख हुआ और किसी तरह भी उसका दु ख कम न हुआ। अन्तमें एक वैद्यने उससे कहा कि माता, मैं तेरे पुत्रको जीवित कर सकता हूँ यदि तू एक काम करे। माताने कहा, क्या? मैं पुत्रके लिए अपनी जान तक भी देनेको तैयार हूँ। वैद्यराजने कहा—माता, तू

स्वयं जाकर एक कटोराभर पानी मुझे उस घरसे ला दे जिसमें पहले कोई मरा न हो। वृद्धा माता घर-घर फिरी, परन्तु उसे कोई भी घर ऐसा न मिला जहाँ पहले कोई न मरा हो। बस, अब उसे धैर्य हो गया। अब वह भलीभाँति जान गई कि इस दुःखसे केवल मैं ही दुखी नहीं हूँ, किन्तु संसारके सभी मनुष्य दुखी हैं। मैं एक पुत्रके लिए रोती हूँ, औरोंके तो कई कई पुत्र मर गये हैं। इसी तरह और बातोंमें भी जब हम अपनेसे अधिक दुखी मनुष्योंको देखते हैं तब हमको कुछ शान्ति हो जाती है, उनसे सहानुभूति और अपनी दशापर संतोष होने लगता है।

हमारे प्रत्येक कार्यकी उन्नति या अवनति, सफलता या असफलता हमारे विचारोंपर निर्भर है। जिस प्रकारके हम विचार करते हैं, उसी प्रकारके हमारे कार्य होते हैं। विचारोंमें महान् बल है। वे अपने समान कार्य पैदा करनेकी शक्ति रखते हैं--चाहे हमको उनका ज्ञान हो या न हो। मनकी आकर्षण शक्तिका सिद्धान्त कि 'सजातीय सजातीयको उत्पन्न करता है और समान समानको अपनी ओर खींचता है' एक महान् विश्वव्यापी सिद्धान्त है, जो हमारे जीवनके प्रत्येक समयमें अपना काम किये जाता है। अतएव जो मनुष्य अपना उद्देश्य स्थिर करके उसकी ओर दृढ़तासे बढ़ता है, जो अपने उद्देश्यको सदा हृदयंगम रखता हुआ किसी प्रकारके भय या संदेहको अपने मनमें कभी स्थान नहीं देता और जो अपने सांसारिक कार्योंमें बिना किसी प्रकारकी शिकायतके अपने उद्देश्यकी पूर्तिमें तत्पर रहता है और सदा उसके लिए उद्योग किये जाता है, वह एक न एक दिन अवश्य अपने अभीष्टको प्राप्त कर लेता है।

कुछ मनुष्य ऐसे हैं कि जब वे विचारशक्ति (मनोबल) के इस सिद्धान्तको समझने लगते हैं और जब उनको यह ज्ञान होने लगता है कि हम अपनी आन्तरिक, आत्मिक और मानसिक शक्तियोंके बलसे अपने जीवनकी दशाको इच्छानुकूल बदल सकते हैं, तब वे अपने जोशके प्रारम्भमें ही यह समझने लगते हैं कि बस, इधर विचार किया, उधर स्वभाव बदल गया और एक नये साँचेमें ढल गया। परंतु यह काम कोई खेल तो है नहीं कि इधर कल ऐंठी और उधर आवाज होने लगी। शुरू शुरूमें जल्दी फल प्रकट नहीं होता। इससे उनकी आशायें मिटने लगती हैं। वे हतोत्साह हो जाते हैं और समझने लगते हैं कि यह सिद्धान्त ही कुछ कार्यकारी नहीं है। परन्तु यह उनकी भूल है। उनको स्मरण रखना चाहिए कि पुरानी आदतोंको छोड़ना और नई आदतोंका ग्रहण करना कुछ आसान नहीं है, ऐसे कामोंके लिए बहुत समयकी जरूरत है।

जैसा हम पहले कह आये हैं, जितना जितना हम किसी कामका विचार करेंगे—ज्यों ज्यों हम उसके लिए उद्योग करेंगे, त्यों त्यों वह काम आसान होता जायगा। पहले पहल काम ज्यादह होता नहीं दिखाई देता, परन्तु धीरे धीरे बार बारके अभ्याससे उस कामके करनेकी शक्ति बढ़ती जाती है। सिद्धान्त वही है कि जितना जितना अभ्यास किया जायगा उतनी ही शक्ति बढ़ती जायगी। यही सिद्धान्त हमारे जीवन तथा संसारके समस्त कार्योंमें कार्यकारी है। जिस कार्यको प्रारम्भ करो, उसमें पहले कठिनाइयाँ आती ही हैं। परन्तु धीरे धीरे सब दूर हो जाती हैं और कठिनसे कठिन काम भी आसान हो जाता है। जिस मनुष्यने कल गान विद्याको प्रारम्भ किया है, यदि आज उसे

सितार या हारमोनियम दे दिया जाय, तो वह कदापि अच्छी तरह नहीं बजा सकेगा। अब इससे उसे यह न समझ लेना चाहिए कि मैं बजा ही नहीं सकता, या मुझमें बजानेकी शक्ति ही नहीं है। शक्ति अवश्य है, पर बात केवल इतनी है कि अभी उसे बजानेका अभ्यास नहीं है। थोड़े दिनोंमें अभ्यास हो जायगा। बार बारके उद्योगसे बाजेपर उँगलियाँ ठीक ठीक पड़ने लगेंगी और उसका खयाल राग-पर अधिक जम जायगा और एक दिन वह आयगा कि वह एक अच्छा बजानेवाला हो जायगा। जो बालक अभी पहली कक्षामें पढ़ता है, यदि आप उससे कहें कि एक पत्र लिख दो, तो वह नहीं लिख सकेगा। परन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि वह पत्र लिख ही नहीं सकता, या उसमें पत्र लिखनेकी शक्ति या योग्यता ही नहीं है। नहीं ऐसा नहीं है। बात यह है कि अभी उसकी शक्ति व्यक्त नहीं हुई है। यदि वह बराबर पढ़ता रहा तो थोड़े दिनोंमें ही पत्र क्या बड़े बड़े महत्त्वपूर्ण लेख लिख सकेगा। माताके उदरसे कोई पढ़ा लिखा पैदा नहीं होता। जितने विद्वान् इस भूतलपर विद्यमान् हैं, उन सबोंने एक दिन किसी भाषाकी वर्ण-मालाका पहला अक्षर पढ़ा था और वही उन्हें कठिन मालूम हुआ था, परन्तु अभ्यास और उद्योगसे ही आज वे ऐसे विद्वान् हो गये हैं। ठीक यही दशा हमारे मनोबल और विचारबलकी है। बार बारके विचार करनेसे उसका बल बढ़ता है और उसमें एक ओर आकर्षित होनेकी शक्ति पैदा होती है जिससे अन्तमें ऐसे आश्चर्यकारी परिणाम होते हैं कि जो हमारे जीवन-मार्गको सर्वथा बदल दे सकते हैं।

चरित्र-गठनकी केवल जवानोंके लिए ही जरूरत नहीं है, किन्तु

बूढ़ोंके लिए भी है। बूढ़ों बूढ़ोंमें भी कितना अन्तर है? कितने ही मनुष्य बुढ़ापेमें प्रसन्नचित्त और आनंदित रहते हैं और कितने ही कर्कश और कटुस्वभाव हो जाते हैं। कितने ऐसे हैं कि वे जितने बूढ़े होते जाते हैं उतने ही उनके मित्र सम्बन्धी उनसे अधिक प्रेम करने लगते हैं और कितने ही ऐसे हैं कि ऐसी अवस्थामें अपने पुराने मिलने जुलनेवालों और मित्र सम्बन्धियोंको भी बेगाना कर लेते हैं। पहले प्रकारके मनुष्य प्रत्येक वस्तुमें आनंद अनुभव करते हैं, परंतु पिछले प्रकारके मनुष्योंको प्रत्येक वस्तु शून्य और जड़रूप मालूम होती है। पहले मनुष्य स्वयं भी प्रसन्न रहते हैं और अपने पास रहनेवाले मनुष्योंको भी प्रसन्न करते रहते हैं, परंतु पिछले मनुष्य स्वयं भी उदास रहते हैं और दूसरोंको भी उदास करते रहते हैं। न उनको किसीसे प्रीति होती है और न औरोंकी उनसे प्रीति होती है। अब प्रश्न यह है कि इस भिन्नताका कारण भी कुछ है? क्या यह केवल दैवयोगी घटना है? कदापि नहीं। हमारी सम्मतिमें तो मानव-जीवनमें ही क्या संसार और सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें भी दैव कोई वस्तु नहीं है। कार्य-कारणका सिद्धान्त अटल है। संसारमें कोई कार्य बिना कारणके नहीं होता, और कार्य सदा कारणके सदृश होता है। यद्यपि कार्य कारणका सम्बन्ध कभी कभी दृष्टिगोचर नहीं होता और उसीके कारण हम 'दैव' कहने लगते हैं, परंतु वास्तवमें प्रत्येक कार्यका कोई न कोई कारण अवश्य होता है। अस्तु। यदि यह भेद दैवी नहीं है, तो फिर इसका क्या कारण है कि बूढ़ों बूढ़ोंके स्वभावमें इतना अंतर है? कोई भय, चिन्ता, निर्मूल विचारों और कल्पनाओंका नाम भी नहीं जानता और किसीका जीवन इन्हीं बातोंके लिए अर्पण है। इसका कारण क्या है?

यह कि प्रत्येक मनुष्यके जीवनमें एक समय आता है (यद्यपि भिन्न भिन्न मनुष्योंमें वह भिन्न भिन्न होता है) जब कि उसकी जीवनपर्यन्तकी मानसिक अवस्थायें, स्वभाव और गुण अपने आपको चारों ओरसे एक बिंदुपर एकत्रित करने लगते हैं और तदनन्तर प्रकट होने लगते हैं। प्रबल विचार अपनेको कार्योंके रूपमें प्रकट करके मनुष्यकी उन प्रकृतियोंको—जो पहले बड़ी निर्बल और अव्यक्त थीं—अकस्मात् प्रबल रूपमें प्रकट कर देते हैं जिसमें एक नई रीतिका जीवन हो जाता है।

उदाहरणके लिए, एक बगीचेमें एक सेवका वृक्ष है। वर्षोंतक उसमें फल आते रहे। थोड़े दिन हुए कि उसमें कलम लगाई गई। इसके बाद वसन्तऋतु आई और निकल भी गई। वृक्षके उस भागमें भी कलियाँ खिलीं जिसमें कलम लगाई गई थी और उस भागमें भी जिसमें कलम नहीं लगाई थी। दोनों भागोंमें कलियाँ एक सी ही थीं। साधारण मनुष्यको उनमें कोई भेद नहीं मालूम होता था। अन्तमें फूलोंके स्थानमें फल आये और सारा वृक्ष नन्हें नन्हें सेवोंसे लद गया। इन फलोंमें अब बहुत ही कम अंतर मालूम होता है, स्थूल दृष्टिसे देखो तो कोई भेद नहीं जान पड़ता, परन्तु थोड़े ही दिनोंमें गुण, रूप, रस, गध और वर्णमें इतना स्थूल अंतर हो जायगा कि साधारणसे साधारण बुद्धिका मनुष्य भी पहिचान सकेगा। एक तरफके फल छोटे छोटे, कच्चे, कुछ कुछ पीलेपनको लिए हुए हरे रंगके, खट्टे होंगे, परन्तु दूसरी तरफके बड़े बड़े, गहरे लाल रंगके, मीठे, सुदर और सुगधित होंगे। पहले सेव दस पाँच रोजहीमें

झड़ जायँगे, परन्तु पिछले ऋतु भर रहेंगे और जब तक फिरसे कलि-यों न आयँगी उसी तरह फले रहेंगे।

प्राकृतिक बगीचेमें यह अंतर क्यों है? इसका कुछ न कुछ कारण होना चाहिए। कारण यह कि एक समय तक यद्यपि शुरूसे ही वृक्षके दोनों भागोंके फलोंकी बनावटका सामान कुछ कुछ एक दूसरेसे भिन्न था, तथापि उनमें कोई भेद मालूम नहीं होता था। अंतमें एक समय आया, जब उनके भिन्न भिन्न अंतरस्थ अव्यक्त गुण और स्वभाव ऐसी शीघ्रतासे व्यक्त होने लगे कि अधेसे अधा भी हाथमें लेकर उनकी पहिचान करने लगा। यद्यपि साधारण मनुष्योंको शुरूमें यह भेद मालूम नहीं होता था, परन्तु बागके मालीको शुरूसे ही मालूम था। उसने पहलेसे ही वृक्षके दोनों भागोंके गुण स्वभाव जान लिये थे। उसने ठीक समयपर थोड़ासा बाह्य असर डालकर उनके आभ्यन्त-रिक गुणों और अवगुणोंको प्रकट कर दिया।

ठीक यही हाल मनुष्योंका भी है। इस लिए जो मनुष्य अपनी वृद्धावस्थाको आनंदमय बनाना चाहते हैं, उनको युवावस्थामें ही इस ओर ध्यान देना चाहिए। उसी समयसे इसके लिए उन्हें उद्योग करना चाहिए। परन्तु जिन्होंने युवावस्थामें कुछ नहीं किया अथवा जो कुछ किया उसमें सफलता प्राप्त नहीं हुई, उन्हें उचित है कि अब उत्साहपूर्वक उद्योग करना शुरू कर दें। निराश न हों। कहावत है कि 'जब तक सास है तब तक आस है।' जब तक जीवन है, किसी वस्तुको सर्वथा खोई हुई न समझो। इसमें सन्देह नहीं कि जो मनुष्य अपने बुढ़ापेको विशेष रूपसे सुखी बनाना चाहता है उसको प्रारम्भसे ही उसके लिए तत्पर होना चाहिए। क्योंकि जितनी अवस्था

बढ़ती जाती है उतनी ही आदतें प्रबल होती जाती हैं और फिर उनको छोड़ना और दूसरी आदतोंका ग्रहण करना कठिन हो जाता है।

भय, चिन्ता, खेद, अशान्ति, स्वार्थ, कृपणता, नीचता, संकीर्णता, छिद्रान्वेषण, दूसरोंकी हँमें हाँ मिलाना और उनके कार्यों और विचारोंका दास होना, अपने सहधर्मियों और सहजातियोंके प्रति प्रेम और मित्रताका न होना, उनके कार्यों और विचारोंसे सहानुभूति न रखना, चरित्र-गठनकी प्रबल शक्तियोंका ज्ञान न होना, तथा परब्रह्म परमात्माके अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य आदि गुणों-पर श्रद्धा न होना, ये बात जिन लोगोंमें जड पकड़ जाती हैं, उनको बुढ़ापेमें निरानन्द और सविषाद बना देती हैं। दूसरोंको क्या स्वयं उनको अपना स्वभाव बड़ा ही घृणित मालूम होता है, परन्तु इसके विपरीत जहाँ अच्छी आदतें पैदा हो जाती हैं, वहाँ वे ईश्वरीय सहायता पाकर वृद्धावस्थाको ऐसा सुन्दर, मनोहर और आनन्दमय बना देती हैं कि स्वयं उनको भी अपना जीवन उत्तम और मनोहारी मालूम होता है और दूसरोंकी भी उनके प्रति प्रीति और सहानुभूति बढ़ती जाती है। ये दोनों अवस्थायें मनुष्यके केवल विचारों और कार्योंपर ही असर नहीं डालतीं किंतु उसकी आकृतिको भी बदल देतीं हैं। उसका रूप रंग सब कुछ बदल जाता है।

यदि प्रत्येक मनुष्य अपने जीवनमें थोड़ासा तत्त्वज्ञान भी प्राप्त करे, तो बड़ा अच्छा हो। वृद्धावस्थामें इससे बड़ा लाभ होगा और आपत्तिके कठिन समयमें इससे बड़ी शान्ति मिलेगी। हम कभी कभी ऐसे तात्त्विकोंका हास्य किया करते हैं, परन्तु हमारे लिए उचित यही है कि हम भी उनका अनुकरण करें, अन्यथा ऐसा समय आयगा जब

तत्त्वज्ञानके अभावसे हमको कष्ट उठाना पड़ेगा। यह सत्य है कि कभी कभी ऐसे मनुष्य रुपये पैसेके काममें अथवा सांसारिक उन्नतिमें कुछ पीछे रह जाते हैं, परन्तु स्मरण रहे कि उनके पास वह अमूल्य रत्न है जिसका जीवनके वास्तविक उद्देशपर प्रभाव पड़ता है और जिसकी आवश्यकता कभी न कभी राजासे लेकर रंक तक प्रत्येक व्यक्तिको पड़ती है। वे लोग जो एक समय उसके न होनेसे किसी किसी बातमें उन्नति कर गये थे आज उसके न होनेसे इतने चिन्तित हो रहे हैं कि अपनी सारी सम्पत्ति ही नहीं किन्तु सम्पूर्ण जगतका धन देकर भी उस वस्तुको प्राप्त नहीं कर सकते जिसपर वे एक समय हँसते थे।

हमको इन तमाम बातोंपर विचार करके अपना केन्द्र जल्द मालूम कर लेना चाहिए। यदि जल्द न हो सके तो देरमें ही सही, परन्तु मालूम अवश्य कर लेना चाहिए—चाहे देर, चाहे सबेर।

जब तक हम जीवित हैं तब तक एक अत्यन्त आवश्यक बात यह है कि हम सांसारिक कार्योंमें अपना पार्ट (हिस्सा) बड़ी वीरता और उत्तमतासे करते रहें और उसकी सदा बदलती रहनेवाली अवस्थाओंमें अपना प्रेम और उत्साह बराबर बनाये रक्खें, अर्थात् अपने आपको इस संसारकी परिवर्तनशील घटनाओं और अवस्थाओंके अनुकूल रक्खें। नहरका पानी मीठा और साफ तब रहता है जब वायु सदा उसपर चलती रहे और उसको बराबर चलाती रहे अथवा उसका पानी स्वयं आगे बढ़ता रहे। अन्यथा थोड़े ही दिनोंमें पानीपर काई आ जायगी और उसमेंसे दुर्गंधि आने लगेगी। यदि हमारे मित्र-

सम्बन्धी हमसे प्रेम नहीं करते, तो यह हमारा अपना दोष है। हमारे स्वभावमें ही कोई दूषण है। हमारा कर्तव्य है कि हम खोज करके देखें कि क्या दूषण है। फिर उसका दूर करनेका उद्योग करें। इसमें किसी अवस्था विशेषकी जरूरत नहीं है। युवा, वृद्ध, प्रत्येक इसे कर सकता है और अपनेको दूसरोंका प्रेमपात्र बना सकता है। बूढ़े लोग प्राय इसके समझनेमें भूल करते हैं। वे समझते हैं कि यह जवानोंका काम है कि हमारा आदर सत्कार करें और हमसे प्रेम और सहानुभूति रक्खें। हमको स्वयं ऐसा कुछ नहीं करना है। हमको जरूरत नहीं कि हम भी दूसरोंसे प्रेम और प्रीतिका व्यवहार रक्खें। यह केवल दूसरोंका काम है। आदर सत्कार करना तो सम्भव है, परन्तु प्रेम और प्रीति एकतरफा नहीं हो सकती। चाहे बूढ़ा हो या जवान, ताली एक हाथसे नहीं बज सकती। बूढ़ोंका भी यह कर्तव्य है कि वे जवानोंकी अवस्थापर विचार करें और उनसे प्रेम करना सीखें। परस्परताका सिद्धान्त सबपर घटित होना चाहिए, चाहे बूढ़े हों चाहे जवान। यदि कोई इस सिद्धान्तकी अवज्ञा करेगा तो परिणाम यही होगा कि उसका सर्वनाश हो जायगा, चाहे वह किसी ही अवस्थाका हो।

हमारा जीवन एक महान् लीलामय नाटक है जिसमें हर्ष विषाद, शोक आह्लाद, धूप छाया, सर्दी गर्मी, सब मिले हुए हैं और हमको सबमें योग देना पड़ता है। हमारा कर्तव्य है कि हम हर एक कामको चाहे कुछ हो और कभी हो बड़ी वीरता और उत्तमतासे करें। कोई कारण नहीं कि कुछ तो प्रसन्नतासे करें और कुछ अप्रसन्नतासे। प्रत्येक दशामें समयके अनुकूल प्रवृत्ति करें, परन्तु हृदयपर इसका

तत्त्वज्ञानके अभावसे हमको कष्ट उठाना पड़ेगा। यह सत्य है कि कभी कभी ऐसे मनुष्य रुपये पैसेके काममें अथवा सांसारिक उन्नतिमें कुछ पीछे रह जाते हैं, परन्तु स्मरण रहे कि उनके पास वह अमूल्य रत्न है जिसका जीवनके वास्तविक उद्देशपर प्रभाव पड़ता है और जिसकी आवश्यकता कभी न कभी राजासे लेकर रंक तक प्रत्येक व्यक्तिको पड़ती है। वे लोग जो एक समय उसके न होनेसे किसी किसी बातमें उन्नति कर गये थे आज उसके न होनेसे इतने चिन्तित हो रहे हैं कि अपनी सारी सम्पत्ति ही नहीं किन्तु सम्पूर्ण जगतका धन देकर भी उस वस्तुको प्राप्त नहीं कर सकते जिसपर वे एक समय हँसते थे।

हमको इन तमाम बातोंपर विचार करके अपना केन्द्र जल्द मालूम कर लेना चाहिए। यदि जल्द न हो सके तो देरमें ही सही, परन्तु मालूम अवश्य कर लेना चाहिए—चाहे देर, चाहे सबेर।

जब तक हम जीवित हैं तब तक एक अत्यन्त आवश्यक बात यह है कि हम सांसारिक कार्योंमें अपना पार्ट (हिस्सा) बड़ी वीरता और उत्तमतासे करते रहें और उसकी सदा बदलनी रहनेवाली अवस्थाओंमें अपना प्रेम और उत्साह बराबर बनाये रक्खें, अर्थात् अपने आपको इस संसारकी परिवर्तनशील घटनाओं और अवस्थाओंके अनुकूल रक्खें। नहरका पानी मीठा और साफ तब रहता है * जब वायु सदा उसपर चलती रहे और उसको बराबर चलाती रहे अथवा उसका पानी स्वयं आगे बढ़ता रहे। अन्यथा थोड़े ही दिनोंमें पानीपर काई आ जायगी और उसमेंसे दुर्गन्धि आने लगेगी। यदि हमारे मित्र-

सम्बन्धी हमसे प्रेम नहीं करते, तो यह हमारा अपना दोष है। हमारे स्वभावमें ही कोई दूषण है। हमारा कर्तव्य है कि हम खोज करके देखें कि क्या दूषण है। फिर उसका दूर करनेका उद्योग करें। इसमें किसी अवस्था विशेषकी जरूरत नहीं है। युवा, वृद्ध, प्रत्येक इसे कर सकता है और अपनेको दूसरोंका प्रेमपात्र बना सकता है। बूढ़े लोग प्राय इसके समझनेमें भूल करते हैं। वे समझते हैं कि यह जवानोंका काम है कि हमारा आदर सत्कार करें और हमसे प्रेम और सहानुभूति रक्खें। हमको स्वय ऐसा कुछ नहीं करना है। हमको जरूरत नहीं कि हम भी दूसरोंसे प्रेम और प्रीतिका व्यवहार रक्खें। यह केवल दूसरोंका काम है। आदर सत्कार करना तो सम्भव है, परन्तु प्रेम और प्रीति एकतरफा नहीं हो सकती। चाहे बूढ़ा हो या जवान, ताली एक हाथसे नहीं बज सकती। बूढ़ोंका भी यह कर्तव्य है कि वे जवानोंकी अवस्थापर विचार करें और उनसे प्रेम करना सीखें। परस्परताका सिद्धान्त सबपर घटित होना चाहिए, चाहे बूढ़े हों चाहे जवान। यदि कोई इस सिद्धान्तकी अवज्ञा करेगा तो परिणाम यही होगा कि उसका सर्वनाश हो जायगा, चाहे वह किसी ही अवस्थाका हो।

हमारा जीवन एक महान् लीलामय नाटक है जिसमें हर्ष विषाद, शोक आह्लाद, धूप छाया, सर्दी गर्मी, सब मिले हुए हैं और हमको सबमें योग देना पड़ता है। हमारा कर्तव्य है कि हम हर एक कामको चाहे कुछ हो और कभी हो बड़ी वीरता और उत्तमतासे करें। कोई कारण नहीं कि कुछ तो प्रसन्नतासे करें और कुछ अप्रसन्नतासे। प्रत्येक दशामें समयके अनुकूल प्रवृत्ति करें, परन्तु हृदयपर इसका

कोई असर न होने दें। हृदयमें सदैव अपने उद्देश्यपर दृष्टि रक्खें और संसारके बदलते हुए रंगोंसे उसपर कालिमा न लगने दें। जैसे एक 'स्टेज-एक्टर' या नाटक-पात्रको इससे कुछ मतलब नहीं कि उसका पार्ट हर्षोत्पादक है या शोकप्रद, राजाका है या रंकका, छोटा है या बड़ा, अच्छा है या बुरा, इसी तरह हमको भी संसारकी घटनाओंमें चाहे वे अच्छी हों या बुरीं, समरूप रहना चाहिए। अच्छीसे हर्ष न करें और बुरीसे शोक न करें, किन्तु हर एक बातको समान भावसे करें। यदि हमको कोई उच्च पद मिल जाय तो उसका अभिमान न करें और यदि किसी नीचपदपर उतार दिये जायँ, तो कोई विषाद न करें, प्रत्येक दशामें समभाव और समरूप रहें। इसके अतिरिक्त अच्छे खेलमें प्रवेश और निष्क्रतिका भी विचार होता है। जीवनकी रंगभूमिमें प्रवेश तो प्रायः अपने अधिकारसे बाहर होता है, परन्तु रंगभूमिमें किस प्रकार अपना पार्ट करना चाहिए तथा वहाँसे किस तरह निकलना चाहिए, यह हमारे हाथमें होता है और इस अधिकारको कोई व्यक्ति या कोई शक्ति हमसे छीन नहीं सकती। इसीपर हमारे कामकी अच्छाई बुराई निर्भर है और इसको हम जित ना चाहें सुंदर और यशस्कर बना सकते हैं। हमारे जीवनकी वर्तमान स्थिति चाहे कितनी ही नीच और पतित क्यों न हो, परन्तु यदि हम अपना पार्ट अच्छी तरह उत्साहके साथ करें, तो हमारा इस रंगभूमिसे बाहर निकलना अर्थात् हमारी मृत्यु बड़ी ही प्रशंसनीय और आदरणीय होगी।

मेरे खयालमें हम इस संसारमें इस लिए आये हैं कि अपने अनुभवसे यह मालूम करें कि शुद्ध आत्मा क्या वस्तु है और इसकी क्या

शक्ति है। आत्माकी वास्तविक शक्तिको जानना ही मानों परमात्माकी शक्तिको जानना है। यही हमारा अभीष्ट और यही हमारा उद्देश है। जितना हम अपने समयको आनन्दसे व्यय करते हैं और जीवनकी बदलती हुई अवस्थाओंमें समान भावसे प्रवृत्त होते हैं, उतना ही हम अपने उद्देश और मनोरथमें सफल होते हैं। अतएव हमको जीवन-की प्रत्येक अवस्थामें धीर-वीर रहना चाहिए, चाहे वह अवस्था अच्छी हो चाहे बुरी, चाहे नीची हो चाहें ऊँची। जिन कार्मोको करनेकी हम शक्ति रखते हैं उनको यथासम्भव अच्छी तरह करना चाहिए और जो बातें हमारी शक्तिसे बाहर हैं उनमें व्यर्थ न पड़ना चाहिए। सर्व-शक्तिमान् ज्ञाता दृष्टा परमात्मा इन बातोंको स्वयं ही देख रहा है, अत-एव हमें इनके विषयमें कोई भय या चिन्ता न करनी चाहिए और न कभी इनका विचार करना चाहिए।

जिन बातो और कार्योंसे हमारा सम्बन्ध है, उनको सर्वोत्तम रीतिसे करना, अपने मार्गानुगामी बन्धुओंकी यथाशक्ति सहायता करना, दूस-रोंकी त्रुटियों और कमियोंको दूर करके तथा उन्हें कुमार्गसे हटा करके सत्य मार्गपर लाना जिससे वे पापमय जीवन व्यतीत करनेके स्थानमें संसारमें धार्मिक प्रशस्य जीवन व्यतीत करें, तथा अपने स्वभावको सदा सरल, शुद्ध और विनीत रखना जिससे ईश्वरीय शक्तिका विकास हो सके, अपनेको सदा उत्तम कार्योंके लिए तैयार रखना, सबसे प्रेम और सहानुभूति रखना, और किसीसे भी नहीं डरना, परन्तु पापसे सदा भयभीत रहना, समस्त पदार्थोंके उत्तम गुणोंको देखना और उनके प्रकाशकी आशा करना, इन सब बातोंसे जीवन बड़ा ही प्रशस्य और आनन्दमय होगा और फिर हमको किसी भी चीजसे डरनेकी

जरूरत नहीं रहेगी—न जीवनसे, न मृत्युसे। मृत्यु हमारे स्थायी जीवनका द्वार है। अर्थात् इस स्थूल पौद्गलिक शरीरके विनाशसे ही मोक्ष प्राप्त होता है, जहाँ आत्मा शुद्धतम अवस्थाको प्राप्त करके अनन्त सुखका अनुभव करता है। फिर उसके बाद कोई बंधन नहीं। न जन्म मरण है, न दुःख-व्याधि है। अतएव हमें मृत्युसे कदापि न डरना चाहिए, किन्तु सदैव मृत्युका हृदयसे स्वागत करना चाहिए और अपनेको मृत्युके लिए तैयार रखना चाहिए। परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि हम ऐसा जीवन व्यतीत करें कि जिससे जन्म-मरणका बंधन एक बारगी टूट जाय। इसमें संदेह नहीं कि यह एक महान् कठिन कार्य है। इसके लिए अनेक प्रबल शत्रुओंसे युद्ध करना होगा, घोर परीषह सहनी होगी, कठिन व्रत धारण करने होंगे, इंद्रियोंका दमन करना होगा और क्रोधादि विकारोंको शमन करना होगा, परन्तु लाभ भी इससे अनंत और अपार होगा।

इसमें तनिक भी संशय या विवाद नहीं है कि हमारे जीवनका सम्पूर्ण आचार व्यवहार हमारी आन्तरिक दशापर निर्भर है। जीवनका स्रोत ही हमारे अंतरगमें है। अतएव हमको अपनी अन्तरिक दशापर अधिकतर विचार करना उचित है। हमको चाहिए कि प्रतिदिन थोड़ासा समय शान्तिके साथ एकान्तमें इस विषयपर विचार करनेके लिए नियुक्त करें। इस समय अपने चित्तको अशुभ योगोंसे रोककर शांत भाव धारणकर अपनी आत्माका किंचित् चिन्तवन करें। निश्चयसे यह हमारे लिए बड़ा ही उपयोगी और लाभदायक होगा। क्योंकि कई कारणोंसे इसकी आवश्यकता है। प्रथम तो इससे यह लाभ होगा कि हम अपने हृदय और अपने जीवनमेंसे बुराईके बीज निकाल सकेंगे।

दूसरे यह लाभ होगा कि हम अपने जीवनके उद्देश्य उन्नतर बना सकेंगे। तीसरे यह लाभ होगा कि हम उन वार्तोको स्पष्ट रूपसे देख सकेंगे जिनपर हम अपने विचारोंको जमाना चाहते हैं। चौथे यह लाभ होगा कि हम यह जान सकेंगे कि हमारे आत्मा और परमात्मामें क्या भेद है और उनमें क्या सम्बन्ध है। अतएव उसकी भक्तिमें अधिक लीन हो सकेंगे। पाँचवें यह लाभ होगा कि हम अपने दैनिक सासारिक प्रपंचोंमें यह याद रख सकेंगे कि वह सर्वशक्तिमान् अनत ज्ञान अनन्त दर्शनसयुक्त परमात्मा, जो जगद्गुरु है, हमारे जीवनका मूल और हमारी सम्पूर्ण शक्तियोंका स्रोत है और उससे पृथक् न हममें जीवन है और न शक्ति है। इसी बातको अच्छी तरह समझ लेना और सदा इसके अनुसार चलना मानों ईश्वरको प्राप्त कर लेना है। इसीका नाम ईश्वर-दर्शन, सत्यार्थ भक्ति और शुद्ध उपासना है। ईश्वर हमारे घटमें विराजमान है। हमसे पृथक् नहीं है। इस विचारके परिपक्व हो जानेसे हमारे हृदयमें ईश्वरीय ज्ञानका प्रकाश होने लगता है और जितना ही यह प्रकाश बढ़ता जाता है उतना ही हमारा ज्ञान, अनुभव और बल बढ़ता जाता है। वास्तवमें आत्मामें परमात्माका बोध होना ही समस्त मतों और धर्मोंका सार है। इससे हमारा प्रत्येक कार्य धर्मका एक अग बन जाता है और हमारा उठना बैठना, चलना फिरना, खाना पीना भी दर्शन, पूजा और व्रत उपवासके सदृश हो जाता है। इसमें कुछ सन्देह नहीं। जो धर्म मनुष्यकी प्रत्येक क्रियापर घटित नहीं होता, जिस धर्ममें प्रत्येक कार्यसे पुण्य-पापका बंध नहीं होता, वह नाम मात्रका धर्म है, वास्तवमें धर्म नहीं है। ससार भरके अवतारों, महात्माओं, धर्मोपदेशकों और सिद्धान्तनेत्ताओंने चाहे वे किसी युगमें हुए हों और

किसी देशमें हुए हों, इस बातका एक स्वरसे समर्थन किया है। चाहे और कितनी ही बातोंमें उनमें अन्तर हो, परन्तु यह सिद्धान्त सर्वमान्य है।

महात्मा ईसाका यह कथन अक्षर अक्षर सत्य है कि जब तक तुम छोटे निष्पाप बालकोंके सदृश न हो जाओ, तब तक तुम ईश्वरीय राज्यमें प्रवेश नहीं पा सकते। जैसे छोटे बालकोंकी पापमें प्रवृति नहीं होती, उनमें क्रोध, मान, माया, लोभकी तीव्रता नहीं होती, वे पीतल और सोनेको बराबर समझते हैं, उसी तरह तुमको भी उचित है कि अपनी कषायोंको मंद करो, हृदयको शुद्ध करो और बुरी वासनाओंका दमन करो। सदैव परमात्माका स्मरण करो और अपने आत्माको परमात्मा बनानेका उद्योग करो। ऐसा करनेसे तुमको ईश्वरीय राज्य अर्थात् मोक्ष मिल सकता है।

आजकल प्राय इस विषयकी ओर लोगोंका बहुत कम लक्ष्य है। वे रात दिन सांसारिक कार्य-व्यवहारमें ऐसे लगे रहते हैं कि आत्मिक उन्नतिका विचार तक भी नहीं करते। इसी कारणसे लोग निन्यश जड़वादी नास्तिक होते जाते हैं। आत्मा परमात्मा शब्दोंसे ही उन्हें घृणा हो जाती है। यह बड़ा भारी दोष है। इसका परिणाम बड़ा भयंकर होता है। ऐसे मनुष्योंको सांसारिक विषयोंमें भी प्राय सफलता नहीं होती, कारण कि उनके जीवनका कोई उद्देश नहीं होता, और इस कारणसे उन्हें कभी संतोष या तृप्ति नहीं होती। इससे हमारा यह तात्पर्य नहीं कि सांसारिक कार्य-व्यवहारको ही छोड़ दिया जाय और सिर मुँड़ाकर भगवें वस्त्र धारण कर लिये जायँ, अथवा घर छोड़कर जंगलमें वास किया जाय। आज कल हम लोगोंकी शक्तियाँ ऐसी नहीं हैं कि रातदिन ध्यान आदि कर सकें। इसके

अतिरिक्त जब तक गृहस्थीमें रहकर नियमानुसार क्रमबद्ध उन्नति न की जाय, तब तक यह सम्भव भी नहीं। आजकल जितने भगवें वस्त्रधारी अपनेको साधु महात्मा, नियमी संयमी कहते हैं, वे प्राय सब बहुरूपिये हैं, अतएव हमको कोई आवश्यकता संसार छोड़नेकी नहीं है। हमारा अभिप्राय यह है कि हम प्रथम विचार करें कि हम कौन हैं, कहाँसे आये हैं और क्यों आये हैं। तदनन्तर अपने जीवनका उद्देश्य स्थिर करें, अर्थात् इस बातका निश्चय करें कि हम अपने आपको क्या और कैसा बनाना चाहते हैं। बस, फिर चाहे कोई काम करें, सदैव उस उद्देश्यको अपनी दृष्टिके सामने रक्खें। ऐसा करनेसे हमको प्रत्येक कार्यमें सफलता होगी और हम बहुत जल्द अपनी मनोकामनाको पूर्ण कर लेंगे।

अभिप्राय यह है कि प्रत्येक दशामें और प्रत्येक कार्यमें अधिकार हमारे ही हाथमें है। हम जिस ओर चाहें बढ़ें और जहाँ तक चाहें उन्नति करें। गुणप्राप्ति, आत्मानुभव, ईश्वर-दर्शन, चरित्र-गठन आदि सम्पूर्ण बातें हमारे अधीन हैं। हम अपने जीवनके स्वामी हैं और पूर्ण अधिकारी हैं। चाहे इसे ऊँचे दरजेपर पहुँचा दें, चाहे नीचे गिरा दें। मनुष्य जिस वस्तुके लिए उद्योग करता है वह अवश्य उसको मिल जाती है। संसारमें ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं जिसके लिए हम शुद्ध हृदयसे इच्छा करें, पूर्ण रूपसे उसकी प्राप्तिके लिए उद्योग करें और वह न मिले। मनुष्य जितनी उन्नति करता जाता है, और ज्यों ज्यों अपने अभीष्टके निकट पहुँचता जाता है उसकी शक्ति बढ़ती जाती है और निकटवर्ती मनुष्योंपर उसका प्रभाव अधिक होता जाता है। निर्बल दु खी मनुष्योंको उसे देखकर धीरज बँध जाता है और उसका

उत्साह बढ़ जाता है, दूसरे मनुष्य उसका सहारा लेते हैं और उसकी देखादेखी उसी मार्गपर चलनेकी इच्छा करते हैं। जिन मनुष्योंके विचार और उद्देश्य संकुचित हैं, वे उसका अनुकरण करके अपने उद्देश्य और विचारोंको उच्च और उदार बना लेते हैं। इस प्रकार यह मनुष्य स्वयमेव सत्यमार्गका प्रदर्शक हो जाता है। तनिक आगे बढ़कर उसे ज्ञात होगा कि वह अनेक निर्बल मनुष्योंको केवल अपने मानसिक विचारोंसे उत्साहित करके प्रबल बना सकता है और अनेक असहाय मनुष्योंको केवल अपने मनोबलका अवलम्बन देखकर सहायता पहुँचा सकता है। यह मानसिक उपदेश इतना महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली होता है कि यदि इसे पूर्ण रीतिसे समझ कर इसका सदुपयोग किया जाय तो इससे अपरिमित लाभ हो सकता है। सहस्रों व्याख्यानोंका भी इतना प्रभाव नहीं पड़ सकता।

जो मनुष्य प्रति दिन थोड़ासा समय एकान्तमें आत्म चिन्तनमें व्यय करता है और अपने उद्देश्यपर दृष्टि रखकर अपने और परमात्माके सम्बन्धको पहिचानता है वह मनुष्य सांसारिक कार्योंके लिए भी बड़ा योग्य और चतुर है। वही मनुष्य अपनी बुद्धि और चतुराईसे कठि-नसे कठिन कार्योंको भी भली भाँति कर सकता है। वह वर्षोंके लिए नहीं बनाता किन्तु शताब्दियोंके लिए बनाता है। क्योंकि भलाई और सचाईका असर वर्षोंसे नहीं मिटता। वह नियत समयके लिए ही काम नहीं करता, किन्तु अनंत कालके लिए तैयारी करता है। क्योंकि *जब मृत्यु आएगी, उस समय इन्द्रिय-दमन, चित्त निरोध*, आत्म-निर्भरता और ईश्वरानुभव, यही वस्तुयें उसके साथ जायँगी। क्योंकि इन्हीं वस्तुओंकी उसके पास बहुलता है। उसको मृत्युसे कुछ भय या

शंका नहीं । क्योंकि वह जानता है, समझता है और उसे श्रद्धा है कि परमात्मा मेरी रक्षा करनेके लिए तैयार है। वह निडर जहाँ चाहे जाता है। क्योंकि वह जानता है कि मैं जहाँ जाऊँगा सर्वज्ञदेव मेरी रक्षा करेंगे और कदापि मुझे अंधकूपमें न छोड़ेंगे, किन्तु सदैव मुझे लिये जायँगे यहाँ तक कि अंतमें मैं उस अनंत अक्षय स्थानपर पहुँच जाऊँगा जहाँसे फिर कभी वापिस न आऊँगा और जहाँ अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञानका धारी हो जाऊँगा। उसी स्थानका नाम मोक्ष है।
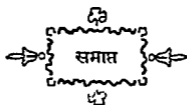
सदाचार सिखानेवाली पुस्तकें।

विद्यार्थियों और युवाओंके लिए।

अच्छी आदतें डालनेकी शिक्षा	मू० ≡)
चरित्रगठन और मनोबल	≡)
पिताके उपदेश	=)
विद्यार्थी-जीवनका उद्देश्य	-)॥
युवाओंको उपदेश	॥=)
अभ्युदय और स्वावलम्बन	१=)
सफलता और उसकी साधनाके उपाय	॥।)
सदाचारी बालक (गल्प)	=)॥
श्रमण नारद (गल्प)	=)
जीवन-निर्वाह	१)
शान्ति-वैभव	।-)
आत्मोद्धार (जीवनचरित)	१।)
जॉन स्टुअर्ट मिल (,,) ..	॥=)
आनन्दकी पगडंडियाँ	१॥)
नीति-विज्ञान ..	२।)
मानव-जीवन	१॥)
सामर्थ्य, समृद्धि और शान्ति ..	१॥)
बच्चोंके सुधारनेके उपाय	॥=)
मानसिक शक्तियोंके बढ़ानेके उपाय ..	≡)
स्वावलम्बन (सेल्फ हेल्प) ..	१॥)
संजीवन सन्देश (टी० एल० वास्वानी)	॥=)
कठिनाईमें विद्याभ्यास	॥≡)

लोक-रहस्य

स्वर्गीय बाबू—

वकिमचन्द्र चटर्जी

लोक-रहस्य

स्व० बा० बकिमचन्द्र चटर्जी

— के —

बगला "लोक रहस्य" का

हिन्दी अनुवाद

प्रकाशक—

हिन्दी पुस्तक एजेसी,

२०३, हरिसन रोड, कलकत्ता ।

ब्राच—ज्ञानवापी, काशी ।

चतुर्थवार] होली सं० १९८९ [मूल्य ॥=)

विषय-सूची

वक्तव्य.

यङ्गभाषामें व्यङ्ग और हास्यरसकी पुस्तकोंमें लोक रहस्यका स्थान बहुत ऊंचा है। मार्मिकता इस पुस्तकी जान है, खुली बातका इतना असर नहीं होता, जितना भेदभरी बातोंका। इस पुस्तकमें कोई बात बिल्कुल खोलकर नहीं कही गयी है, किन्तु गुप्त रीतिसे ऐसी चोट की गयी है कि पढ़कर मर्मज्ञ पाठकोंके हृदयमें गुदगुदी होने लगती है। इस विषयमें बङ्किम बाबू अपने जमानेमें अपना सानी नहीं रखते थे। प्रकट रूपसे कोई बात कहना आसान है, लेकिन मजाकमें मार्केकी बात कहना और मनमानी रीतिसे घुमा फिराकर कहना सहज साध्य कार्य नहीं है।

हर्षकी बात है कि हिन्दीकी गोद ऐसे सज्जनोंसे बिल्कुल सूनी नहीं है। स्वर्गीय पं० बालकृष्ण भट्ट इस कलामें पण्डित थे, स्व० बाबू बालमुकुन्द गुप्त इन बातोंके गुरु थे और वर्त्तमान लेखकोंमें श्री. पण्डित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी हिन्दी संसारमें सरस और मार्मिक रचनाके लिये प्रसिद्ध हैं। पण्डित बद्रीनाथ भट्ट और पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी भी समय समयपर हिन्दीको ऐसी रचनाओंसे अलंकृत करते रहते हैं। गजपुरीजीने पिछले दिनों प्रतापमें पटवारियोंपर एक ऐसा ही हास्यरसपूर्ण प्रबन्ध लिखा था, जिसे पढ़कर बङ्किमबाबूके अङ्गरेजस्तोत्रकी याद आती थी। यदि ये सज्जन बराबर हिन्दीमें इस तरहके लेख लिखते रहें, तो हिन्दीमें भी लोक रहस्य सरीखी पुस्तकें प्रस्तुत हो सकती हैं।

हम पं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदीके बड़े कृतज्ञ हैं, उन्होंने इस अनुवादमें बहुत अधिक सहायता दी है। आशा है आप इसे पढ़ परम पुलकित होंगे।

लोक-रहस्य

अंगरेज स्तोत्र

(महाभारतसे)

हे अगरेज ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हू । १

तुम अनेक गुणोंसे विभूषित, सुन्दरकान्तिविशिष्ट और विपुल सम्पदसम्पन्न हो, अतएव हे अगरेज ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हू । २

तुम हर्ता हो शत्रुओंके, तुम कर्ता हो आइन कानूनके, तुम विधाता हो नौकरी चाकरीके, अतएव हे अगरेज ! मैं तुम्हें नमस्कार करता हू । ३

तुम समरमें दिव्यास्त्रधारी, शिकारमें बल्लमधारी, विचारालयमें आध इञ्च मोटा बेतधारी और भोजनके समय काटा चम्मचधारी हो, इसलिये हे अगरेज । मैं तुम्हें दण्डवत् करता हू । ४

तुम एक रूपसे राजपुरीमें रहकर राज्य करते हो, दूसरे रूपसे हाट बाजारमें व्यापार करते हो, तीसरे रूपसे आसाममें चायकी खेती करते हो , अतएव हे त्रिमूर्त्ते ! मै तुम्हें प्रणाम करता हू । ५

तुम्हारा सत्वगुण तुम्हारे रचे ग्रन्थोंमें प्रकाशित है, रजोगुण तुम्हारे किये युद्धोंमें प्रकट है, तुम्हारा तमोगुण तुम्हारे लिखे भारतीय समाचारपत्रोंमें प्रकाशित है । अतएव हे त्रिगुणात्मक ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हू । ६

तुम विद्यमान हो, इसीलिये तुम सत् हो, तुम्हारे शत्रु रणक्षेत्रमें चित हैं, तुम उम्मेदवारोंके आनन्द हो ; अतएव हे सच्चिदानन्द ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं । ७

तुम ब्रह्मा हो, क्योंकि प्रजापति हो ; तुम विष्णु हो, क्योंकि लक्ष्मी तुम्हींपर कृपा करती हैं और तुम महादेव हो, क्योंकि तुम्हारी घरवाली गोरी है । अतएव हे अंगरेज ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं । ८

तुम इन्द्र हो, तोप तुम्हारा वज्र है, तुम चन्द्र हो, इनकम-टैक्स तुम्हारा कलंक है, तुम वायु हो, रेलवे तुम्हारी गति है ; तुम वरुण हो, समुद्र तुम्हारा राज्य है । अतएव हे अंगरेज ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं । ९

तुम्हीं दिवाकर हो, तुम्हारे आलोकसे हमारा अज्ञानान्धकार दूर होता है, तुम्हीं अग्नि हो, क्योंकि सब कुछ स्वाहा किये जाते हो, तुम्हीं यम हो, विशेषकर अपने मातहतोंके । अतएव मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं । १०

तुम वेद हो, मैं ऋक् यजु आदिको नहीं मानता हूं । तुम स्मृति हो, मन्वादि भूल गया हूं । तुम दर्शन हो, न्याय मीमांसादि सो तुम्हारे ही हाथ हैं अतएव हे अंगरेज ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं । ११

हे श्वेतकान्त ! तुम्हारे अमलधवलद्विरद सम शुभ्र महाश्म श्रुशोभित मुखमण्डलको देखकर इच्छा होती है कि तुम्हारा स्तव करूं, अतएव हे अंगरेज ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं । १२

तुम्हारी हरितकपिशपिंगललोहितकृष्णशुक्लादि नाना वर्ण

शोभित, अतियत्नरजित, सूक्ष्मेदमार्जित कुन्तलावलि देखकर अभिलाषा होती है कि तुम्हारा गुण गाऊ । अतएव हे अगरेज! मैं तुम्हें प्रणाम करता हू । १३

कलिकालमें तुम गौराङ्गके अवतार हो, इसमें सन्देह नही । हैट (टोप) तुम्हारा मुकुट, पेंट तुम्हारी काछनी और चाबुक तुम्हारी बांसुरी है। अतएव हे गोपीवल्लभ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं । १४

हे वरद! मुझे वरदान दो। मैं सिरपर समला रखकर तुम्हारे पीछे-पीछे फिरू गा, मुझे नौकरी दो। मैं तुम्हें प्रणाम करता हू । १५

हे शुभशङ्कर! मेरा भला करो। मैं तुम्हारी खुशामद करू गा, ठकुरसुहाती करू गा, जो कहोगे वही करू गा। मुझे बड़ा आदमी बना दो, मैं तुम्हारी वन्दना करता हू । १६

हे मानद! मुझे खिताब दो, खिलअत दो, पदवी दो—उपाधि दो—मुझे अपना प्रसाद दो। मैं तुम्हारी वन्दना करता हू। १७

हे भक्तवत्सल! मैं तुम्हारा उच्छिष्ट खाना चाहता हू, तुमसे हाथ मिलाकर लोगोंमें महासम्मानित होनेकी मेरी इच्छा है, तुम्हारे हाथकी लिखी दो चार चिट्ठिया अपने सदूकचेमें रखकर औरोंको नीचा दिखाना चाहता हू । अतएव हे अंगरेज! तुम मुझपर प्रसन्न हो, मैं तुम्हें प्रणाम करता हू । १८

हे अन्तर्यामी! मैं जो कुछ करता हू सो तुम्हारे रिझानेके लिये। तुम दाता कहोगे, इसलिये दान करता हू। तुम परोपकारी कहोगे, इसलिये परोपकार करता हू। तुम विद्वान् कहोगे, इसलिये

पड़ता है। अतएव हे अंगरेज! तुम मुझपर प्रसन्न हो। मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं। १९

मैं तुम्हारे इच्छानुसार अस्पताल बनवाऊंगा, तुम्हारे प्रीत्यर्थ विद्यालय बनवाऊंगा, तुम्हारे आज्ञानुसार चन्दा दूंगा। तुम मुझपर प्रसन्न हो, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं। २०

हे सौम्य! जो तुम्हारी इच्छा है, वही मैं करूंगा। मैं कोट पेंट पहनूंगा, ऐनक लगाऊंगा, कांटे चम्मचसे मेजपर खाऊंगा। तुम मुझपर प्रसन्न हो, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं। २१

हे मिष्ठभाषी! मैं मातृभाषा त्यागकर तुम्हारी भाषा बोलूंगा, बाप-दादोंका धर्म्म छोड़कर तुम्हारा धर्म्म ग्रहण करूंगा। लाला बाबू न कहलाकर मिस्टर बनूंगा। तुम मुझपर प्रसन्न हो, प्रणाम करता हूं। २२

हे सुन्दर भोजन करनेवाले! मैं रोटी छोड़कर पावरोटी खाता हूं, निषिद्ध मांससे पेट भरता हूं। मुर्गीका कलेवा करता हूं। अतएव हे अंगरेज! मुझे चरणोंमें स्थान दो। मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं। २३

मैं विधवाओंका ब्याह कराऊंगा, जातिभेद उठा दूंगा, क्योंकि तुम मेरी बड़ाई करोगे। अतएव हे अंगरेज! तुम मुझपर प्रसन्न हो। मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं। २४

हे सर्व्वद! मुझे धन दो, मान दो, यश दो मेरी सब इच्छाएं पूरी करो। मुझे बड़ी नौकरी दो, राजा बनाओ, रायबहादुर बनाओ, कौंसिलका मेम्बर बनाओ। मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं। २५

यदि यह न दो, तो अपनी गोठ और ज्योनारोंमें मुझे न्योत बुलाओ, बडी बडी कमेटियोंका मेम्बर बनाओ, सिनेटका मेम्बर बनाओ, असेसर बनाओ, अनाडो मजिस्टर बनाओ, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं। २६

मेरी स्पीच सुनो, मेरा प्रबन्ध पढो, तारीफ करो और वाह वा कहो, फिर मैं सारे हिन्दू-समाजकी निन्दाकी भी परवा न करूंगा। मैं तुम्हें प्रणाम करता हू। २७

हे भगवन्! मैं अकिंचन हू मैं तुम्हारे द्वारपर खडा हूं, भूल न जाना, मैं तुम्हें डाली भेजूंगा। तुम मुझे याद रखना, मैं तुम्हें कोटि कोटि प्रणाम करता हू। २८

बाबू

—०००—

जनमेजय बोले, हे महर्षे! आपने कहा है कि कलियुगमें बाबू नामक एक प्रकारके मनुष्य पृथिवीपर आविर्भूत होंगे। वह कैसे होंगे और पृथिवीपर जन्मग्रहण कर क्या करेंगे, यह सुननेके लिये मैं उत्सुक हो रहा हूं। आप कृपा कर यह विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये।

वैशम्पायनने कहा, हे राजन्! आहारनिद्राकुशली विचित्र बुद्धिवाले बाबुओंकी कथा कहता हूं, आप श्रवण करें। मैं चश्माधारी, उदार-चरित्र, बहुभाषी, मिष्टान्नप्रिय बाबुओंका चरित्र वर्णन करता हूं, आप श्रवण करें। हे राजन्! जो चित्र विचित्र कपड़े पहने हो, हाथमें बेंत लिये हो, बाल सवारे हो, और बूट चढाये हो—वही बाबू है। जो बातोंमें हारे नहीं, परायी भाषामें पारदर्शी हो, मातृभाषाका विरोधी हो, वही बाबू है। महाराज! बहुतसे ऐसे महाबुद्धिमान बाबू उत्पन्न होंगे, जो मातृ-भाषामें बातचीत तक न कर सकेंगे। जिनकी दसों इन्द्रियां स्वाधीन होनेके कारण अपविशुद्ध और जिनकी रसना परजातिके थूकसे पवित्र है, वही बाबू हैं। जिनके पैर सूखी लकड़ीके सदृश और हाड़-माससे रहित होनेपर भी भागनेमें समर्थ हैं, हाथ दुबले और कमजोर होनेपर भी कलम पकड़ने और तनख्वाह लेनेमें चतुर हैं, चमड़ा मुलायम होनेपर भी सात समुद्र पारकी बनी

वस्तु विशेषकी चोट सहनेमें समर्थ हैं, जिनकी इन्द्रियमात्रकी इस प्रकार प्रशंसा की जा सकती हो, वही बाबू हैं। जो उद्देश्यके बिना धन जमा करें, जमा करनेके लिये पैदा करें, पैदा करनेके लिए पढ़ें और पढ़नेके लिये प्रश्न चोरी करें, वही बाबू हैं।

महाराज! बाबू शब्दके अनेक अर्थ होंगे। कलिकालमें भारतवर्षका राजा होकर जो अंगरेज नामसे प्रसिद्ध होगा, वह 'बाबू' का अर्थ सौदा खरीदनेवाला और लिखनेवाला मुन्शी समझेगा, निर्धन लोग 'बाबू' को अपनेसे धनी समझेंगे। दास 'बाबू' का अर्थ स्वामी करेंगे। इनके सिवा कितने ही मनुष्य केवल बाबूगिरी करनेके लिये ही जन्म ग्रहण करेंगे। मैं केवल उन्हींका गुणगान करता हूं। जो इसका उल्टा अर्थ करेगा, उसे इस महाभारत श्रवणका कुछ फल न मिलेगा। वह गो-जन्म ग्रहण कर बाबुओंका भक्ष्य बनेगा।

हे नराधिप! बाबू लोग दूसरे अगस्त्यकी तरह समुद्ररूपी मदिराको कांचके गिलासरूपी चुल्लूसे सोख जायेंगे। अग्नि इनकी आज्ञामें रहेगी। तम्बाकू और चुरुट नामके दो खाण्डववनोंके सहारे अग्नि रात दिन इनके मुंहमें लगी रहेगी। जैसे इनके मुंहमें आग जलेगी वैसे पेटमें भी जलेगी और रातके तीसरे पहरतक इनकी गाड़ियोंकी दोनों लालटेनोंमें रहेगी। इनके आलोचित संगीत और काव्योंमें भी अग्निका वास होगा। उस समय इसका नाम मदनाग्नि और हृदयाग्नि होगा। वारविलासिनियोंके मतसे बाबुओंके मुंह सदा आगसे झुलसा करेंगे। यह लोग वायु

ही भक्षण करेंगे और सभ्यताके विचारसे इस कठिन कार्यका नाम वायुसेवन या 'हवाखाना' रखेंगे। चन्द्रमा इनके घरके भीतर और वाहर नित्य विराजमान रहेगा, कभी कभी मु हपर बुरका भी डाल लेगा। कोई रातके पहले भागमें कृष्णपक्षका और पिछले भागमें शुक्लपक्षका चन्द्रमा देखेगा और कोई इसके विपरीत भी करेगा। सूर्य तो कभी इनके दर्शन भी न कर सकेगा। यमराज इन्हें भूल जायगा। केवल अश्विनीकुमारोंकी यह लोग पूजा करेंगे। अश्विनीकुमारोंके मन्दिरका नाम अस्त-बल या तबेला होगा।

हे नरश्रेष्ठ! जो काव्यका कलेवा कर जायँगे, संगीतका श्राद्ध कर डालेंगे, जिनकी पण्डिताई बचपनकी पढ़ी हुई पुस्तकोंमें ही बन्द रहेगी और जो अपनेको परम ज्ञानी समझेंगे, वही बाबू होंगे, जो समझकी सहायता लिये बिना ही काव्य पढ़ने और समालोचना करनेमें लगे रहेंगे, जो वेश्याओंकी चिल्लाहटको ही संगीत समझेंगे, जो अपनेको निर्भ्रान्त समझेंगे, वही बाबू होंगे। जो रूपमें कामदेवके कनिष्ठ भ्राता, गुणमें निर्गुण, कर्ममें जडभरत और बात बनानेमें सरस्वती होंगे, वही बाबू होंगे। जो उत्सव मनानेके लिये शिवरात्रि मनावेंगे, घरवालीके कहनेसे दिवाली करेंगे, माशूकाकी खातिरसे होली करेंगे और मांसके लोभसे दशहरा करेंगे, वही बाबू होंगे। जो विचित्र रथपर चलेंगे, मामूली घरमें सोयेंगे, द्राक्षारसका पान करेंगे और भूने शकरकन्द खायँगे, वही बाबू होंगे। जो महादेव बाबाकी तरह मादकप्रिय, ब्रह्माके

समान प्रजा उत्पादन करनेके इच्छुक और विष्णुके समान लीला करनेमें चतुर होंगे,वही बाबू कहलावेंगे। हे कुरुकुलभूषण, विष्णुके साथ इन बाबुओंकी बडी समानता होगी। विष्णुकी तरह इनके पास लक्ष्मी और सरस्वती दोनों रहेंगी, विष्णुके समान यह भी अनन्तशय्याशायी होंगे। विष्णुके समान इनके भी दस अवतार होंगे जैसे—मुन्शी, मास्टर, दयानन्दी, मुतसद्दी, डाक्टर, वकील, हाकिम, जमींदार, समाचारपत्र-सपादक और निष्कर्मा। विष्णुके समान सब अवतारोंमें ही पराक्रमके साथ यह लोग असुरोंका वध करेंगे। मुन्शी-अवतारमें दफ्तरीका, मास्टर-अवतारमें छात्रोंका, स्टेशनमास्टर अवतारमें विना टिकटके मुसाफिरोंका, दयानन्दी-अवतारमें भोजनभट्ट गुरु-पुरोहितोंका, मुतसद्दी-अवतारमें अगरेज व्यापारियोंका, डाक्टर-अवतारमें रोगियोंका, वकील अवतारमें मुवक्किलोंका, हाकिम अवतारमें मुकद्दमा लडनेवालोंका, जमींदारावतारमें रैयतोंका, सम्पादकावतारमें भलेमानसोंका और निष्कर्मावतारमें मक्खियोंका वध होगा।

महाराज! और सुनिये। जिनका वचन मनमें एक गुना, कहनेमें दस गुना, लिखनेमें सौ गुना, झगडेमें हजार गुना हो, वही बाबू होंगे। जिनका बल हाथमें एक गुना, मुहमें दसगुना, पीठमें सौगुना और कामके समय लोप हो जाय, वही बाबू होंगे। जिनकी बुद्धि लडकपनके समय पुस्तकोंमें, जवानी आनेपर बोतलमें, बुढापेके समय घरवालीके आंचलमें रहे, वही बाबू होंगे। जिनके

इष्टदेवता अंगरेज, गुरु आर्य्यसमाजी, वेद, अङ्गरेजी अखबार और तीर्थ "अलफ्रेड थियेटर" होगा, वही बाबू होंगे। जो पादड़ियोंके सामने क्रिस्तान, दयानन्दजीके आगे आर्य्यसमाजी, पिताके आगे सनातनी और भिक्षुक ब्राह्मणोंके सामने नास्तिक बनेंगे, वही बाबू कहलावेंगे। जो अपने घरमें जल पीते, दोस्तोंके घर जाकर शराब पीते, रण्डियोंके घरमें जूतियां खाते और अंगरेजोंके यहां धक्के खाते हैं, वही बाबू होंगे। जो स्नानके समय तेलसे, खानेके समय अपनी उँगलियोंसे और बातचीतमें मातृ भाषासे घृणा करें, वही बाबू होंगे। जिनकी सारी कोशिश सिर्फ लिबासके बनानेमें, मुस्तैदी सिर्फ नौकरीकी उम्मीदवारीमें, भक्ति केवल पत्नी या उपपत्नीमें और घृणा सद्ग्रन्थोंपर हो, वही निस्सन्देह बाबू होंगे।

हे नरनाथ! मैंने जिनकी बात कही है, वह मन ही मन यह समझेंगे कि पान खानेसे, तकियोंके सहारे बैठनेसे, विचड़ी भाषा बोलनेसे और सुलफेपर सुलफा पीनेसे भारतका उद्धार हो जायगा।

जनमेजय बोले, हे मुनिपुङ्गव! बाबुओंकी जय हो, अब दूसरा प्रसंग उठाइये।

गर्दभ
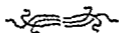
गर्दभजी ! मेरी दी हुई यह नयी घास भोजन कीजिये ।

गोवत्सादिके अगम्य स्थानोंसे यह नवजलसिञ्चित और सुगन्धित तृणोंके अग्रभाग बड़े यत्नसे ले आया हूं, आप अपने सुन्दर मुखमण्डलमें, इन्हें ले मुक्ताविनिन्दित दांतोंसे कतरनेकी कृपा कीजिये ।

हे महाभागे ! आपकी पूजा करनेकी इच्छा हुई है, क्योंकि आप ही सर्वत्र विराजमान हैं। अतएव हे विश्वव्यापी ! मेरी पूजा ग्रहण कीजिये ।

मैं पूज्य व्यक्तिके अनुसन्धानमें देश विदेश घूम आया, पर सब जगह आपको ही पाया। सब आपकी ही पूजा करते हैं। इसलिये हे लम्बकर्ण ! मेरी भी पूजा ग्रहण कीजिये ।

हे गर्दभ महाराज। कौन कहता है कि आपके पद छोटे हैं। यह-वहा चारों ओर तो आपके ही बड़े पद दिखाई देते हैं। आप ऊंचे आसनपर बैठकर घासके बड़े बड़े पूला चाखते हैं और खुशामदी आपको घेरकर आपके कानोंकी बड़ाई करते हैं।

आप ही विचारासनपर बैठकर अपने दोनों लम्बे कान इधर उधर घुमाते हैं। इनकी अथाह कन्दराओंको देखकर वकील नामधारी कवि नाना प्रकारका काव्यरस इनमें ढालते हैं। उस समय कानोंके सुखसे मुग्ध हो आप ऊंघने लगते हैं।

हे बृहन्मुण्ड ! उस समय आप काव्यरससे मुग्ध होकर

दया दिखाते हैं। दयाके वश होकर आप मोहनकी जमा पूंजी सोहन और सोहनकी धनसम्पत्ति गोहनको दे डालते हैं। आपकी दयाका ठिकाना नहीं है।

हे रजकगृह-भूषण! आप कभी तो टुम दबा कुर्सीपर बैठते हैं और सरस्वतीमण्डपमें बालकोंको गर्द्दभ-लोकप्राप्तिका उपाय बताते हैं। बालकके गर्द्दभ लोकमें प्रवेश करनेपर "प्रवेशिकामें उत्तीर्ण हुआ" कहकर चिल्लाते हैं। हम चिल्लाहट सुन डर जाते हैं।

हे विशालोदर! आप ही संस्कृत पाठशालाओंमें कुशासनपर बैठे माथेमें चन्दन लगा हाथमें पुस्तक लिये शोभायमान हैं, आपकी की हुई शास्त्रोंकी टीका सुनकर हम धन्य धन्य कहते हैं। अतएव हे महापशु! मेरा दिया हुआ यह कोमल तृणाङ्कुर भक्षण कीजिये।

आपपर ही लक्ष्मीकी कृपा है—आपके न रहनेसे और किसी पर उसकी कृपा नहीं होती। वह आपका कभी त्याग नहीं करती है, पर आप अपने बुद्धिबलसे सदा उसका त्याग करते हैं। इसीसे लक्ष्मीको चञ्चल होनेका कलङ्क है। अतएव हे सुपुच्छ! घास भक्षण कीजिये।

आप ही गानेवाले हैं। षड्ज, ऋषभ, गान्धार आदि सातों सुर आपके गलेमें हैं बहुत दिनों आपकी नकलकर बड़ी बड़ी दाढ़ी मूछें बढ़ाकर बहुत तरहकी खांसियोंका अभ्यास कर कहीं किसी को आपकासा सुर प्राप्त होता है। हे भैरवकंठ! घास खाइये।

आप बहुत दिनोंसे पृथ्वीपर विचरण करते हैं। रामायणमें आप ही राजा दशरथ थे, नहीं तो रामचन्द्र वन कैसे जाते?

महाभारतमें पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर आप ही थे, अन्यथा पाण्डव जूआ खेलकर अपनी स्त्रीको क्यों हारते ? कलियुगमें आप ही पृथ्वीराज हुए, नहीं तो मुसलमान भारतमें क्यों आते ?

आप युग-युगमें अनेक रूपोंसे अनेक देशोंको प्रकाशित करते चले आते हैं। इस समय तपस्याके बलसे ब्रह्माके वरसे आप समालोचक होकर प्रकट हुए हैं। हे लोमशावतार ! मेरे लाये हुए कोमल नवीन तृणके अङ्कुरोंको खाकर मुझे प्रसन्न कीजिये।

हे महापृष्ठ ! कभी आप राज्यका भार ढोते हैं, कभी पुस्तकों का और कभी धोबियोंके गट्ठरोंका। हे लोमश ! कौनसा बोझ भारी है, मुझे बता दीजिये !

आप कभी घास खाते हैं, कभी लड्डू खाते हैं, कभी ग्रंथकारों-का सिर खाते हैं। हे लोमश ! इनमें कौन मीठा है, बता दीजिये।

हे सुन्दर ! आपका रूप देखकर मैं मोहित हो गया हूं। जब आप पेडके नीचे खड़े हो वर्षाके जलसे स्नान करते हैं, दोनों कान खडेकर मुखचन्द्र नीचाकर लेते, कभी आंखें बन्द करते, कभी खोलते हैं और आपकी पीठ तथा गर्दनसे वसुधारा चलती है, तब आप बडे सुन्दर दिखायी देते हैं। हे लोकमनमोहन ! लीजिये, थोडी सी घास आरोगिये।

विधाताने आपको तेज नहीं दिया, इसीसे आप शान्त हैं, वेग नहीं दिया, इसीसे सुधीर हैं, बुद्धि नहीं दी, इसीसे आप विद्वान् हैं, और बोझ लादे बिना खाना नहीं मिलता, इसीसे आप परोपकारी हैं। मैं आपका यश गाता हूं, आप घास खाकर मुझे सुखी कीजिये।

वसन्त और विरह

रेवती—सखी ! ऋतुराज वसन्त पृथ्वीपर उदित हुए हैं। आ, हम दोनों वसन्तका वर्णन करें ; क्योंकि हम दोनों ही वियोगिन हैं। पहलेकी वियोगिनियां सदासे वसन्तका वर्णन करती आयी हैं। आ, हम भी करें।

सेवती—वीर ! तैंने ठीक कहा। हम कन्याविद्यालयमें पढ़-लिखकर भी घरके चक्की चूल्हेमें ही मरती हैं। आ, आज कविता की आलोचना करें।

रेवती—सखी ! तो मैं आरम्भ करती हूं। सखी ! ऋतुराज वसन्तका समागम हुआ है। देख, पृथ्वीने कैसा अनिर्वचनीय भाव धारण किया है। देख, चूतलता कैसी नव मुकुलित—

सेवती—और सहजनेकी फलियाँ लटकित—

रेवती—शीतल सुगन्ध मन्द मन्द वायु बहती—

सेवती—उड़कर धूर देहपर जमती—

रेवती—चल हट। यह क्या बकती है। सुन, भ्रमर फूलोंपर गुञ्ज रहे हैं—

सेवती—मक्खियां मीठेपर भिनभिना रही हैं—

रेवती—वृक्षोंपर कोयल पंचम स्वरमें कूक रही है—

सेवती—गधा अष्टम स्वरमें रक रहा है—

रेवती—जा, तेरे साथ वसन्तवर्णन न बनेगा। मैं मालतीको पुकारती हूं। अरी ओ मालती ! इधर आ, वसन्त वर्णन करें।

(मालती आयी)

मालती—सखी, मैं तो तुम लोगोंकी तरह बहुत पढी लिखी नही। कुछ गोद-गाद लेती हू। सब बातें मैं नहीं समझूंगी, मुझे बीच बीचमें समझाना पडेगा।

रेवती—अच्छा! देख तो वसन्त कैसा अपूर्व समय है! चूतलता कैसी नव मुकुलित—

मालती—सखी, आमके पेड तो मैंने देखे हैं, भला आमकी लता कैसी होती है?

रेवती—मैंने आमकी लता सुनी है, पर कभी आखोंसे देखी नहीं। देखी हो या न देखी हो इससे मतलब नहीं, पर पुस्तकोंमें चूतलता ही पढी है, चूतवृक्ष नहीं, इसलिये चूतवृक्ष न कह चूत लता ही कहना होगा।

मालती—तब कहो।

रेवती—चूतलतिका नव मुकुलित होकर—

मालती—सखी, अभी तो तैंने चूतलता कहा था, फिर लतिका कैसे हो गयी?

रेवती—इसमें कुछ और मधुरता आ गयी। चूतलतिका नव मुकुलित हो चारों ओर सुगन्ध विकीर्ण कर रही है—

मालती—सखी, वसन्तमें तो आमकी मंजरी झर जाती है और अमिया लगती है।

सेवती—इससे क्या? देख, वर्णन कैसा मधुर हुआ है।

रेवती—मधुके लोभसे उन्मत्त हो मधुकर उनपर गूंजते हैं, यह देखकर हमारे प्राण निकले जाते हैं।

मालती – अहा, तूने बहुत ठीक कहा है। सखी, मधुकर किसे कहते हैं।

रेवती—अरी, तू यह भी नहीं जानती है। मधुकर नाम भ्रमरका है।

मालती—भ्रमर क्या सखी ?

रेवती—भ्रमर कहते हैं भौंरेको।

मालती—तो भौंरे आमकी मजरी देखकर पागल क्यों हो जाते हैं ? उनका पागलपन कैसा होता है ? यह क्या आय-बाय साय बकते हैं ?

रेवती—कौन कहता है कि वह पागल होते हैं ?

मालती—अभी तो तैंने ही कहा है कि "उन्मत्त हो गूजते हैं।"

रेवती—झखमारा जो तेरे आगे वसन्तका वर्णन किया !

मालती—तो वीर लडती क्यों है ? तू ज्यादा पढी है, मैं कम पढी हूं। मुझे समझा दे, बस टटा मिटा। सब तो तुझसी रसिया नहीं हैं।

रेवती—(साहकार) अच्छा तो सुन, भ्रमर मधुके लोभसे गू जते हैं। उनकी गु जारसे हमारे प्राण जाते हैं।

मालती—भौंरेकी गु जार होती है कि भनभनाहट।

रेवती—कवि तो गु जार ही कहते हैं।

मालती—तो गु जार ही सही, पर उससे हमारे प्राण क्यों जाने लगे ? भौंरेके काटनेसे तो प्राण जाते सुना भी है पर अब क्या भौंरेकी भनभनाहटसे भी प्राण देने पड़ेंगे ?

रेवती—भौंरेको गुंजारसे बराबर विरहिनी मरती आयी है। तू कहासे रंगाके आयी है जो नहीं मरेगी।

मालती—अच्छा बहन! शास्त्रोंमें अगर लिखा है तो मरूंगी। पर पूछना यह है कि केवल भौंरेकी भनभनाहटसे ही मौत आवेगी या मधुमक्खियों-गुबरीलोंकी भनभनसे भी?

रेवती—कवि तो भ्रमरकी गुंजारसे ही मरनेको कहते हैं।

सेवती—कवि बडा अन्याय करते हैं। गुबरीलोंने क्या अपराध किया है?

रेवती—तुझे मरना हो तो मर, पर अभी तो सुन ले।

सेवती—कह, क्या कहती है?

रेवती—कोयल वृक्षोंपर बैठकर पञ्चमस्वरसे गान करती है।

मालती—पञ्चम स्वर क्या है बहन?

रेवती—कोयलकी कूककी तरह होता है।

मालती—कोयलकी कूक कैसी होती है?

रेवती—पञ्चम स्वरकी तरह।

मालती—समझ गयी, आगे कह।

रेवती—कोयल वृक्षोंपर बैठ पञ्चम स्वरसे गान करती है, उससे विरहिनियोंकी देहमें आग लग जाती है।

सेवती—और मुर्गेके पञ्चम स्वरसे देहमें क्या होता है?

रेवती—अरी चल। मुर्गेका और पञ्चम स्वर!

सेवती—मेरी देह तो उसीसे जल जाती है। मुर्गेके बोलते ही मालूम होता है कि—

रेवती—इसके पीछे मलय समीर। शीतल सुगन्ध मन्द मलय मारुतसे वियोगिनियोंके रोए खड़े हो जाते हैं।

मालती—जाड़े से ?

रेवती—नहीं, विरहसे। मलय मारुत औरोंके लिये शीतल है, पर हमारे लिये अग्निके समान है।

सेवती—बहन, यह तो सबके लिये है। इस चैतकी दुपहरकी हवा किसे आगकी तरह नहीं मालूम होती है ?

रेवती—अरी, मैं उस हवाकी बात नहीं कहती हूं।

मालती—शायद तू उत्तरकी हवाकी बात कह रही थी। उत्तरकी हवा जैसी ठंढी होती है, मलयाचलकी वैसी नहीं होती।

रेवती—वसन्तानिलके लगतेही शरीर रोमाञ्चित हो जाता है।

सेवती—नंगे बदन रहनेसे उत्तरकी हवासे भी रोए खड़े हो जाते हैं।

रेवती—चल हट! कहीं वसन्त ऋतुमें भी उत्तरकी हवा चलती है, जो मैं उसकी बात वसन्तवर्णनमें लाऊंगी।

सेवती—अभी तो उत्तरकी हवा चल रही है। आजकल आंधी उत्तरसे ही आती है। मेरी समझमें वसन्तवर्णनमें उत्तरकी हवाकी चर्चा जरूर होनी चाहिये। चलो, हम सरस्वतीमें लिख भेजें कि अब कवि वसन्तवर्णनमें मलयवायुका नाम न लेकर उत्तरकी आंधीका वर्णन करें

रेवती—ऐसा होगा तो वियोगी विचारे क्या करेंगे ? वह फिर क्या कहकर रोएंगे ?

मालती—तो बहन, रहने दे अभी अपना बसन्त वर्णन। ओह! मरी—मरी—(गिरती और आंखें बन्द करती है)

रेवती—क्यों बहन,क्या हुआ? एकाएक ऐसा हाल क्यों हुआ?

मालती—(आंखें बन्दकर) अरी सुनती नहीं? थूहरके पेड़पर कोयल कूक रही है।

रेवती—सखी, धीरज धर धीरज। तेरे प्राणनाथ शीघ्र ही आवेंगे। बहन, मैं भी यही दुःख भोग रही हूं। प्राणनाथके दर्शन बिना जीवित रहना कठिन हो रहा है।(आंखे मीचकर) टोले मुहल्लेके कूप अगर सूख न जाते तो मैं कबकी डूब मरी होती। ऐ हृदयवल्लभ, जीवतेश्वर! हे रमनीजनमनोमोहन! हे निशाशेषोन्मेषोन्मुख कमलकोरकोपमोच्चे जित हृदयसूर्य्य! हे अतलजलदलतलन्यस्तरत्न राजिवन्महामूल्य पुरुषरत्न! हे कामिनी कठविलम्बित रत्नहाराधिक! प्राणाधिक! अब प्राण नहीं बचेंगे! मैं अबला, सरला, चचला, विकला, दीना, हीना, क्षीणा, पीना, नवीना, श्रीहीना हूं; अब प्राण नहीं बचेंगे। और कबतक तुम्हारी राह देखूं! सरोवरमें सरोजिनी जैसे भानुको चाहती है, कुमुदिनी कुमुद-बान्धवको जैसे चाहती है, चातक स्वातीको बून्दको जैसे चाहता है, मैं भी तुम्हें वैसे ही चाहती हूं।

मालती—(रोकर) खोयी हुई गायकी आसमें चरवाहा जैसे खड़ा रहता है, हलवाईकी दूकानसे नौकरके लौटनेकी आसमें लड़का जैसे खड़ा रहता है, घसियारेकी आसमें घोड़ा जैसे खड़ा रहता है, हे प्यारे! वैसे ही मैं तुम्हारी आसमें खड़ी रहती

है। दही विलोनेके समय दाईके पीछे पीछे जैसे बिल्ली भागती है, वैसे ही आपके पीछे मेरा मन भागता है। जूठन-कूडन फेंकने वालेके पीछे-पीछे जैसे भूखा कुत्ता दौड़ता है, वैसे ही तुम्हारे पीछे मेरा बेकहा मन दौड़ता है। बडे बडे बैल जैसे कोल्हूमें घूमा करते हैं, वैसे ही आसा भरोसा नामके मेरे बैल तुम्हारे प्रेमरूप कोल्हूमें फिर रहे हैं। लोहेकी कढाईमें गर्म तेल बैंगनको जिस तरह भूनता है, उस तरह विरहकी कड़ाइमें वसन्तरूपी तेल मेरे हृदयरूप बैंगनको सदा भूनता है। इस वसन्तऋतुमें जैसे गर्मीसे सहजनेकी फलिया फटती हैं, तुम्हारे विरहमें वैसे ही मेरी हृदय फली फटती है। एक हलमें दो बैल जोतकर किसान जैसे खेतको जोत डालते हैं, वैसे ही प्रेमके हलमें विरह और सौतकी भक्तिरूपी दो बैल जोतकर मेरे स्वामी किसान मेरे कलेजेरूपी खेतको जोत रहे हैं। और कहातक कहूं ? विरहकी जलनसे मेरी दालमें नोन नहीं, पानमें चूना नहीं, कढीमें मिर्च नहीं, दूधमें चीनी नहीं। बहन, जिस दिन विरहकी आग भड़क उठती है, उस दिन मैं तीन बारसे ज्यादा नहीं खा सकती, मेरा दूधका कटोरा योंही रह जाता है। (आंसू पोछकर) बहन ! अब अपना बसन्तवर्णन पूरा करो। दुःखकी बातोंका अब काम नहीं है।

रेवती—मेरा बसन्तवर्णन पूरा हो चुका है। भ्रमर, कोकिल मलय समीर और विरह, इन चारोंकी बात तो कह चुकी, अब बाकी ही क्या है ?

सेवती—चुल्लूभर पानी।

सोनेका पासा

कैलास शिखरपर फूले हुए देवदारु वृक्षके नीचे बाघाम्बर बिछाये शिवजी पार्वतीजीके साथ चौपड़ खेल रहे थे। दावपर सोनेका एक पासा था। भोला बाबामें यही बड़ा दोष है कि वह कभी बाजी नहीं जीतते। अगर जीत ही सकते तो समुद्र-मन्थनके समय विष उनके हिस्सेमें क्यों आता? पार्वती माताकी तो सदा ही जीत है। इसीसे पृथ्वीपर उनकी तीन दिन पूजा होती है। खेलना चाहे अच्छा न जानती हों, पर रोनेमें वह बड़ी होशियार हैं; क्योंकि वही आद्या शक्ति हैं। अगर महादेव बाबाका दाव आ गया तो रोकर कुहराम मचा देती हैं। पर पाच दो सात पड़ते हैं तो पौबारह कहती और भोलानाथको उस तिरछी चितवनसे देखती हैं, जिससे सृष्टिकी स्थिति प्रलय होती है। इसका फल यह होता है कि बमभोला अपना दाव देखकर भी नहीं देखते। साराश यह कि महादेवजीकी हार हुई और यही सदाकी रीति भी है।

भङ्गड़नाथने हारकर सोनेका पासा पार्वतीके हवाले किया। उन्होंने उसे पृथ्वीपर फेंक दिया। वह बङ्गालमें जाकर गिरा। भवानीपति भौंहे चढ़ाकर बोले—"मेरे पासेको तुमने क्यों फेंक दिया?" गौरीने कहा—"नाथ, आपके पासेमें अवश्य ही कोई अपूर्व शक्ति होगी, जिससे जगका भला होगा। मनुष्योंके हितके लिये मैंने उसे नीचे फेंका है।" शिवजीने कहा—"प्रिये! मैं,ब्रह्मा और विष्णु जिन नियमोंको बनाकर सृजन, पालन और संहार

करते हैं, उनके तोडनेसे कदापि मंगल न होगा। जो कुछ शुभा-शुभ होगा, वह नियमावलीके अनुसार ही होगा। सोनेके पासे की आवश्यकता नहीं है। यदि इसमें कुछ शुभ गुण भी हो तो नियम भंग हो जानेसे लोगोंका अनिष्ट ही होगा। खैर, तुम्हारे अनुरोधसे उसे एक विशेष गुणसे युक्त किये देता हूं। बैठी-बैठी उसकी करामात देखो।"

कालीकान्त वसु बड़े आदमी हैं। उम्र ३५ वर्ष की है, देखनेमें सुन्दर हैं और अभी उस दिन उनका दूसरा ब्याह हुआ है। आप की स्त्रीका नाम कामसुन्दरी, अवस्था १८ सालकी है और वह अभी अपने मायके है। कालीकान्त बाबू स्त्रीसे मिलने ससुराल जा रहे हैं। आपके ससुर भी बड़े धनी हैं और गंगा किनारे एक गांवमें रहते हैं। कालीकान्त घाटपर नाव छोड पैदल चलने लगे। संगमें रामा नौकर था। वह सिरपर पोर्टमैण्टो लिये था। जाते जाते कालीकान्त बाबूको सोनेका एक पासा सड़कपर पड़ा दिखायी दिया। आश्चर्यमें आकर उन्होंने उसे उठा लिया। उलट पुलटकर देखा तो ठीक सोनेका पाया। प्रसन्न होकर नौकरसे बोले—यह सोनेका है। किसीका खो गया है। अगर कोई खोज करे तो दे देना, नहीं तो घर ले चलूंगा। ले रख ले।"

रामाने पोर्टमैण्टो रख पासा अंगोछेमें बांध लिया, पर फिर पोर्टमैन्टो सिरपर नहीं उठाया। कालीकान्त बाबूने स्वयं उसे माथेपर रख लिया। रामा आगे चला और बाबू पीछे-पीछे। रामा बोला—"अरे ओ रामा!"

बाबूने कहा—"जी।" रामा बोला—"तू बड़ा बेअदब है ससुराल पहुंचकर फिर बेअदबी मत कर बैठना। वह लोग बड़े आदमी हैं।" बाबूने कहा "जी नहीं,भला ऐसा कभी हो सकता है! आप ठहरे मालिक, आपके सामने क्या मैं बेअदबी कर सकता हू ?

कैलासपर गौरीने पूछा—"नाथ, मेरी समझमें कुछ न आया। आपके सोनेके पासेका यह क्या गुण है ?"

महादेव बोले—"पासेका गुण चित्तविनिमय अर्थात् मन बदलजल है। मै यदि नन्दीके हाथमें यह पासा दे दू तो वह अपनेको महादेव और मुझे नन्दी समझने लगेगा। मैं अपनेको नन्दी और नन्दीको शिव समझू गा। रामा अपनेको कालीकान्त और कालीकान्तको रामा समझ रहा है। कालीकान्त भी अप नेको रामा नौकर और रामाको कालीकान्त समझ रहा है।"

कालीकान्त बाबू जिस समय ससुराल पहुंचे,उस समय उनके ससुर घरके भीतर थे। यहा दरवाजेपर बडा हो-हल्ला मचा। राम दीन पाडे दरवान कहता है, "खानसामाजी! वहाँ मत बैठो, यहा मेरे पास आकर बैठो।" इतना सुनते ही रामाकी आखें लाल हो गयीं। वह बिगडकर बोला—"अबे जा, तू अपना काम कर।"

दरवानने कालीकान्तके सिरसे पोर्टमेण्टो उतार लिया। कालीकान्त बोले—"दरवानजी, बाबूसे इस तरह मत बोलो, नहीं तो वह चले जायंगे।"

दरवान कालीकान्तको तो पहचानता था, पर रामाको नहीं। कालीकान्तकी बात सुनकर दरवानने सोचा कि जब जमाई बाबू

ही इसे बाबू कहते हैं तो यह जरूर कोई बड़ा आदमी है, भेष बदलकर आया है। यह सोचकर रामासे उसने कहा—"बाबू, कसूर माफ कीजिये।" रामा बोला—"खैर, तमाकू ला।"

ऊधो बड़ा पुराना नौकर है। वह हुक्का भरकर ले आया। रामा तकियेके सहारे बैठकर गुड़गुड़ाने लगा। कालीकान्त बेचारे नौकरोंकी कोठरीमें जा चिलम पीने लगे। ऊधो अचरज मानकर बोला,—"आप यहां क्या कर रहे हैं!" कालीकान्त बोले, "उनके सामने मैं चिलम नहीं पी सकता।" ऊधो भीतर जाकर मालिकसे बोला—"जमाई बाबूके साथ रूप बदलकर कोई बड़े आदमी आये हैं। जमाई बाबू उनके सामने तमाकूतक नहीं पीते।"

नीलरतन बाबू शीघ्र बाहर आये। कालीकान्त दूर होसे साष्टांग प्रणामकर अलग हट गये। रामा आकर नीलरतन बाबूसे गले मिला। नीलरतनने मनमें कहा, साथका आदमी साफ सुथरा तो है, पर आज दामादका ऐसा हाल क्यों है?

नीलरतन बाबू रामाकी आवभगत करनेको बैठ गये, पर उसकी बातचीत उनकी समझमें कुछ न आयी। इधर भीतरसे कालीकान्तको कलेवेके लिये दाई बुलाने आयी। कालीकान्त बोले—"अरे राम! क्या बाबूके सामने मैं कलेवा कर सकता हूं? पहले उन्हें कराओ, पीछे मैं कर लूंगा। माजी, मैं तो आप ही लोगोंका खाता हूं।"

"माजी" कहते सुनकर दाईने मनमें कहा, "दामादने मुझे सास समझकर 'माजी' कहा है। कहेंगे क्यों नहीं, मैं क्या नीच

जातिकी मालूम होती हू ? वह देश विदेश घूम चुके हैं, उन्हें आदमीकी परख है। खाली इसी घरवालोंको आदमीकी पहचान नहीं है।" दाई कालीकान्तसे बडी खुश हुई और भीतर जाकर बोली—"जमाई बाबूने बहुत ठीक सोचा है। सगके आदमीके खाये बिना भला वह कैसे खा सकते हैं। पहले उनके साथीको खिलाओ, तब वह खायगे।"

घरकी मालकिनने सोचा कि साथी तो ऊपरी आदमी है। उसे भीतर नहीं बुला सकती और दामादको भीतर खिलाना चाहिये। मालकिनने ऐसा ही प्रबन्ध किया। रामा बाहर अपने खानेका बन्दोबस्त देखकर बिगडा और बोला—"यह कैसा शिष्टाचार है!" इधर दाई कालीकान्तको बुलाकर भीतर ले गयी तो वह आगनमें ही खडा हो गया और बोला—"मुझे घरके भीतर क्यों बुलाया? मुझे यहीं चना-चबेना दे दो, मैं खाकर पानी पी लूगा।" यह सुनकर सालियोंने कहा, "जीजाजी तो अबके बडा मजाक सीखकर आये हैं।"

कालीकान्तने गिडगिडाकर कहा—"मुझसे आप क्यों दिल्लगी करती हैं? मैं क्या आपके योग्य हू?" एक बुढिया साली बोल उठी—"मेरे योग्य क्यों होने लगे। जिसके योग्य हो उसीके पास चलो।" इतना कह कालीकान्तको खैंचकर सब भीतर ले गयीं।

वहा कालीकान्तकी भार्य्या कामसुन्दरी खडी थी। कालीकान्तने उसे मालकिन समझ हाथ जोडकर प्रणाम किया। कामसुन्दरी हंसकर बोली—"यह कैसी दिल्लगी! अबके यह

नखरा सीख आये हो?" कालीकान्तने गिडगिडाकर कहा—"मेरे साथ ऐसी बात क्यों? मैं तो गुलाम हू, आप मालकिन हैं।"

कामसुन्दरीने कहा—"तुम गुलाम मैं मालकिन, यह नयी बात नहीं है। जबतक जवानी है तबतक तो ऐसा ही रहेगा। अभी कलेवा करो।" कालीकान्तने सोचा—"अरे राम, इसका लक्षण तो बुरा है! हमारे बाबू तो बेढब औरतके फन्देमें फँस गये, मेरा यहासे चल देना ही ठीक है।"

यह सोचकर फिर कालीकान्त भागना ही चाहते थे कि कामसुन्दरीने आकर उनका दामन पकड लिया और कहा—"अरे मेरे प्यारे, मेरे सरवस, कहा भागे जाते हो!" यह कह उन्हें पीछेकी तरफ खैंचकर ले जाने लगी।

कालीकान्त हाथ जोड और हाहा खाकर कहने लगे—"दुहाइ बहूजी की। मुझे छोड दो, मेरा सुभाव तुम नहीं जानती हो। मै वैसा आदमी नहीं हू।" कामसुन्दरीने हँसकर कहा—"तुम जैसे आदमी हो, मै जानती हू। खैर! अभी कलेवा तो करो।"

कालीकान्त—"अगर किसीने मेरी बाबत तुमसे कुछ कह दिया हो तो उसने तुमको धोखा दिया है। हाथ जोडता हूँ छोड दो, तुम मेरी मालकिन हो।"

कामसुन्दरी जरा दिल्लगीपसन्द औरत थी। उसने इसे भी दिल्लगी समझकर कहा—"प्यारे, तुम कितनी हँसी सीखकर आये हो, यह मैं पीछे समझ लूगी।" यह कह वह कालीकान्त-को दोनों हाथोंसे पकड़ पीढ़ेपर बिठाने लगी।

हाथ पकड़ते ही कालीकान्तने समझा कि अब चौपट हुआ। बस, उसने चिल्लाना शुरू किया – "अरे दौड़ो, मार डाला, मार डाला बचाओ बचाओ।" चिल्लाना,सुनकर घरके सब लोग घबराकर दौड़ आये। मा-बहनोंको देखकर कामसुन्दरीने कालीकान्त को छोड़ दिया। वह मौका पाते ही सिरपर पैर रखकर भागे। मालकिनने पूछा—"क्यों री, वह भागे क्यों ? क्या तैंने मारा था?"

दुःखी होकर कामसुन्दरी बोली—"मारूं गी क्यों ? मेरा नसीब ही फूटा है। किसीने जादू कर दिया है—हाय, मेरा सत्यानाश हो गया।" आदि कहकर वह रोने धोने लगी।

सबने कहा—"तैंने जरूर मारा है, नही तो वह इतने दु खी क्यों होते?" सबने ही कामसुन्दरीको डाइन-चुड़ैल कहकर धिक्कारा और फटकारा। लाचार वह रोती-कलपती द्वार बन्द कर घरमें जा बैठी।

इधर कालीकान्तने बाहर आकर देखा कि खूब मार पीट हो रही है। नीलरतन बाबू और उनके नौकर चाकर रामाको बेतरह पीट रहे हैं। लात, जूता, लाठी, थप्पड़ोंसे उसको गोधनलीला हो रही है।

रामा कहता जाता है—"छोड़ दो, दमादपर ऐसी मार कहीं नहीं सुनी। मेरा क्या बिगड़ेगा, तुम्हारी ही बेटी राड़ होगी।" पास खड़ी हुई सुन्दरी दाई हँस रही है। वह बराबर कालीकान्तके घर आती जाती थी, इससे रामाको पहचानती

थी। उसीने भण्डा फोड़ा था। कालीकान्त यह लीला देख आगनमें टहलते हुए कहने लगे—"यह क्या गजब! बाबूको सभोंने मार डाला।" यह सुन नीलरतन बाबू और भी बिगड़े और रामासे बोले—"बदमाश! तैंने ही कुछ खिलाफर दामादको पागल कर दिया है। साले, तुझे जीता न छोड़ूंगा।" इतना कहते ही रामापर मूसलाधार जूतियां पड़ने लगीं। इस खैंचा तानीमें रामाकी चादरसे सोनेका पासा गिर पड़ा। सुन्दरीने उसे उठाकर नीलरतनके हाथमें दे दिया और कहा—"अरे! यह चोर है, कहींसे पासा चुरा लाया? नीलरतनने "देखूं क्या है" कहकर हाथमें ले लिया। बस फिर क्या था, उन्होंने रामाको छोड़ धोती खोल घूंघट काढ़ लिया, सुन्दरीने घूंघट खोल टांग मार ली और फिर रामाको ठोकने लगी।

ऊधोने सुन्दरीसे कहा—"अरी, तू औरत हो इस बीचमें क्यों आ कूदी?"

सुन्दरी बोली—"तू औरत किसे कहता है?"

ऊधो बोला—"तुझे और किसको?"

"मुझसे ठट्ठा करता है' यह कह सुन्दरीने ऊधोपर जूतियां फटकारा। ऊधो औरतपर हाथ छोड़ना उचित न जान आग बबूला हो नीलरतनसे बोला—"देखिये मालिक, इस औरतकी बदमाशी, मुझे जूतियां मारती है। इसपर नीलरतन जरा मुसकरा और घूंघट काढ़कर बोले—"मारा तो क्या हुआ? मालिक है,

जो चाहें कर सकते हैं। यह सुन ऊधोका गुस्सा और भी बढ़ गया। बोला—"वह कैसी मालकिन! जैसा मैं नौकर वैसी वह। मैं आपका नौकर हूं—उसका नहीं। जाइये, ऐसी नौकरी नहीं करता।" नीलरतनने फिर जरा हंसकर कहा—"चल दूर हो, बुढापेमें ठट्ठा करने चला है। मेरा नौकर तू क्यों होने चला?"

ऊधोकी अक्ल गुम हो गयी। उसने सोचा कि आज यह क्या मामला है सबके सब पागल हो रहे हैं। वह रामाको छोड अलग जा खडा हुआ।

इतनेमें गाय चरानेवाला गोवर्द्धन घोप वहीं आ पहुंचा। वह सुन्दरीका खसम था। वह सुन्दरीकी हालत देख अचम्भेमें आ गया। सुन्दरी उसे देख उससे मस न हुई, पर नीलरतन घूंघट काढ एक ओर खडे हो गये और धीरे धीरे बोले—"उसके भीतर मत जाइये।" गोवर्द्धन सुन्दरीका रंग ढंग देखकर बहुत नाराज हो गया था। उसने इनकी बात नहीं सुनी। "हराम आदी लुची, तुझे जरा लाज-शरम नहीं है।" यह कह गोवर्द्धन आगे बढ़ना ही चाहता था कि सुन्दरी बोली—"गोवर्द्धन, तू भी पागल हो गया क्या? जा, गायको सानी दे।" इतना सुनते ही गोवर्द्धन सुन्दरीका झोंटा पकड पीटने लगा। यह देख नील रतन बाबू बोले—"अरे डाढीजार, मालिककी जान क्यों लेता है?" इधर सुन्दरी भी बिगडकर गोवर्द्धनपर हाथ साफ करने लगी। उस समय बडी हलचल मच गयी। गुल गपाडा सुनकर अडोस-पडोसके राम, श्याम, गोविन्द आ इकट्ठे हुए। रामने

सोनेका पासा पड़ा देखकर उठा लिया और श्यामको देखकर कहा—देखो, यह क्या है ?

कैलासपर पार्वतीजीने कहा—"नाथ, अब आप अपने पासेको रोकिये। देखिये, गोविन्द बूढ़े रामके घरमें घुसकर उसकी बूढ़ी स्त्रीको अपनी स्त्री कह रहा है। इसपर रामकी दासी उसे झाड़ू मार रही है। इधर बूढ़ा राम अपनेको गोविन्द समझ उसकी जवान स्त्रीसे छेड़-छाड़कर गले लगा रहा है। अगर यह पासा पृथ्वीपर रहेगा तो घर घरमें उपद्रव खड़ा हो जायगा। इसलिये इसे अब रोकिये।

महादेवजी बोले—हे शैलसुते! इसमें मेरे पासेका क्या दोष है? यह लीला पृथ्वीपर क्या नई हुई है? तुम क्या रोज नहीं देखती हो कि बूढ़े जवान बनते और जवान बूढ़े बनते हैं, मालिक नौकरकी तरह काम करते और नौकर मालिककी शानमें शान मिलाते हैं? तुमने क्या नहीं देखा है कि मर्द औरत और औरत मर्दका स्थान लेती जाती है। यह सब तो यहां नित्य होता है, परन्तु कोई देखता नहीं। मैंने एक बार सबको दिखला दिया, अब पासेको रोकता हूं। मेरी इच्छासे अब सब होशमें आ जायगे और किसीको यह घटना याद न रहेगी। पर मेरे वरसे "वंगदर्शन"* यह कथा लोक हितार्थ संसारमें प्रचारित करेगा।

---

* बंगला मासिकपत्र जिसमें पहले छपा था।

वड़ंपुच्छा बाघाधिराज

सुन्दरवनमें एक वार घाघोंकी महासभा हुई। घोर वनके भीतर लम्बी चौडी जगहमें वहुतसे खूखार वाघ दांतोंकी दमकसे जङ्गलको जगमगाते हुए दुमके सहारे वैठ गये। सबने एक राय होकर वडपेटा नामके अति वूढे वाघको सभापति वनाया। वड-पेटा महाराजने लागूलासन ग्रहण करके सभाका कार्य आरम्भ किया। उन्होंने सभासदोंको सम्बोधनकर कहा —

"आज हमारे लिये कैसा शुभ दिन है। आज हम जितने वनवासी मांसाभिलाषी व्याघ्रकुलतिलक हैं, सव परस्पर कल्याण करनेके लिये इस वनमें एकत्र हुए हैं। अहा! निन्दक और दुष्ट स्वभावके और और जानवर कहते फिरते हैं कि वाघ वडे असा-माजिक होते हैं, जङ्गलमें अकेले रहना पसन्द करते हैं और इनमें एकता नहीं है, पर आज सव सुसभ्य वाघमण्डली यह बातें झूठी सावित करनेके लिये यहां उपस्थित है। इस समय सभ्य ताकी दिन दिन जैसी वृद्धि हो रही है, इससे पूरी आशा व्याघ्र शीघ्र ही सभ्योंके सिरताज हो जायगे। अभी विधातासे यही चाहता हूं कि आप लोग प्रति दिन इसी प्रकार जाति हितै-षिता प्रकाश करते हुए परम सुखसे नाना प्रकारके पशुओंको मारते रहें।"

(सभामें दुमोंकी फटाफट)

"भाइयो, हम जिस कामके लिये यहां इकट्ठे हुए हैं, अव वह

संक्षेपसे बताता हूं। आप सब लोग जानते ही हैं कि सुन्दरवनके व्याघ्र समाजमें विद्याकी चर्चा धीरे धीरे लुप्त होती जाती है। हमलोगोंकी चिरकाल अभिलाषा है कि हम सब विद्वान् हों, क्योंकि आजकल सब ही विद्वान् हो रहे हैं। विद्याकी चर्चाके लिये ही यह व्याघ्रसमाज स्थापित हुआ है। अब मेरा कहना यही है कि आप लोग इसका अनुमोदन करें।"

सभापतिकी वक्तृता समाप्त होनेपर सभासदोंने तर्जन-गर्जन-कर इस प्रस्तावका अनुमोदन किया। पीछे यथारीति कई प्रस्ताव उपस्थित किये गये और अनुमोदित होकर स्वीकृत हुए। प्रस्तावोंपर बड़ी-बड़ी वक्तृताएं हुईं। वह व्याकरण शुद्ध और अलंकार विशिष्ट जरूर थीं, पर शब्दोंकी छटा बड़ी भयंकर थी। वक्तृताओंकी चोटसे सारा सुन्दरवन कांप उठा।

इसके बाद सभाके और और काम हुए। सभापतिने फर्माया, "आप लोग जानते हैं कि इस सुन्दरवनमें बड़पुच्छा नामके एक बड़ विद्वान् बाघ रहते हैं। उन्होंने आज रातको हमारे अनुरोधसे मनुष्य-चरित्रके संबन्धमें एक प्रबंध पाठ करना स्वीकार किया है।"

मनुष्यका नाम सुनते ही कुछ नवीन सभासदोंको बेतरह भूख लग आयी थी, पर पब्लिकडिनरकी (गोठकी) सूचना न पा बेचारे मन मारकर रह गये। बड़पुच्छा बाघाचारज सभापति महाशयकी आज्ञा पा दहाड़ते हुए उठ खड़े हुए। आपने ऐसे स्वरमें प्रबन्ध-पाठ करना प्रारम्भ किया कि जिसे सुन पथिकोंके प्राण सूख जाय।

आपका प्रबन्ध यों आरम्भ होता है—"सभापति महाशय, बाघनियो और भले बाघो ! मनुष्य एक तरहका दोपाया जानवर है। उनके पर नहीं होते इसलिये वह पक्षी नहीं कहे जा सकते, बल्कि चौपायोंसे वह मिलते-जुलते हैं। चौपायोंके जो-जो अङ्ग और हड्डिया हैं, मनुष्योंके भी वैसे ही हैं। इसलिये मनुष्योंको एक तरहका चौपाया कहा जा सकता है। अन्तर इतना ही है कि चौपायोंकी बनावट जैसी है, मनुष्योंकी वैसी नहीं है। केवल इसी अन्तरके कारण मनुष्योंको दोपाया समझ उनसे घृणा करना हमारा कर्त्तव्य नही है।

चौपायोंमें बन्दरोंसे मनुष्य बहुत मिलते-जुलते हैं। विद्वानों-का कहना है कि समय पाकर पशुओंके अङ्गोंमें उत्कर्षता आ जाती है। एक तरहके अङ्गके पशु धीरे धीरे दूसरे सुन्दर पशुओंके रूपको प्राप्त करते हैं। हमें आशा है कि मनुष्य पशुके भी समय पाकर दुम निकलेगी और फिर वह धीरे धीरे बदर हो जायगा।

यह तो आप सब लोग जानते ही हैं कि मनुष्य पशु अत्यन्त स्वादिष्ट और भक्षणके योग्य पदार्थ है। (यह सुनकर सभ्योंने अपना मुह चाटा) मनुष्य सहज ही मरते हैं। हरिणकी तरह वह छलांगें नहीं मार सकते, न भैंसेकी तरह बलवान ही हैं और न उनके पास सींगोंका हथियार ही है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि परमात्माने यह ससार बाघोंके सुखके लिये ही बनाया है। इसीसे व्याघ्रोंके उपादेय भोज्य पशुको भागने या आत्मरक्षा करनेकी सामर्थ तक न दी। वास्तवमें मनुष्यको इतना

कमजोर देखकर आश्चर्य होता है। न जाने भगवानने इन्हें क्यों बनाया। न इनके दात हैं और न सींग। इनकी चाल भी बडी धीमी है। स्वभाव बडा कोमल है। घासोंके पेट भरनेके सिवा इनके जीवनका और कुछ उद्देश्य नहीं मालूम होता है।

इन कारणोंसे, विशेषकर मनुष्योंके मासकी कोमलताके कारण हमलोग उनको बहुत पसन्द करते हैं। देखते ही उन्हें खा जाते हैं। आश्चर्यका विषय तो यह है कि मनुष्य भी बडे *व्याघ्रभक्त होते हैं। यदि आपको इसका विश्वास न हो तो मैं एक* आपबीती घटना सुनाता हूं।

आप जानते हैं कि मैं बहुत दिनोंतक देशाटनकर बहुदर्शी हो गया हू। मैं जिस देशमें था वह इस व्याघ्रभूमि सुन्दरवनके उत्तरमें है। वहां गाय, बैल, मनुष्य आदि छोटे-छोटे हिंसा न करनेवाले जीव रहते हैं। वहां दो रगके मनुष्य हैं--काले रंग और गोरे रगके। वहीं मैं एक बार ससारी कर्मके लिये चला गया।

यह सुनकर बडदन्ता नामक एक ढीठ बाघ बोल उठा कि सांसारिक कर्म किसे कहते हैं ?

बडपुच्छाने कहा—सांसारिक कर्म आहारान्वेषण यानी खानेकी तलाशका नाम है। अब सभ्य लोग खानेकी तलाशको सांसारिक कर्म कहते हैं। सभी खानेकी खोजको सांसारिक कर्म कहते हैं, यह बात नहीं है। बडे लोगोंके आहारान्वेषण यानी खानेक। तलाशका नाम सासारिक कर्म है, छोटे लोगोंके खानेकी तलाशका नाम ठगी, भिखमंगी है। धूर्तो के खानेकी तलाशका

नाम चोरी और जबरदस्तके खानेकी तलाशका नाम डकैती है। मनुष्य विशेषके सम्बन्धमें डकैती शब्दका व्यवहार न हो वीरता-का होता है। जिस डाकूको दण्ड देनेवाला है, उसीके कामका नाम डकैती है। जिस डाकूको दण्ड देनेवाला नहीं है, उसके कामका नाम वीरता है। आप लोग जब सभ्य-समाजमें रहें, तब इस नाम वैचित्र्यको याद रखें, नहीं तो लोग असभ्य कहेंगे। वास्तवमें मेरी समझसे इतने वैचित्र्यकी आवश्यकता नहीं। एक पेटपूजा कह देनेसे ही वीरतादि सबही बातें समझी जाती हैं।

खैर, जो कह रहा था वह सुनिये। मनुष्य बड़े व्याघ्रभक्त हैं। मैं सासारिक कर्म्मके लिये एक बार मनुष्योंकी बस्तीमें जा पहुंचा। आप लोगोंने सुना होगा कि इस सुन्दरबनमें कई साल हुए पोर्टकैनिंगकम्पनी खडी हुई थी।

बडदन्ता फिर पूछ बैठा कि पोर्टकैनिंगकम्पनी कैसा जानवर है?

बडपु च्छा बोला—यह मुझे ठीक मालूम नहीं। इस जानवरकी सूरत-शकल, हाथ-पैर कैसे थे, हत्या करनेकी प्रकृति कैसी थी, यह मालूम नहीं। सुना है, मनुष्योंने ही इस जानवरको खडा किया था। मनुष्योंके हृदयका रक्त ही यह पीता था। रक्त पी पीकर इतना मोटा हुआ कि मर ही गया। मनुष्य कभी किसी बातका परिणाम नहीं सोचते। अपने मरनेका उपाय आप ही ढूंढ निकालते हैं, इसका प्रमाण अस्त्रादि हैं। मनुष्योंका संहार करना ही इन अस्त्रोंका उद्देश्य है। सुना है कि कभी-कभी एक-एक हजार मनुष्य मैदानमें इकट्ठे हो इन अस्त्रोंसे एक दूसरेको मार

डालते हैं। मालूम होता है कि मनुष्योंने एक दूसरेकी हत्या करनेके लिये ही पोर्टकैनिंगकम्पनी नामक राक्षसीको खडा किया था। खैर, आप लोग मनुष्य-वृतान्त ध्यान लगा लगा सुनिये। बीचमें छेडछाड करनेसे वक्तृताका मजा बिगड जाता है। सभ्य जातियोंका यह नियम नहीं है। अब हमलोग सभ्य हो गये हैं। सब काम सभ्योंके नियमानुसार होने चाहिये"।

मैं एक बार इसी पोर्टकैनिंगकम्पनीके वासस्थान मातलामें सांसारिक कर्मके हेतु चला गया। वहां घासके मण्डपमें कोमल मांसवाला बकरीका एक बच्चा कूदता हुआ नजर आया। मैं उसका स्वाद लेनेके लिये मंडपमें घुस गया। वह मंडप जादूका था। पीछे मालूम हुआ कि मनुष्य उसे फंदा कहते हैं। मेरे घुसते ही द्वार आप ही आप बंद हो गया। पीछे कई मनुष्य वहां आ पहुंचे। वह मेरे दर्शनसे बहुत आनन्दित हुए। कोई हंसता था, कोई चिल्लाता था और कोई ठठोली करता था। वह [illegible] बडी बडाई कर रहे हैं, यह मैंने समझ लिया था। को[illegible] तारीफ करता, कोई दांतोंपर कुर्बान था, [illegible] था और कोई दुम[illegible] गाता था। [illegible] कहते हैं, हो-होक [illegible] कहने लगे। [illegible] लोगोंने [illegible] उठाकर [illegible]। दो [illegible] उन्हें दे[illegible] राल पडी। बचे हुए [illegible]।

बकरेका मास खाता एक मनुष्यके घरमें घुसा, मेरे सत्कारके लिये उसने स्वय द्वारपर आकर मेरा स्वागत किया। लोहेके एक घरमें मेरे रहनेका प्रबन्ध हुआ, जीते या तुरतके मरे बकरे, मेढे, वैल वगैरहके उपादेय मास और रक्तसे मेरा सत्कार होने लगा। दूर दूरके मनुष्य मुझे देखनेको आने लगे। मैं भी समझता था कि यह मुझे देखकर कृतार्थ हो रहे हैं।

मैंने बहुत दिनोंतक उस लोहेके घरमें वास किया। वह सुख छोडकर आनेकी इच्छा न थी, पर स्वदेशानुरागके कारण न रह सका। अहा! जब जन्मभूमिकी याद आती तो दहाडता और कहता था कि हे माता सुन्दरवन-भूमि, मैं क्या कभी तुझे भूल सकता हू? जब तेरी याद आती तो मैं बकरेका मांस, मेढेका मांस छोड देता (यानी हड्डी और चमडा ही छोडता) और पू छ पटक पटककर मनकी चिन्ता सबको बताता था। जन्मभूमि, जबतक तुझे मैंने नहीं देखा तबतक मैंने भूख लगे विना खाया नहीं, नींद विना सोया नहीं। अपने कष्टकी बात और क्या बताऊ, पेटमें जितना समाता उतना ही खाता, ऊपरसे दो-चार सेर मास और खा लेता था और कुछ नहीं खाता।

जन्मभूमिके प्रेमसे विह्वल हो घडपु च्छा जी बहुत देरतक चुप रहे। मालूम हुआ, उनको आख डबडबा आयी हैं, दो चार बू दें गिरनेका निशान भी जमीनपर दिखायी दिया था, पर कुछ युवक व्याघ्र यह बात माननेके लिये तैयार न थे। वे कहते थे कि यह बडपु च्छाके आसुओंकी बू दें नहीं हैं, राल हैं जो मनुष्योंके यहाके खानेकी याद आ जानेसे गिरी थीं।

मनुष्यजन्तु मास और फल-मूल दोनों खाते हैं। बडे-बडे पेड नहीं खा सकते, पर छोटे-छोटे पेड जड सहित भकोस जाते हैं। मनुष्य छोटे-छोटे पेड़ इतना पसन्द करते हैं कि उनकी खेती कर हिफाजतसे रखते हैं। हिफाजतसे रखी हुई ऐसी जगहको खेत या बगीचा कहते हैं। एकके बागमें दूसरा नहीं चर सकता।

मनुष्य फल-मूल लता पत्ते को जरूर खाते हैं, पर घास चरते हैं या नहीं, पता नहीं। कभी किसी मनुष्यको घास चरते नहीं देखा, पर इसमें मुझे कुछ शक है। गोरे और काले धनी मनुष्य अपने-अपने बगीचोंमें बडी मिहनतसे घास लगाते हैं। मेरी समझ-से वह लोग घास खाते हैं। नहीं तो घासके लिये इतनी मिहनत क्यों? मैंने एक काले मनुष्यसे यह सुना था। वह कहता था—"देशका सत्यानाश हो गया—"जितने बडे-बडे धनी और साहब हैं, बैठे-बैठे घास खाते हैं।" इसलिये बडे लोग घास खाते हैं, यह एक तरहसे ठीक ही है।

मनुष्य क्रुद्ध होते हैं तब कहते हैं—"क्या मैं घास चरता हू?" मैं जानता हू मनुष्योंका स्वभाव ऐसा ही है। वह जो काम करते हैं, उसे बडी मिहनतसे छिपाते हैं। इसलिये जब वह लोग घास खानेकी बातपर नाराज होते हैं, तब यह अवश्य सिद्धान्त करना होगा कि वह घास खाते हैं।

जेम्स मिलने सिद्ध किया है कि प्राचीन कालके भारतवासी असभ्य थे और संस्कृत असभ्य भाषा है। सचमुच व्याघ्र विद्वान् और मनुष्य विद्वान्में अधिक भेद नहीं है।

मनुष्यपशु पूजा करते हैं। मेरी जैसी पूजा की थी, वह बता चुका हू। घोडोंकी भी वह इसी तरह पूजा करते हैं। घोडोंको रहनेके लिये जगह देते हैं, खानेका बन्दोबस्त करते हैं और नह लाते धुलाते हैं। मालूम होता है कि घोडे मनुष्यसे श्रेष्ठ पशु हैं, इसीसे मनुष्य उनकी पूजा करते हैं,

मनुष्यभेड, बकरियां, गाय, बैल भी पालते हैं। गाय-बैलोंके साथ उनका अजीब सलूक देखा गया है। वह गायोंका दूध पीते हैं। इसीसे पुराने समयके व्याघ्र विद्वानोंने यह सिद्धान्त निकाला है कि मनुष्य किसी समय गायोंके बछडे थे। मैं यह तो नहीं कहता, पर इतना जरूर कहता हू कि दूध पीनेके सबब ही मनुष्य और बैलोंकी बुद्धिमें समानता है।

खैर, मनुष्य भोजनके सुभीतेके लिये गाय-बैल, भेड बकरियां पालते हैं। बेशक, यह अच्छी चाल है। मैंने यह प्रस्ताव करनेका विचार किया है कि हमलोग भी मनुष्यशाला बनवाकर मनुष्यों-को पालें।

भेड-बकरियोंके सिवा हाथी, ऊँट, गधे, कुत्ते, बिल्लिया, यहां तक कि चिडिया भी इनके यहा भोजन पाती हैं। इसलिये मनुष्य सब पशुओंका सेवक भी कहा जा सकता है।

मनुष्योंमें बन्दर भी बहुत दिखायी दिये, पर बदर दो हैं। एक दुमदार और दूसरे बेदुम। दुमदार बन्दर अक्स या पेडोंपर रहते हैं, नीचे भी बहुतेरे बन्दर रहते हैं, पर ऊँचे पदपर ही रहते हैं। ...दा या जाति ... कारण प्रतीत होता...

मनुष्य चरित्र बडा विचित्र है। इनके विवाहकी रीति बडी ही मजेदार है। इनकी राजनीति तो और भी गजबकी है, धीरे-धीरे मैं सब बताता हू।"

यहांतक प्रबन्ध पढा जानेपर सभापति महाशयकी दृष्टि, दूर खड़े एक मृग-छौनेपर जा पड़ी। फिर क्या था, आप कुर्सीसे कूदकर चम्पत हो गये। बडपेटा बाघ इसी दूरदर्शिताके कारण सभापति बनाये गये थे। सभापतिको अकस्मात् विद्यालोचनासे भागते देख प्रबन्ध पाठक मनमें कुछ खिन्न हुआ। एक विज्ञ सभासदने उसके मनका भाव देखकर कहा—"आप नाराज न हों। सभापति महाशय सासारिक कर्मके लिये भागे हैं। हरिणोंका झुण्ड आया है, मुझे महँक लगी है।

इतना सुनते ही सभासद लोग सासारिक कर्म्मके लिये जिधर पाये, उधर पूछ उठाकर दौड़ गये। प्रबन्ध पढनेवालेने भी इन विद्यार्थियोंका अनुगमन किया। इस प्रकार उस दिन व्याघ्रोंकी सभा बीचमें ही भग हो गयी।

एक दिन फिर उन लोगोंने सलाह कर खानेके बाद सभा कर डाली। उस दिन सभाका काम निर्विघ्न हुआ। प्रबन्धका शेषांश पढा गया था। इसकी रिपोर्ट आनेपर प्रकाशित की जायगी।

दूसरा प्रबन्ध

सभापति महाशय, बाघनियो और भले बाघो!

पहले व्याख्यानमें मैंने मनुष्योंके विवाह तथा और और

विषयोंके बारेमें कुछ कहनेकी प्रतिज्ञा की थी। भलेमानसोंका प्रधान धर्म्म प्रतिज्ञा पालन नहीं है। इसलिये मै एक साथ ही अपने ही विषयपर कहना आरम्भ करता हू।

ब्याह किसे कहते हैं, यह आप लोग जानते ही हैं। अब कालके अनुसार सब ही बीच-बीचमें ब्याह करते रहते हैं, पर मनुष्योंके व्याहमें कुछ विचित्रता है। व्याघ्रादि सब पशुओंका ब्याह जरूरत पडनेपर होता है, मनुष्य पशुओंमें ऐसी चाल नहीं है। उनमें अधिक लोग एक ही समय जन्मभरके लिये ब्याह कर लेते हैं।

मनुष्योंके व्याह नित्य और नैमित्तिक दो प्रकारके होते हैं। इनमें नित्य अर्थात् पुरोहितविवाह ही मान्य है। पुरोहितको बीचमें डालकर जो विवाह होता है, उसका ही नाम पौरोहित विवाह है।

बृहदन्ता—"पुरोहित किसे कहते हैं?"

बड़पुच्छा—कोषमें लिखा है कि पुरोहित लड्डू खानेवाला और धूर्तता करनेवाला मनुष्य विशेष है, पर यह व्याख्या ठीक नहीं, क्योंकि सब ही पुरोहित लड्डू खानेवाले नहीं हैं। बहुतेरे शराब और कबाब उड़ाते हैं और कुछ तो सब कुछ भकोसते हैं। इसके सिवा लड्डू खानेसे ही कोई पुरोहित नहीं होता है। बनारस नामके नगरमें साड़ मिठाई खाते हैं, पर वह पुरोहित नहीं, क्योंकि वह धूर्त नहीं होते। धूर्त यदि लड्डू खाय तो वह पुरोहित होता है।

पौरोहितविवाहमें वर-कन्याके बीचमें एक पुरोहित बैठता है और कुछ बकता है। इस बकवादका नाम मन्त्र है। इसका अर्थ क्या है, यह मैं अच्छी तरह नहीं जानता। पर विद्वान् होनेके कारण मैंने उसका अभिप्राय क्या है, यह एक तरहसे अनुमान कर लिया है। शायद पुरोहित कहता है—

"हे वर कन्या! मैं आज्ञा देता हूं, तुम दोनों ब्याह कर लो। तुम्हारे ब्याह करनेसे मुझे रोज लड्डू मिला करेंगे, इसलिये ब्याह कर लो। इस कन्याके गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन और प्रसूतिकागारमें लड्डू मिलेंगे, इसलिये ब्याह करो। बालककी छठी अन्नप्रासन, कर्णछेदन, चूडाकरन या उपनयनके समय बहुत लड्डू मिलेंगे, इसलिये ब्याह करो। तुम्हारे गृहस्थ होनेसे बराबर तीज त्योहार, पूजा पाठ और श्राद्ध हुआ करेंगे तो मुझे भी लड्डू मिलेंगे, इस हेतु ब्याह करो। ब्याह करो और कभी इस सम्बन्धको मत तोडो, अगर तोडोगे तो मेरे लड्डूओंकी हानि होगी। हानि होनेसे मैं मारे थप्पडोंके मुंह लाल कर दूंगा। हमारे पुरुखोंकी यही आज्ञा है।"

इसीसे मालूम होता है कि पौरोहित विवाह कभी नहीं टूटता है।

हमलोगोंमें विवाहकी जैसी प्रथा प्रचलित है, उसे नैमित्तिक प्रथा कह सकते हैं। मनुष्योंमें यह विवाह भी साधारणत प्रचलित है। बहुतेरे नर-नारी नित्य-नैमित्तिक दोनों ब्याह करते हैं। नित्य और नैमित्तिक विवाहोंमें केवल यही अन्तर है कि नित्य

व्याहको कोई छिपाता नहीं, पर नैमित्तिकको प्राणपणसे लोग छिपाते हैं। अगर कोई मनुष्य किसी दूसरे मनुष्यके नैमित्तिक व्याहका हाल जान पाता है तो वह उसे कभी कभी ठोंकता भी है। मेरी समझसे पुरोहितजी ही इस अनर्थके मूल हैं। नैमित्तिक व्याहमें उन्हें लड्डू नहीं मिलते, इसीसे इस व्याहको वह लोग रोकते हैं। उनकी शिक्षाके अनुसार नैमित्तिक व्याह करनेवालेको सभी पकडकर पीटते हैं। लेकिन मजा यह है कि छिप छिपकर सभी नैमित्तिक व्याह कर लेते हैं, पर दूसरोंको करते देखकर ठोंकते हैं।

इससे मैंने यही समझा है कि नैमित्तिक व्याह करनेके लिये अधिक मनुष्य सहमत हैं, पर पुरोहित आदिके डरसे बोल नहीं सकते। मैंने मनुष्योंमें रहकर जान लिया है कि बहुतसे बडे आदमी नैमित्तिक व्याहका बहुत आदर करते हैं। जो हम लोगोंकी तरह सुसभ्य हैं अर्थात् जिनकी पशुओंकी सी प्रवृत्ति हैं, वही इसमें हमारी नकल करते हैं। मुझे विश्वास है कि समय पाकर मनुष्य हमारी तरह सुसभ्य होंगे और नैमित्तिक व्याह मनुष्य-समाजमें चल जायगा। बहुतसे मनुष्य विद्वान् इस विषय के रुचिकर ग्रन्थ लिख रहे हैं। वह स्वजाति हितैषी हैं, इसमें सन्देह नहीं। मेरी समझमें उनका सम्मान बढ़ानेके लिये उन्हें व्याघ्र-समाजका अनाड़ी मेम्बर बनाना अच्छा है। आशा है वह सभामें उपस्थित हों तो आप उनका कलेवा न कर जायंगे, क्योंकि वह हमलोगोंका तरह नीतिज्ञ और संसार हितैषी हैं।

मनुष्योंमें एक विशेष प्रकारका नैमित्तिक ब्याह प्रचलित है, इसका नाम मौद्रिक यानी रुपयेका ब्याह है। इसमें मनुष्य रुपयेसे मानुषीका हाथ पकडता है, बस, ब्याह हो जाता है।

वडदन्ता—रुपया क्या?

वडपुच्छा—रुपया मनुष्योंका एक पूज्य देवता है। यदि आप लोगोंको अधिक चाव हो तो उसकी कथा सुनाऊ।

मनुष्य जितने देवता पूजते हैं, उनमें इसीपर उनकी अधिक भक्ति है। वह साकार है—सोने, चादी और ताम्बेकी इसकी मूर्ति बनती है। लोहे, टीन और लकडीका मन्दिर होता है। रेशम, ऊन, कपास और चमडेका सिंहासन बनता है। मनुष्य रात दिन इसका ध्यान करते और इसके दर्शनके लिये व्याकुल हो इधर-उधर दौडे फिरते हैं। मनुष्योंको जिस घरमें रुपयेका पता लगता है, वहा वह बराबर आवा-जाई करते हैं और मार खानेपर भी वहासे नहीं टलते। इस देवताका जो पुरोहित है यानी जिसके घरमें रुपया रहता है, वही मनुष्योंमें बडा माना जाता है। लोग रुपयेवालेको हाथ जोडे सदा स्तुति करते हैं। रुपयेवाला नजर उठाकर जिसकी ओर देखता है। वह अपनेको कृतार्थ समझता है।

रुपयेकी बडी जागती जोत है, ऐसा कोई काम ही नहीं, जो इसकी कृपासे न होता हो। ससारमें ऐसी कोई वस्तु ही नहीं जो इसके प्रसादसे न मिल सकती हो। ऐसा कोई दुष्कर्म्म ही नहीं जो इसके द्वारा न हो सकता है। ऐसा कौन दोष है जो

इसकी दयासे न छिप जाता हो ? रुपयेसे ही मनुष्य-समाजमें गुणका आदर होता है। जिसके पास रुपया नहीं, भला वह कैसे गुणी हो सकता है ? जिसके पास है, वह भला दोषी हो सकता है ? कभी नहीं। जिसके ऊपर रुपयेकी कृपा है, वही धर्म्म ध्वजी है। रुपयेका अभाव ही अधर्म्म है। रुपया होना ही विद्वत्ता है, विद्वान् होकर भी जिसके पास रुपया नहीं, वह मनुष्य शास्त्रके अनुसार मूर्ख है। 'बड़े बाघ' कहनेसे बड़पेटा, बड़दन्ता आदि बड़े-बड़े डीलडौलवाले बाघ समझे जाते हैं, पर मनुष्योंमें यह बात नहीं है। बड़ा जिसके घरमें रुपये होते हैं, वही "बड़ा आदमी" समझा जाता है। जिसके घरमें रुपये नहीं, वह डील डौलवाला होनेपर भी "छोटा आदमी" ही कहलाता है।

रुपयेकी इतनी बड़ाई सुनकर मैंने विचारा था कि मनुष्योंके यहांसे रुपयाजीको लाकर व्याघ्रपुरीमें स्थापित करूंगा, पर पीछे यह विचार त्यागना पड़ा, क्योंकि सुननेमें आया है कि रुपया ही मनुष्योंके अनिष्टका मूल है। व्याघ्रादि प्रधान पशु कभी स्वजातिकी हत्या नहीं करते, पर मनुष्य सदा करते हैं। रुपयेकी पूजा ही इसका कारण है, रुपयेके लालचमें पड़कर वे एक दूसरेका अनिष्ट करनेमें लगे रहते हैं। पहले व्याख्यानमें कह चुका हूं कि हजारों मनुष्य मैदानमें इकट्ठे हो एक दूसरेकी हत्या करते हैं। इसका कारण रुपया ही है। रुपयेसे मतवाले बनकर मनुष्य सदा एक दूसरेको मारते-काटते, बांधते-सताते, घायल करते और बेइज्जत करते हैं। ऐसा कोई अनिष्ट ही नहीं, जो रुपयेसे

न होता हो। यह सब हाल सुनकर मैंने रुपयेको दूर हीसे प्रणाम किया और उसकी पूजाका ध्यान छोड दिया।

पर मनुष्य यह नहीं समझते। मैं कह चुका हूं कि मनुष्य अपरिणामदर्शी होते हैं। सदा एक दूसरेकी बुराई किया करते हैं। वह लोग बराबर चांदी और तामेकी चकती इकट्ठी करनेके लिये चक्कर काटा करते हैं।

मनुष्योंका व्याह-तत्व जैसा आश्चर्यसे भरा हुआ है, वैसे ही और काम भी हैं, पर इस समय लम्बा व्याख्यान देनेसे आप लोगोंके सांसारिक कर्मका समय फिर आ पहुंचेगा, इसलिये आज यहीं बस करता हूं। यदि छुट्टी मिली तो और बातें फिर कभी सुनाऊंगा।

व्याख्यान समाप्त कर बडपुच्छा बाघाचारज महाराज पूंछोकी विकट फटफटमें बैठ गये। बडनंखा नामका एक सुशिक्षित युवा व्याघ्र उठकर कहने लगा—

व्याघ्र सज्जनो! मैं सुन्दर वक्तृता झाडनेके कारण वक्ताजी-को धन्यवाद देनेका प्रस्ताव करता हूं। पर साथ ही यह भी कहना अपना कर्त्तव्य समझता हूं कि यह वक्तृता बडी रद्दी हुई है। वक्ता बडा मूर्ख है और उसकी बातें असत्य हैं।

बडपेटा बोला—आप शान्त हों। सभ्य जातियां इतनी साफ गालियां नहीं देती हैं। गुप्त रूपसे आप चाहे इनसे भी बढकर गालियां दे सकते हैं।

बडनखाने कहा—जो आज्ञा। वक्ता बडा सत्यवादी है।

उसने जो कुछ कहा, उसमें अधिकाश बातें अस्वाभाविक होनेपर भी एकाध बात सच्ची हैं। आप बड़े विद्वान् हैं। बहुत लोग समझते होंगे कि इसमें कुछ सार नहीं है, पर हमलोगोंने जो कुछ सुना, उसके लिये कृतज्ञ होना चाहिये। फिर भी मैं वक्ताकी सब बातोंसे सहमत नहीं हो सकता। विशेषकर मनुष्योंके ब्याहके बारेमें वक्ता महाशय कुछ नहीं जानते हैं। पहले तो वह यही नहीं जानते कि मनुष्य ब्याह किसे कहते हैं। बाघोंमें वंशरक्षाके लिये जब कोई बाघ किसी बाघनीको सहचरी (साथमें चरनेवाली) बनाता है तो हमलोग उसे ही ब्याह कहते हैं। पर मनुष्योंका ब्याह ऐसा नहीं है। मनुष्य स्वभावसे ही दुर्बल और प्रभु भक्त होते हैं, इसलिये प्रत्येक मनुष्यको एक-एक प्रभु चाहिये। सभी मनुष्य एक-एक स्त्रीको प्रभु नियत करते हैं। इसीका नाम उनके यहां ब्याह है। जब वह किसीको साक्षी बना प्रभु नियत करते हैं तो वह पौरोहितविवाह कहाता है। साक्षीका नाम पुरोहित है। बड़-पुच्छाजीने विवाहमें मन्त्रोंकी जो व्याख्या की है, वह ठीक नहीं। वह मन्त्र यों है—

पुरोहित—कहिये, मुझे किस बातकी गवाही देनी होगी?

वर—आप साक्षी हों कि मैं इस स्त्रीको जन्मभरके लिये प्रभु नियुक्त करता हूं।

पुरो०—और?

वर—और मैं इसके श्रीचरणोंका दास हुआ। इसके आहार जुटानेका बोझ मेरे ऊपर और खानेका इसके ऊपर है।

पुरो०—(कन्यासे) तू क्या कहती है ?

कन्या—मैं खुशीसे इस दासको ग्रहण करती हूं। जबतक चाहूंगी इसे सेवा करने दूंगी, नहीं तो लात मार निकाल बाहर करूंगी।

पुरो०—शुभमस्तु।

और भी बहुतसी भूल हैं। रुपयेको इन्होंने मनुष्योंका देवता बताया है, पर वास्तवमें वह देवता नहीं है। रुपया एक तरहका विष-चक्र है। मनुष्य विषको बहुत पसन्द करते हैं। इसीसे रुपयेके लिये वह लोग मरते हैं। मनुष्योंको रुपयका इतना भक्त जानकर मैंने पहले समझा था कि रुपया न जाने कैसी अच्छी चीज है। इसका एक रोज स्वाद लेना चाहिये। एक दिन विद्याधरी नदीके किनारे एक आदमीको मारकर खाने लगा तो उसके कपडे-में कई रुपये मिले। मैंने तुरत उन्हें पेटमें धर लिया। दूसरे दिन पेटमें बडा दर्द उठा। इससे रुपया विष है, इसमें सन्देह ही क्या ?"

बडनखाकी वक्तृता समाप्त होनेपर और बाघोंने भी व्याख्यान झाड़े थे। पीछे सभापति बडपेटाने यों व्याख्यान देना आरम्भ किया—"अब रात अधिक हुई, सांसारिक कर्मका समय हो गया। हरिणोंका झुण्ड कब आयेगा, इसका क्या ठिकाना ? इसलिये लम्बी वक्तृता देकर समय बिताना उचित नहीं। आजका व्याख्यान बडा अच्छा हुआ। हम बाघाचारजजीका बडा गुण मानते हैं। मैं बस एक ही बात कहना चाहता हूं कि इन दो रोजके व्याख्यानोंसे आप लोगोंको जरूर मालूम हुआ होगा

कि मनुष्य बड़े असभ्य पशु हैं। हमलोग सभ्य हैं, इसलिये मनुष्योंको अपनी तरह सभ्य बनाना हमारा कर्त्तव्य है। मालूम होता है भगवानने मनुष्योंको सभ्य बनानेके लिये ही हमें इस सुन्दरवनमें भेजा है। मनुष्योंके सभ्य होनेसे उनका मांस और भी स्वादिष्ट हो जायगा और वह लोग जल्दी पकड़े भी जा सकेंगे। क्योंकि सभ्य होकर वह जान जायंगे कि बाघोंको अपने शरीरका भोजन कराना ही मनुष्योंका कर्त्तव्य है। बस यही सभ्यता उन्हें सिखानी चाहिये, इसलिये अब इधर ध्यान देना आवश्यक है। बाघोंको उचित है कि पहले मनुष्योंको सभ्य बनावें, पीछे उनका भोजन करें।

दुमोंकी चटाचटमें सभापतिने व्याख्यान समाप्तकर आसन ग्रहण किया। सभापतिको धन्यवाद दिये जानेपर सभा भंग हुई। जिसे जिधर भाया, सांसारिक कामके लिये चला गया।

जहां महासभाका अधिवेशन हुआ था, वहां चारों ओर बड़े-बड़े वृक्ष थे। कुछ बन्दर पत्तोंमें छिपकर उनपर बैठ गये और शेरोंकी वक्तृता सुनने लगे। शेरोंके चले जानेपर एक बन्दरने सिर निकालकर पूछा—क्यों भाई, डालोंपर बैठते तो हो?

दूसरेने कहा—जी हां, बैठा हूं।

पहला—चलो, हमलोग बाघोंके व्याख्यानकी आलोचना करें।

दूसरा—क्यों?

पहला—यह बाघ हमारे जन्मके वैरी हैं, चलो, निन्दाकर वैरका बदला निकालें।

दूसरा—जरूर जरूर, यह तो हमारी जातिके योग्य ही काम है।

पहला—अच्छा तो देख लो, आसपास कोई बाघ तो नहीं है।

दूसरा—नहीं है, तो भी आप जरा छिपकर ही बोलें।

पहला—तुमने यह ठीक ही कहा, नहीं तो न जाने कब किसी बाघके फेरमें पड़कर जान देनी पड़े।

दूसरा—हां, कहिये व्याख्यानमें भूल क्या है?

पहला—पहले तो व्याकरण अशुद्ध है, हमलोग व्याकरणके कैसे बड़े पण्डित होते हैं। इनका व्याकरण हमारे बन्दरोंके व्याकरण सा नहीं है।

दूसरा—इसके बाद?

पहला—इनकी भाषा बड़ी निकम्मी है।

दूसरा—हां, वह बन्दरोंकी सी बोली नहीं बोल सकते हैं।

पहला—बड़पेटाने जो यह कहा कि बाघोंका कर्त्तव्य है कि मनुष्योंको पहले सभ्य बनावें, पीछे उनका भक्षण करें, सो यह गलत है। कहना यह चाहिये था कि पहले भोजन करो, पीछे सभ्य बनाओ।

दूसरा—इसमें क्या सन्देह है—इसीसे तो हम बन्दर कहे जाते हैं।

पहला—कैसे व्याख्यान देना चाहिये और क्या बोलना चाहिये, यह वह नहीं जानते हैं। व्याख्यान देनेके समय कभी किलकारियां मारना, कभी कूदना-फांदना, कभी मुंह बनाना

और कभी जरा शकरकन्द खाना चाहिये। उनको हमसे व्याख्यान देना सीखना चाहिये।

दूसरा—हमसे सीखते तो वह बन्दर बन जाते, बाघ न होते।

(इतनेमें और भी दो चार बन्दर साहसकर बोल उठे।)

एकने कहा—"मेरी समझसे बड़पुच्छाके व्याख्यानमें सबसे बड़ा दोष यह है कि उसने अपनी अकलसे गढ़कर नयी-नयी बातें कही हैं। वह बातें किसी ग्रन्थमें नहीं मिलती हैं। जो पुराने लेखकोंके चर्व्वितचर्वणमें नहीं, वह दूषणके योग्य है। हमलोग सदासे चर्व्वितचर्वण करते हुए बन्दरोंमें भी श्रीवृद्धि करते चले आ रहे हैं। बड़पुच्छाने ऐसा न कहकर बड़ा पाप किया है।"

इसपर एक सुन्दर बन्दर बोल उठा—"मैं इस व्याख्यानमें हजारों दोष दिखा सकता हूं। मैंने हजारों जगह समझा ही नहीं। जो हमारी समझके बाहर है, वह दोषके सिवा और क्या हो सकता है?"

तीसरेने कहा—"मैं कोई विशेष दोष नहीं दिखा सकता। पर मैं बाघन तरहसे मुंह चिढ़ा सकता हूं और खुली-खुली गालियां देकर अपनी भलमनसी और ठठोलपन दिखला सकता हूं।"

बन्दरोंको बाघोंकी इस तरह निन्दा करते देख एक लम्बोदर बन्दरने कहा—"हमारे कोसा काटीसे बड़पुच्छा घर आकर जरूर मर जायगा? चलो, हम लोग शकरकन्द खायें।

विशेष संवाददाताका पत्र

युवराज प्रिन्स आफ वेल्सके साथ जो संवाददाता आये थे, उनमेंसे एकने किसी विलायती पत्रमें एक चिट्ठी छपवायी थी। उस पत्रका नाम जाननेके लिये कोई जिद्द न करे, क्योंकि उसका नाम हमें याद नहीं है। उस चिट्ठीका साराश इस प्रकार है —

युवराजके साथ आकर मैंने बङ्गालको जैसा पाया, वह अवकाशानुसार वर्णनकर आप लोगोंको प्रसन्न करनेकी इच्छा है। मैंने इस देशके विषयमें बहुत अनुसन्धान किया है। इसलिये मुझसे जैसी ठीक खबर मिलेगी, वैसी दूसरेसे नही मिल सकती। इस देशका नाम बङ्गाला है। यह नाम क्यों पडा, यह यहां वाले नहीं बता सकते। यहांवाले उस देशको अवस्था अच्छी तरह जानते ही नहीं, फिर भला वह कैसे बता सकते हैं? उनका कहना है कि इसके एक प्रान्तका नाम पहले बङ्ग था। उस प्रान्तके वासी अब भी "बङ्गाल" कहलाते हैं। इसीसे इसका नाम "बङ्गाला" हुआ है, पर इसका नाम बङ्गाला नहीं "बेङ्गाल" है। यह आप लोग जानते ही हैं। इसलिये उनका कहना गलत है, मालूम होता है बेनजामिन गैल (Benjamin Gall) संक्षेपमें बेनगल नामक किसी अङ्गरेजने इस देशको आविष्कृत और अधिकृतकर अपना नाम प्रसिद्ध किया है।

राजधानीका नाम "कालकाटा" (Calcutta) है। काल और काटा, इन दो बङ्गला शब्दोंसे इसकी उत्पत्ति है। उस नगरमें काल काटने यानी समय बितानेमें कोई कष्ट नहीं है, इसीसे इसका नाम 'काल्काटा' पड़ा।

वहाके निवासी कुछ तो घोर काले और कुछ गोरे हैं। जो काले हैं, उनके पुरखे शायद अफ्रिकासे आकर यहा बसे हैं, क्योंकि उनके बाल घूघरवाले हैं। नरतत्वविदोंका सिद्धान्त है कि जिनके बाल घूघरवाले हों, वे बस हब्शी ही हैं और जो जरा गोरे हैं, वे मालूम होता है, उक्त बेनगल साहबके वंशज हैं।

अधिकांश बगालियोंको मैनचेस्टरके बने कपडे पहनते देखा, इससे यह साफ सिद्धान्त निकलता है कि मनचेस्टरसे कपडे जानेके पहले बङ्गाली नगे रहते थे। अब मनचेस्टरकी कृपासे लज्जा निवारण कर सकते हैं। इन्होंने हाल हीमें कपडा पहनना सीखा है। इससे कैसे कपडे पहनने चाहिये, अभी ठीक नहीं कर सके हैं। कोई हम लोगोंकी तरह पेन्ट पहनता है, कोई मुसलमानोंकी तरह पाजामा चढाता है और कोई किसकी नक्ल करनी चाहिये यह स्थिर न कर सकनेके कारण कमरमें कपडा लपेट लेते हैं।

बङ्गालमें अगरेजी राज्यको बस एक ही सौ वर्ष हुए हैं। इसी बीचमें असभ्य नंगी जातियोंको कपडे पहनना सिखा दिया है। इससे इगलैण्डकी कैसी महिमा है और उससे भारतके धन और ऐश्वर्यकी कितनी वृद्धि हुई है, यह वर्णन नहीं किया जा

सकता। यह अंगरेज ही समझते हैं। बगालियोंमें इतनी बुद्धि कहा जो समझें।

अफसोस है, मैं इतने थोडे दिनोंमें बगालियोंकी भाषा अच्छी तरह न सीख सका। हा, कुछ थोडोसी सीख ली है। गुलिस्ता और बोस्ता नामकी जो दो बगला पुस्तकें हैं, उनका अनुवाद पढा है। इन दोनोंका साराश यही है कि युधिष्ठिर नामके राजाने रावण नामक राजाको मार उसकी रानी मदोदरीको हर लिया। मन्दोदरी कुछ दिन वृन्दावनमें रहकर कृष्णके साथ रास करने लगी। अन्तमें उसने दक्षयज्ञमें प्राण त्याग किया, क्योंकि उसके पिताने कृष्णको निमन्त्रण नहीं दिया था।

मैंने कुछ-कुछ बगला सीखी है। बंगाली हाईकोर्टको हाईकोर्ट गवर्नमेन्टको गवर्नमेन्ट, डिक्रीको डिक्री, डिसमिसको डिसमिस, रेलको रेल, डोरको डोर और डबलको डबल कहते हैं। ऐसे ही और भी शब्द हैं। इससे साफ प्रगट होता है कि बंगला भाषा अंगरेजीकी शाखामात्र है।

इसमें एक सन्देह है। अगर बंगला अंगरेजीकी शाखा है तो अंगरेजोंके आनेके पहले बगालियोंकी कोई भाषा थी या नहीं? हमारे क्राइस्टके नामपर उनके प्रधान देवता कृष्णका नाम रखा गया है और यूरोपके अनेक विद्वानोंके मतानुसार इनकी प्रधान पुस्तक भगवद्गीता बाइबलका उल्था है। इसलिये बाइबलके पहले इनकी कोई भाषा नहीं थी, यह एक तरहसे निश्चित ही है। इसके बाद कब इनकी भाषा बनी, यह नहीं कहा जा सकता।

पण्डित मोक्षमूलर यदि ध्यान दें तो कुछ पता चल सकता है। जिसने पता लगाया है कि अशोकके पहले आर्यगण लिखना नहीं जानते थे, वही भयंकर विद्वान् इसका भी पता लगानेमें समर्थ होगा।

और एक बात है। विलियम जोन्ससे लेकर मोक्षमूलरतक कहते हैं कि बंगालमें संस्कृत नामकी एक भाषा और है, पर वहां जाकर मैंने किसीको संस्कृत बोलते या लिखते नहीं देखा। इसलिये वहां संस्कृत भाषा है, इसका मुझे विश्वास नहीं है। शायद यह विलियम जोन्सकी कारस्तानी है। उन्होंने नामवरीके लिये संस्कृत भाषाकी सृष्टि की है।*

खैर, अब बंगालियोंकी सामाजिक अवस्थाकी बात सुनिये। आप लोगोंने सुना होगा कि हिन्दू चार जातियोंमें बंटे हुए हैं। पर यह बात नहीं है। उनमें बहुतसी जातियां हैं। उनके नाम यों हैं—

१—ब्राह्मण, २—कायस्थ, ३—शूद्र, ४—कुलीन, ५—बंशज, ६—वैष्णव, ७—शाक्त, ८—राय, ९—घोषाल, १०—टैगोर, ११—मुल्ला, १२—फराजी, १३—रामायण, १४—महाभारत, १५—आसाम गोआलपाडा, १६—परियाकुत्ते।

बंगालियोंका चरित्र बड़ा खराब है। वे बड़े ही झूठे हैं, बिना सबब भी झूठ बोलते हैं। सुनते हैं बंगालियोंमें सबसे बड़े विद्वान्

---

* यह हंसीकी बात नहीं है। ग्लासस्टुआर्ट साहबकी सचमुच यही राय थी।

बाबू राजेन्द्रलाल मित्र हैं। मैंने कई बंगालियोंसे पूछा था कि वह कौन जाति हैं? सबने कहा—कायस्थ, पर वह सब मुझे धोखा न दे सके, क्योंकि मैंने विद्वद्वर मोक्षमूलरकी पुस्तकोंमें पढ़ा था कि राजेन्द्रलाल मित्र ब्राह्मण हैं। इसके सिवा Mitra शब्द Mitres का अपभ्रंश मालूम होता है, इससे मित्र महाशय पुरोहित जातिके ही जान पड़ते हैं।

बंगालियोंका एक विशेष गुण यही है कि वह बड़े ही राजभक्त हैं। जिस तरह लाखों आदमी युवराजको देखने आये थे, उससे यही मालूम हुआ कि ऐसी राजभक्त जाति संसारमें दूसरी नहीं जन्मी है। ईश्वर हमारा कल्याण करे, जिससे उनका भी कुछ कल्याण हो ही रहेगा।

सुना है, बंगाली अपनी स्त्रियोंको परदेमें रखते हैं। यह ठीक है, पर सब जगह नहीं*। जहां कुछ लाभकी आशा नहीं है, वहां स्त्रियां परदेमें रखी जाती हैं, पर लाभका द्वार होते ही वह बाहर निकाली जाती हैं। हमलोग Fowling piece (शिकारी बन्दूक) से जो काम लेते हैं, बंगाली अपनी परदेनशीन औरतोंसे वही काम लेते हैं। जरूरत न होनेसे बक्समें बन्द रखते हैं। शिकार देखते ही बाहर निकाल उनमें बारूद भरते हैं। बन्दूककी गोलियोंसे पक्षियोंके पर गिरते हैं। बंगालिनोंके नयनबाणसे किसके पर गिरनेकी संभावना है, नहीं कह सकता। बंगालिनोंके गहनेके जैसे गुण मैंने देखे हैं, इससे मैंने भी Fowling piece को

* कुछ बंगालिनोंने परदेसे निकल युवराजकी अभ्यर्थना की थी।

सोनेका गहना पहनाना घिचारा है। देखें, चिडिया लौटकर वन्दूकपर गिरती है या नहीं।

नयनवाण ही क्यों? सुना है बङ्गालिनें पुष्पवाण चलानेमें भी बडी चतुर होती हैं। हिन्दू-साहित्यके पुष्पवाण और बङ्गालिनोंके छोडे पुष्पवाणमें कुछ सम्बन्ध है या नहीं, मैं नहीं जानता। यदि हो तो उन्हें दुराकांक्षिणी कहना पडेगा। जो हो, इस फूलवाणका प्रचार न हो यही अच्छा है। नहीं तो अंगरेजोंका यहां ठहरना कठिन हो जायगा। मैं सदा डरता रहता हू कि कहीं बङ्गालिनोंके छोडे पुष्पवाण फटे तम्बूको छेदकर मेरे कलेजेको न पार कर जाय। अगर ऐसा हुआ तो फिर मैं किसी कामका न रहूगा। मैं बेचारा गरीब बनियेका बेटा दो पैसे पैदा करने यहां आया हूं बेमौत मारा जाऊंगा। मेरी क्या दशा होगी! हाय, मेरे मुहमें कौन पानी डालेगा!

मैं यह नहीं कहता कि सब बङ्गालिनें ही शिकारी बन्दूक हैं या सभी फूलवाण छोडनेमें चतुर हैं। हां, कुछ अवश्य हैं, यह मैंने सुना है। यह भी सुना है कि वह पतिकी प्रेरणासे ही ऐसा करती हैं और पति अपने शास्त्रके अनुसार ही यह काम कराते हैं। हिन्दुओंके चार वेद हैं। उनमें चाणक्य श्लोक नामक वेदमें लिखा है—

"आत्मानं सततं रक्षेत् दारैरपि धनैरपि"

अर्थात् हे पद्मपलाशलोचन श्रीकृष्ण! मैं अपनी उन्नतिके लिये इन वनफूलोंकी माला तुम्हें देता हू, इसे गलेमें पहन लो। यह कहना भूल ही गया कि मैं इन वेदोंमें बड़ा व्युत्पन्न हो गया हूं।

हास्यकथा

(१)

पाठशालाके पण्डितजी

रिमझिम रिमझिम बूंदें पड रही हैं। मैं छाता लगाये देहाती सडकसे जा रहा हू। बूदें जरा जोरसे पडने लगीं, मैं एक चौपालके छप्परमें जा छिपा। देखा, भीतर कुछ लडके हाथमें पुस्तक लिये पढ रहे हैं। पण्डितजी पढा रहे हैं, कान लगाकर पढाना जरा सुना। देखा, व्याकरणपर पण्डितजीका वडा अनुराग है। इसका प्रमाण लीजिये। पण्डितजीने एक छात्रसे पूछा—भू धातुके परे 'क्त' प्रत्यय लगानेसे क्या होता है?

छात्रका नाम भोंदू था। उसने सोच-समझकर कहा—भू धातुके परे 'क्त' प्रत्यय लगानेसे भुक्त होता है।

पण्डितजीने बिगडकर कहा—मूर्ख गदहा कहींका।

भोंदू भी गरम होकर बोला—क्या भुक्त शब्द नहीं है?

पण्डितजी—है क्यों नहीं, पर भुक्त कैसे बनता है, यह क्या तू नहीं जानता है?

भोंदू—क्यों नहीं जानता हू? अच्छी तरह खानेसे ही भुक्त होता है।

पण्डित—उल्लू कहीं का, क्या मैं यही पूछता हू?

भोंदूसे नाराज होकर पण्डितजीने बगलमें बैठे हुए दूसरे लड़केसे पूछा—"रामा तू तो बता, भुक्त शब्द कैसे बनता है?"

रामा—जी, भुज् धातुके परे क्त लगानेसे।

पण्डितजी भोंदूसे बोले—सुन लिया, तू कुछ नहीं होने-जानेका।

भोंदूने नाराज होकर कहा—न होऊंगा न सही, आप तो पक्षपात करते हैं।

प०—गधे, मैं क्या पक्षपात करता हूं? (चपत मारकर) अब तो बता, भू धातुके परे क्त लगानेसे क्या होता।

भोंदू—(आंखें डबडबाकर) मैं नहीं जानता हूं।

पं०—नहीं जानता है भूत कैसे होता है यह नहीं जानता है?

भोंदू—यह तो जानता हूं, मरनेसे भूत होता है।

प०—उल्लू कहींका, भू धातुके परे क्त लगानेसे भूत होता है।

भोंदूने अब समझा। उसने मन ही मन सोचा कि मरनेसे जो होता है, भू धातुमें क्त लगानेसे भी वही होता है। उसने विनीत भावसे पूछा—"पण्डितजी, भू धातुके परे क्त लगानेसे क्या श्राद्ध भी करना पड़ता है?"

पण्डितजी और जब्त न कर सके, चटसे एक तमाचा उसके गलेपर जड़ दिया। भोंदू किताबें फेंक रोता धोता घर चला गया। उस समय छुट्टी का हो गयी थी, मैं भी तमाशा देखनेके लिये उसके साथ चला। भोंदूका घर पाठशालासे दूर न था, घर पहुंचकर भोंदूने रोनेका सुर दूना कर दिया और पछाड़ खाकर

गिर पड़ा। भोंदूकी मां यह देख उसके पास आयी और समझाने लगी। पूछा—"क्यों क्या हुआ बेटा ?"

बेटेने मुंह बनाकर कहा—हरामजादी, पूछती है क्या हुआ बेटा। ऐसी पाठशालामें मुझे क्यों भेजा था ?

मा—हुआ क्या बच्चा, बता तो सही ?

बेटा—अब राड पूछती है, क्या हुआ बच्चा ! जल्दी तू भू धातुके परे क्त हो। जल्दी हो मैं तेरा श्राद्ध करू।

मा—क्या बेटा ! क्या बात है ?

बेटा—जल्दी तू भू धातुके परे क्त हो।

मा—क्या मरनेको कहता है ?

बेटा—और नहीं तो क्या ? मैं यही बता न सका, इसपर गुरुजीने मुझे मारा है।

मा—दाढीजार गुरुको अकल नहीं है, मेरे इस नन्हेसे बच्चेको और कितनी विद्या होगी ? जो बात कोई नहीं जानता है, वह न बता सकनेपर बच्चेको मारता है ? आज उसे मैं देखूंगी।

यह कह कमर कसकर भोंदूकी मां पण्डितजीके दर्शनको चली। मैं भी पीछे-पीछे चला। भोंदूकी मांको बहुत दूर जानेका कष्ट न उठाना पडा। पाठशाला बन्द होनेपर पण्डितजी घर जा रहे थे, रास्तेमें ही मुठभेड़ हो गयी। भोंदूकी मां बोली—"हां पण्डितजी, जो बात कोइ नहीं जानता है, वह बतानेके लिये तुमने मेरे लडकेको इस तरह पीट दिया।"

पण्डित—अरे, ऐसी कठिन बात मैंने नहीं पूछी थी। केवल यही पूछा था कि भूत कैसे होता है?

भोंदूकी मा—गंगा न मिलनेसे ही भूत होता है, भला यह सब बातें लड़के कहांसे बता सकेंगे। यह सब मुझसे पूछो।

पण्डित—अरे वह भूत नहीं।

भोंदूकी मा—वह भूत नहीं, तब कौन भूत?

पण्डित वह भूत तुम नहीं जानती हो, भूत एक शब्द है।

भोंदूकी मा—भूतका शब्द मैंने कितनी ही बार सुना है। भला, लड़कोंको कोई ऐसी बातोंसे डराता है!

मैंने देखा कि पण्डितका झगड़ा मिटनेवाला नहीं है। मजा देखनेके लिये मैंने आगे बढ़कर कहा—"महाराज, स्त्रियोंके साथ क्या शास्त्रार्थ करते हैं, आइये मेरे साथ कीजिये।" पण्डितजी मुझे ब्राह्मण जानकर आदर सहित बोले—"अच्छा आप प्रश्न करे।"

मैं बोला—"आप भूत-भूत कह रहे हैं, कहिये के भूत हैं?"

पण्डितजी प्रसन्न होकर बोले—"भोंदूको मां देखती है, पंडित पंडितोंकी तरह ही बोलते हैं।" फिर मेरी ओर मुंह बना कर बोले—"भूत पांच हैं।"

इतना सुन भोंदूकी मां फड़ककर बोली—"क्यों रे पण्डित, इसी विद्याके भरोसे मेरे लालको मारता है? भूत पांच हैं या बारह!"

पण्डित—पागल कहींकी, पूछ लो किसी पण्डितसे भूत पांच हैं या बारह!

मोंदूकी मा—यारह भूत नहीं हैं तो मेरा सरवस कौन खा गया ? मैं क्या ऐसी ही दुःखी थी ?

वह रोने लगी। मैं उसका पक्ष लेकर बोला—"वह जो कहती है, वह हो सकता है", क्योंकि मनुजी कहते हैं—

"कृपणाना धनञ्चैव पोष्यकुष्माण्डपालिना।
भूतानां पितृश्राद्धेषु भवेन्नष्ट न सशय ॥"

अर्थात् जो कृपणोंकी तरह धन और पोष्यपुत्रस्वरूप कुम्हड़े रखते हैं, उनका धन भूतोंके बापके श्राद्धमें नष्ट होता है।

पण्डितजी जरा सीधे आदमी थे, वह मेरी व्यंगबाजी न समझ सके। उन्होंने देखा कि यहा कुछ न बोलनेसे मोंदूकी माके आगे हारना पड़ेगा। चट उन्होंने कहा कि इसमें क्या सन्देह है। वेदोंमें भी तो लिखा है -

"अस्ति गोदावरीतीरे विशाल शाल्मलीतरु।"

इतना सुनकर मोंदूकी मा बड़ी खुश हुई। वह पण्डितजीकी बड़ी बड़ाईकर बोली—पण्डितजी तुम्हारे पेटमें इतनी विद्या है सो फिर मेरे बेटेको क्यों मारते हो ?

पण्डित—अरी पगली इसीलिये तो मारता हू, जिससे वह भी मेरी तरह पण्डित हो जाय। बिना मारे क्या विद्या आती है ?

मोंदूकी मा—पण्डितजी, मारनेसे ही विद्या आती है तो मोंदूके बापको क्यों न आयी ? मैंने तो उन्हें झाड़ू तकसे पीटने में कसर न की, पर कुछ न हुआ।

पण्डित—अरी तेरे हाथसे थोड़े ही कुछ होगा, होगा तो मेरे हाथसे।

भोंदूकी मा—मेरे हाथोंने क्या बिगाड़ा है ? क्या उनमें ओर नहीं ?

देखो भला—यह कहकर भोंदूकी माँने कुछ कमचिया उठा लीं। पण्डितजी अधिक लाभकी सम्भावना देख नौ दो ग्यारह हुए। उसी दिनसे पण्डितजीने भोंदूको फिर नहीं मारा और न भू धातुका झगड़ा उठाया। भोंदू कहा करता है कि माँने एक ही झाड़ूमें पण्डितजीका भूत भगा दिया।

ग्राम्यकथा

(२)

धर्मशिक्षा

"Theory" सिद्धान्त

"पढ़ो बेटा, मातृवत् परदारेषु।"

बेटा—बाबूजी, इसका क्या अर्थ हुआ ?

बाप—इसका अर्थ यही है कि जितनी परायी स्त्रियां हैं, सबको अपनी माता समझना चाहिये।

बेटा—तो सब स्त्रियां ही मेरी मां हैं।

बाप—हां बेटा, सब तेरी मां है ?

बेटा—तो आपको बड़ी तकलीफ होगी।

बाप—क्यों ?

बेटा—मेरी मां होनेसे वह सब आपकी जोरू हुई, बाबूजी !

बाप—चल, ऐसी बात मत निकाल। पढ़, "मातृवत् परदारेषु पर द्रव्येषु लोष्ट्रवत्।"

बेटा—इसके माने बताइये।

बाप—परायी चीजको लोष्ट्र समझना।

बेटा—लोष्ट्र क्या?

बाप—मिट्टीका ढेला।

बेटा—तब तो हलवाईको पेड़ेका दाम न देना चाहिये,क्योंकि मिट्टीके ढेलेका दाम ही क्या है।

बाप—यह बात नहीं है। परायी चीजको मिट्टीकी तरह समझो, जिसमें लेनेकी इच्छा न हो।

बेटा—कुम्हारका पेशा सीखनेसे क्या काम न चलेगा?

बाप—तुझे कुछ न आवेगा, ले पढ़। "मातृवत् परदारेषु पर द्रव्येषु लोष्ट्रवत्। आत्मवत् सर्व्वभूतेषु य पश्यति स पण्डित'।"

बेटा—आत्मवत् सर्व्वभूतेषु यह क्या बाबूजी?

बाप—अपने ऐसा सबको देखो।

बेटा—तो बस काम बन गया, यदि दूसरोंको अपने ऐसा समझू तो दूसरोंकी चीजको अपनी ही समझना होगा, और दूसरोंकी स्त्रीको भी अपनी स्त्री समझना होगा।

बाप—चल दूर हो, पाजी बदमाश (इति थप्पड़)

अभ्यास

(१)

किशोरी नामकी एक प्रौढ़ा गगरी लिये जल भरने जा रही

है। इसी समय अचोत शाम्र यह बालक उसके सामने आ खड़ा हुआ।

बालक—मा।

किशोरी—क्यों बेटा। (अहा! इसकी बोली कैसी मीठी है। सुनकर छाती ठण्ढी हो गयी।)

बालक—मिठाई खानेको एक पैसा दे माँ।

किशोरी—मैं आप गरीबिन हूं, पैसा कहासे लाऊं बेटा।

बालक—न देगी चुडैल?

किशोरी—आग लगे तेरे मुहमें! दाढ़ीजार किसका जाया है!

बालक—न देगी तो ले ('मारता है और गगरी फोड़ता है

[बालकका बाप आता है

(२)

बाप—यह क्या? पाजी!

बेटा—क्यों बाबूजी! यह तो मेरी मा है न! जैसे माके साथ करता हूं, वैसे इसके साथ भी किया। "मातृवत् परदारेषु" क्योंरी तूने बाबूजीको देखकर घूघट भी नहीं काढा?

हलवाईने बेटेके बापके पास आकर नालिश की कि तुम्हारे लड़केके मारे दूकान खोलना कठिन है क्योंकि यह जो कुछ मिठाई पाता है उठा लाता है। दूधवालेने भी दही-दूधके बारेमें आकर यही बात कही।

बापने बेटेको पकड़ पीटना शुरू किया।

बेटा बोला—बाबूजी, क्यों मारते हैं?

बाप—तू दूसरोंकी चीजें क्यों उठा लाता है ?

बेटा—बाबूजी ! आजकल चोरोंका डर है, इसलिये यह ढेले जमा करता हूं, क्योंकि पराया माल ढेलेके बराबर है।

(३)

सरस्वती-पूजाका दिन है, बापने बेटेसे कहा—जा गङ्गाजीमें गोता लगा आ और सरस्वतीजीकी पूजा कर, नहीं तो खानेको न मिलेगा।

बेटा—खा पीकर पूजा नहीं होती ?

बाप—नहीं पागल खा-पीकर कहीं पूजा होती है !

बेटा—इस बार पूजा न कर अगले साल दो बार कर लूंगा। अबके बड़ा जाड़ा है।

बाप—ऐसा नहीं होता है। सरस्वती पूजाके बिना विद्या नहीं आती।

बेटा—तो क्या एक साल विद्या उधार न मिलेगी ?

बाप—चल मूर्ख। जा, नहा आ। पूजा करनेसे मैं दो रस गुल्ले दूंगा।

"अच्छा" कहकर बालक नाचता-कूदता नहाने चला गया। मगर जाड़ा बड़ा था। ठण्डा-ठण्डी हवा चल रही थी। जल भी वर्फकी तरह ठण्डा हो रहा था। मल्लाहका पांच सालका एक लड़का वहां खड़ा था। बालकने सोच-समझकर उस बच्चेको दो-तीन गोते लगवाये। फिर उसे खचकर बापके पास ले गया। बोला—बाबूजी नहा आया।

बाप—कहां नहाया ?

बेटा—बाबूजी, "आत्मवत् सर्व्वभूतेषु" के अनुसार मुझमें और उसमें क्या अन्तर है ? उसके नहानेसे मेरा नहाना हो गया। लाओ मेरी मिठाई। (बाप यह सुन बेत ले उसके पीछे दौड़ा। बेटा यह बोलता हुआ भाग चला कि "बाबूजी शास्त्रवाक्य कुछ नहीं जानते हैं।")

थोड़ी देरके बाद बापने सुना कि बेटेने विद्यालयके पण्डित जीको खूब ठोंका है। घर आनेपर बापने बेटेसे पूछा—"अबके यह क्या कर आया ?"

बेटा—क्या करता बाबूजी ? आप तो छोड़ते नहीं, बेत मारते हो। इसलिये मैंने खुद ही मार खा ली।

बाप—अरे नालायक तूने मार खाली या पंडितजीको मार आया ?

बेटा—पंडितजी और मुझमें क्या भेद है ? उन्होंने मार खायी, मानों मैंने खायी; क्योंकि आत्मवत् सर्व्वभूतेषु।

पिताने प्रतिज्ञा की कि अब इस लड़केको न पढाऊंगा !

रामायणकी समालोचना

(एक विलायती समालोचक कृत)

मैं रामायण आद्यन्त पढकर बड़ा ही विस्मित हो गया हूँ। अनेक स्थानोंकी रचना प्राय यूरोपके निम्न श्रेणीके कवियोंकी-सी हो गयी है। हिन्दू कवियोंके लिये यह साधारण गौरवकी बात नहीं है। रामायणका रचयिता यदि और कुछ दिन अभ्यास करता तो अच्छा कवि हो जाता, इसमें सन्देह नहीं।

रामायणका स्थूल तात्पर्य्य बन्दरोंकी महिमा-वर्णन है। बन्दर आधुनिक बोयरवाल (Boerwal) नामक हिमाचल प्रदेशवासी अनार्य्य जातिके शायद पुरखे थे। अनार्य्य बन्दरोंका लङ्का जीतना और राक्षसोंको सपरिवार मारना, इसका वर्णनीय विषय है। उस समय आर्य्य असभ्य और अनार्य्य सभ्य थे।

रामायणमें नीतियुक्त कुछ कथाएं भी हैं। बुद्धिहीनता कितना बड़ा दोष है, यह दिखानेकी कविने चेष्टा की है। एक मूर्ख वृद्ध राजाके चार रानियां थीं। उसे बहुविवाहका विषैला फल सहज ही प्राप्त हुआ। बुद्धिमती कैकेयीने अपने पुत्रकी उन्नतिके लिये असभ्य बूढ़े राजाको बहका सौतके जाये बड़े पुत्रको छलसे बन भेज दिया। उस पुत्रने भारतवासियोंके स्वभावसिद्ध आलस्यके वशीभूत हो अपने स्वत्वाधिकारकी रक्षा न की। बूढ़े

बापका वचन मान जंगल चला गया। इससे महातेजस्वी तुर्क वंशी औरंगजेबकी तुलना करो तो समझमें आ जायगा कि मुसलमानोंने हिन्दुओंपर इतने दिनोंतक कैसे राज्य किया। राम वन जानेके समय अपनी युवती भार्य्याको साथ ले गया था। इससे जो होना था, वही हुआ।

भारतवर्षकी स्त्रियां स्वभावसे ही असती होती हैं, सीताका व्यवहार ही इसका उत्तम प्रमाण है। सीताने घरसे निकलते ही रामका साथ छोड़ दिया। रावणके संग लङ्का जा सुख भोगने लगी। मूर्खराम रोता-पीटता इधर-उधर भटकने लगा। इसीसे हिन्दू स्त्रियोंको घरसे बाहर नहीं निकालते हैं।

हिन्दू-स्वभावकी जघन्यताका दूसरा उदाहरण लक्ष्मण है। लक्ष्मणका चरित्र जैसा चित्रित हुआ है, उससे वह कर्मवीर मालूम होता है। यदि वह किसी दूसरी जातिका होता तो बड़ा आदमी हो जाता, पर उसका ध्यान एक दिनके लिये भी उधर नहीं गया। वह केवल घूमा रामके पीछे पीछे और अपनी उन्नतिके लिये कुछ प्रयत्न न किया। यह केवल भारतवासियोंकी स्वभावसिद्ध निश्चेष्टताका फल है।

भरत भी बड़ा असभ्य और मूर्ख था। हाथ आया हुआ राज्य उसने भाईको लौटा दिया। रामायण निकम्मे लोगोंके इतिहाससे ही पूर्ण है। ग्रन्थकारका यह भी एक उद्देश्य है। राम अपनी पत्नीको खोकर बड़ा दुःखी हुआ। अनार्य्य (बन्दर) जातिने तर्स खाकर रावणको सवंश मारा और सीताको छीन

रामको दिया, पर वर्ब्बर जातिकी नृशंसता कहा जा सकती है ? राम सीतासे नाराज हो उसे जला डालनेके लिये तैयार हो गया, किन्तु दैवयोगसे उस दिन वह वच गयी। स्वदेश आनेपर चार दिन सुखसे रही, पर पीछे औरोंके कहनेसे क्रोधमें आ रामने सीताको घरसे निकाल बाहर किया। वर्ब्बरोंका ऐसा क्रोध स्वभावसिद्ध है। सीता भूखों मर कई सालके बाद रामके द्वार-पर आ खड़ी हुई। रामने उसे देखते ही क्रोधमें आ जीते जी मिट्टीमें गाड़ दिया। असभ्य जातियोंमें ऐसा होता ही है। रामायणका बस यही सारांश है।

इसका रचयिता कौन है, यह सहज ही नहीं कहा जा सकता। लोग कहते हैं कि वाल्मीकिने इसे बनाया है। वाल्मीकि नामका कभी कोई ग्रन्थकार था या नहीं, इसका अभी निश्चय नहीं। वल्मीकसे वाल्मीकि शब्दकी उत्पत्ति देखी जाती है। इससे मैं समझता हूं कि कहीं किसी वल्मीकमें यह ग्रन्थ मिला है। इससे क्या सिद्धान्त निकलता है, यह देखना चाहिये।

रामायण नामकी एक हिन्दी-पुस्तक मैंने देखी है। यह तुल-सीदासकी बनायी है। दोनोंको बहुतसी बातें मिलती-जुलती हैं। इससे वाल्मीकिरामायणका तुलसीकृत रामायणसे संगृहीत होना असम्भव नहीं है। वाल्मीकिने तुलसीदासकी नकल की या तुलसीने वाल्मीकिकी, यह निश्चय करना सहज नहीं है, यह मैं मानता हूं, पर रामायण नाम ही इसका एक प्रमाण है। रामायण शब्दका संस्कृतमें कोई अर्थ नहीं होता है। हां, हिन्दीमें

होता है। रामायण शायद् "रामा यवन" शब्दका अपभ्रंशमात्र है। केवल 'व' कारका लोप हो गया है। "रामा यवन" या रामा मुसलमान नामक किसी व्यक्तिके चरित्रके आधारपर तुलसी दासने पहले रामायण लिखी होगी। पीछे किसीने संस्कृतमें उसका उल्थाकर वल्मीकमें छिपा रखा होगा। इसके बाद यह वल्मीकमें मिला, इससे इसका नाम वाल्मीकि हो गया।

रामायणकी मैंने कुछ प्रशंसा की है, पर अधिक नहीं कर सकता। इसमें कई बड़े-बड़े दोष हैं। आदिसे अन्ततक अश्लीलता भरी है। सीताका विवाह, रावणका सीताहरण आदि अश्लीलताके सिवा और क्या है? रामायणमें करुणारस नाममात्रको है। बन्दरोंका समुद्र-बाँधना, बस यही उसमें करुणा रसका विषय है। लक्ष्मणके भोजनमें वीररसकी तनिक गन्ध है। वशिष्ठादि ऋषियोंमें हास्यरसका ज़रा लेश है। ऋषि बड़े हास्य प्रिय थे। धर्म्मपर प्रायः हास्य-परिहास किया करते थे।

रामायणकी भाषा प्राञ्जल और विशद होनेपर भी अत्यन्त अशुद्ध कही जायगी। रामायणके एक काण्डमें योद्धाओंका कुछ भी वर्णन न रहनेपर उसका नाम "अयोध्या काण्ड" है। ग्रन्थकारने 'अयोध्याओं काण्ड' न लिखकर 'अयोध्या काण्ड' लिख दिया है। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंमें ऐसी अशुद्ध संस्कृत प्रायः देखी जाती है। यूरोपके आधुनिक विद्वान् ही विशुद्ध संस्कृतके अधिकारी हैं।

सिंहावलोकन

समाचार पत्रोंकी रीति है कि नये वर्षमें पैर रखनेपर वह गये वर्षकी घटनावलीका सिंहावलोकन करते हैं। मासिक-पत्रिकाएं इससे बरी हैं, पर क्या उन्हें इसका शौक नहीं है? बहुतसे लोग राजा न होकर भी जैसे राजसी ठाठसे रहते हैं, हिन्दुस्थानी काले होकर भी साहब बननेके लिये जैसे कोट-पैंट डाटते हैं, वैसे ही यह छोटी-मोटी पत्रिका भी दण्ड प्रचण्ड प्रतापशाली समाचार पत्रका अधिकार ग्रहण करनेकी इच्छा करती है। अच्छा तो गत वर्षजी महाराज! आप सावधान हो जाय। हम आपका सिंहावलोकन करते हैं।

गये वर्ष राजकाजका निर्वाह कैसे हुआ, इसकी बहुत खोज करनेपर मालूम हुआ कि सालभरमें पूरे तीन सौ पैंसठ दिन हुए। एक दिनकी भी कमी नहीं हुई, हरएक दिनमें चौबीस घण्टे और हर घण्टेमें साठ मिनट थे। इसमें कुछ भी हेरफेर नहीं हुआ, राजकर्मचारियोंने भी इसमें किसी प्रकारका हस्तक्षेप नहीं किया। इससे उनकी विज्ञता ही प्रकट होती है। बहुतोंकी राय है कि सालमें कुछ दिन घटा दिये जायं, पर हम इसका अनुमोदन नहीं करते, क्योंकि इससे पबलिकका कुछ लाभ नहीं। हां, लाभ होगा नौकरी-पेशावालोंका, जिन्हें पूरा वेतन मिलेगा। और लाभ होगा सम्पादकोंका, जिन्हें कम लेख लिखने पड़ेंगे।

मासिक पत्रिकाओंको क्या लाभ होगा ? उनसे तो बारह महीनेके बारह अङ्क लोग ले ही लेंगे, इसलिये मेरी राय है कि यह सब कुछ न कर गर्मीका मौसम ही उठा देना चाहिये। मैं अधिकारियोंसे अनुरोध करता हूं कि वह एक ऐसा कानून बना दे, जिससे बारहों महीने जाड़ा ही रहे।

सुननेमें आया है कि इस वर्ष सबकी एक एक वर्षकी आयु चोरी हो गयी है, यह दुःखका विषय है, पर इसका हमें विश्वास नहीं होता है। यह प्रत्यक्ष देखनेमें आता है कि जिनकी उम्र ७० की थी, उनकी ७१ की हो गयी। अगर आयु चोरी हो गयी तो यह उम्र बढ़ी कैसे ? मालूम होता है, निन्दकोंने यह झूठी गप्प उड़ायी है।

यह वर्ष अच्छा था, इसका प्रमाण यही है कि इस साल बहुतोंके सन्तानें हुई हैं। डिस्ट्रिक्टल डिपार्टमेंटके सुदक्ष कर्मचारियोंने विशेष अनुसन्धान करके जाना है कि किसीके पुत्र हुआ है, किसीके पुत्री हुई है और किसीका गर्भ गिरा है। दुःखकी बात है कि अबके कई मनुष्य रोगसे मरे हैं। सुननेमें आया है कि कोई महामण्डल नामकी सभा पार्लिमेंटसे प्रार्थना करनेवाली है कि पुण्यभूमि भारतके मनुष्योंकी मृत्यु जिसमें न हुआ करे! मण्डलका प्रस्ताव है कि यदि किसीको मरना बहुत ही जरूरी हो तो पुलिससे हुक्म लेकर मरे।

इस साल अर्थ विभागकी लीला बड़ी विचित्र हुई। सुना है कि सरकारको आमदनी भी हुई और खर्च भी। यह उतने आश्चर्यकी बात चाहे न हो, पर यह तो महा आश्चर्यकी बात

है कि सरकारको इस आय-व्ययसे कुछ जमा हुआ हो या कुछ खर्च हुआ हो या जमा खर्च बराबर हो गया हो। अगले साल टैक्स लगेगा या नहीं, यह अभी नहीं कहा जा सकता, पर आशा है, अगला साल खतम हो जानेपर ठीक बता सकेंगे।

इस साल विचारालयोंकी सब बातोंकी बड़ाई न कर सकूंगा, क्योंकि जिन्होंने नालिश नहीं की, उनका विचार हुआ था, होनेका प्रबन्ध हुआ, पर जिन्होंने नालिश नहीं का उनका कुछ भी विचार नहीं हुआ। इसका कारण कुछ समझमें न आया, भला जहां साधारण विचारालय है, वहां कोई नालिश करे या न करे विचार होना ही चाहिये। कोई धूप चाहे या न चाहे सूर्य्य सर्वत्र धूप करते हैं। कोई पानी चाहे या न चाहे बादल सब खेतोंमें बरसते हैं, इसी तरह कोई चाहे या न चाहे विचारकोंको घर घर घुसकर विचार कर आना चाहिये। यदि कोई कहे कि विचारक इस तरह घरमें घुस घुसकर विचार करेंगे तो गृहस्थोंकी मार्जनी अकस्मात् विघ्न डाल सकती है। इसका जवाब यह है कि सरकारी कर्म्मचारी मार्जनीसे उतना नहीं डरते हैं। छोटे छोटे हाकिमोंकी झाड़ुओंसे अच्छी जान पहचान है और अक्सर दोनोंकी मुठभेड़ हो जाती है। जैसे मोरको सर्प प्रिय है, वैसे इन्हें भी झाड़ू प्रिय है। देखते ही खा लेते हैं। सुननेमें आया है कि किसी छोटे-मोटे हाकिमने गवर्नमेण्टसे प्रस्ताव किया है कि बड़े-बड़े हुक्कामोंको "आर्डर आफ दि स्टार आफ इण्डिया" का खिताब जैसे मिलता है, वैसे छोटे-छोटोंसे

हाकिमोंको 'आर्डर आफ दि ब्रूम स्टिक" यानी झाड़ूदासका खिताब मिलना चाहिये और चुने हुए गुणवान् डिप्टी और सदर आलाओंके गलेमें यह महारत्न लटका देना चाहिये। कोट-पेंट, घड़ी-छड़ीसे विभूषित सदा कम्पमान् वक्षस्थलपर यह अपूर्व शोभा धारण करेगा। यह झाड़ू अगर सरकारसे खिताबके बतौर मिलेगी तो मैं कसम खाकर कह सकता हूं कि लोग बड़ी खुशीसे इसे माथे चढ़ावेंगे। फिर इतने उम्मीदवार खड़े हो जायंगे कि मुझे भय है कि कहीं झाड़ुओंका टोटा न हो जाय।

गत वर्ष अच्छी वर्षा हुई थी, पर सर्वत्र समान नहीं हुई। यह निश्चय ही बादलोंका पक्षपात है। जहां वर्षा नहीं हुई वहांवालोंने सरकारके पास प्रार्थनापत्र भेजा है कि सब जगह एक सी वृष्टि हो, इसका कुछ उपाय निकालना चाहिये। मेरी समझसे इस कामके लिये एक समिति बना दी जाय, वही उपाय बता देगा। कुछ लोगोंका कहना है कि सरकार मेघोंको कुछ भत्ता दिया करे तो उन्हें कहीं जानेमें उज्र न होगा, पर मैं समझता हूं कि इससे कुछ लाभ न होगा, क्योंकि बङ्गालके बादल बड़े सौदामिनी प्रिय हैं। वह सौदामिनियोंको छोड़ रुपयेके वास्ते कभी विदेश जाना मंजूर न करेंगे। मेरी समझसे बादलोंको बिना कर सिपाहियोंका वशीभूत करना चाहिये। हर खेतमें एक चपरासी या सुयोग्य डिप्टी लम्बे बांसमें एक एक मिश्ती बांध ऊपर उठाये रहे। मिश्ती वहांसे खेतमें जल छोड़कर बस पड़े तो नीचे उतर आवे। क्या यह उपाय अच्छा नहीं है?

हमारे देशकी स्त्रिया देशहितैषिणी नहीं हैं। यदि होतीं तो भिश्तियोंको क्यों जरूरत पड़तो ? यही खेतोंमें जाकर रो आतीं, बस, आसुओंसे खेत सिच जाते और बादल भी बरतरफ कर दिये जाते। हा, लोगोंके शारीरिक और मानसिक मङ्गलार्थ यह कह देता हूं कि आकाशकी वृष्टिके बदले नारी-नयनोंको अश्रु वृष्टिका आयोजन हो तो पुलिसका खासा बन्दोबस्त कर रखना चाहिये। बादलकी बिजलीसे अधिक लोग नहीं मरते हैं, पर रमणी-नयन मेघके कटाक्ष त्रिशूलसे खेतोंमे किसानोंके बालकोंकी क्या दशा होगी, नहीं कहा जा सकता, इससे पुलिसका रहना ही अच्छा है।

सुननेमें आया है कि शिक्षा-विभागमें बड़ा गड़बड़ाध्याय हो गया है। सुनते हैं कि कई विद्यालयोंके छात्रोंने कान नापनेका एक एक गज तैयार किया है। उनके मनमें सन्देह उठ खड़ा हुआ है। यह कहते हैं कि हम मास्टरोंके कान नापेंगे, नहीं तो उनसे नहीं पढ़ेंगे। कानसे गज छोटा होगा, ऐसो सम्भावना कहीं नहीं है।

साल अच्छा रहा चाहे बुरा, पर तीन गूढ़ बातें हमने जान ली है, इनमें जरा भो सन्देह नहीं है।

पहली—साल बीत गया, इसमें मतभेद नहीं है।

दूसरी—साल बीत गया, अब वह लौटनेका नहीं। लौटनेका कोइ उपाय न करे, क्योंकि कुछ फल न होगा।

तीसरी—लौटे या न लौटे, हमारे-तुम्हारे लिये एक-सी बात है। क्योंकि हमारे लिये गये साल भी दाना घास था और आगे साल भी रहेगा। खैर, आपका मङ्गल हो, दाना-घासको याद रखना।

बन्दर बाबू संवाद

एक बार प्रात कालके सूर्यकी किरणोंसे प्रकाशित कदली-कुञ्जमें श्रीमान् बन्दरजी हवा खा रहे थे। उनका परम सुन्दर लांगूल कुण्डलीकृत हो कभी पीठपर, कभी कन्धेपर और कभी वृक्षकी डालीपर शोभित हो रहा था। चारों ओर वर्त्तमान, चम्पा आदि बहुत तरहके कच्चे पक्के केले सुगंध फैला रहे थे। श्रीमान् भी कभी सूंघकर, कभी चूसकर, कभी काटकर और कभी चबाकर केलोंका रसास्वादनकर मानसिक प्रशंसा कर रहे थे। इतनेमें दैवसयोगसे कोट, बूट, पैंट, चेन, चश्मा, चुरुट, चाबुकधारी टोप्यावृत एक नवीन बाबू यहां आ पहुंचा। बन्दरचन्दने दूरसे इस अपूर्व मूर्त्ति को देखकर मनमें सोचा—"यह कौन है? रङ्ग-रूपसे तो निश्चय हो किष्किन्धापुरवासी प्रतीत होता है। ढङ्ग तो नकली है, पर ऐसा चाल-ढाल दूसरे देशमें होना असम्भव है। यह मेरा स्वदेशी भाई है। इसको आवभगत करना चाहिये।

यह सोचकर बन्दरजी महाराजने चम्पा केलेको पकी फलियां तोड़कर सूंघा। उनकी महकसे परितृप्त होकर अतिथिका सत्कार करना विचारा। इतनेमें उस कोट-पटधारी मूर्त्तिने उनके सम्मुख आ पूछा—

'Good morning Mr. Monkey! how do you do!

So glad to see you ! Ah ! I see you are at break fast already "

(बन्दर साहब सलाम ! मिजाज मुबारक ? आपसे मिलकर मैं बहुत खुश हुआ। ओह हो ! आप तो नाश्ता करने बैठ गये।)

बन्दरने कहा—"किमिद ? किं वदसि ?"

बाबू—"What is that ? I suppose that is the kishkindha patois ? It is a glorious country—is it not ? "There is a land of every land the pride and so on" as you know ?"

बन्दर—"कस्त्वं ? कर मज्जनपादात् आगतोसि ?"

बाबू—(स्वागत) It seems most barbarous gibberish that precious lingo of his, but I suppose I must put up with it. (प्रगट) "My dear Mr Monkey, I am ashamed to confess that I am not quite familiar with your beautiful vernacular I dare say it is a very polished language I presume you can talk a little English "

इतना सुनते ही महावीरजीने आर्ष लालकर पूछसे बाबू साहबके गलेको लपेट लिया।

बाबू साहब हक्के-बक्के हो गये, मुहसे चुरुट गिर पड़ा। वह बोले—

'I say, this seems some what—"

तुम जरा और कस लो।

"Some what unmannerly to say the least—"

जरा और कसो।

Dear Mr Monkey ! you will hurt me"

फिर कसा।

"Kind good Mr, Monkey"

इतनेमें हनुमानजीने पूछसे बाबूको ऊपर उठा लिया, बाबूको टोपी, चश्मा और चाबुक नीचे गिर पड़े। घड़ी पाकेटसे निकल कर लटकने लगी। बाबूका मुंह सूख गया, वह चिल्लाने लगे— "महावीरजी, अपराध हुआ, क्षमा करो—बचाओ नहीं तो मरा!"

महावीरजीने कृपाकर उसे जमीनपर रख दिया और पूछ खोल ली। बाबूने मौका पा चश्मा चाबुक उठा लिया। बन्दर बोला—"बाबू साहब, बुरा न मानना, आपकी बोली, अङ्गरेजी वेश बन्दरोंकी तरह और मूर्खता पहाड़कीसी। कुछ समझ न सका कि आप कौन हैं। लाचार आपक जाति जाननेके लिये आपको इतना कष्ट दिया। अब मालूम हो गया—"

बाबू—"क्या मालूम हो गया?"

बन्दर—"यही कि आपका जन्म किसी बङ्गालिनके गर्भसे हुआ है। आप थक गये हैं, क्या केला भोजन कीजियेगा?"

बाबू साहबका मुंह सूख गया था, इसलिये पका केला खाना उन्होंने मुनासिब जाना। बोले—With the greatest pleasure"

बन्दर—आपका जिस देशमें जन्म हुआ है, मैं वहां केले और बैगनकी खोजमें अकसर जाता हूं। वहांकी औरतें "बरा" नामका स्वादिष्ट पदार्थ तैयार करती हैं, वह भी आज्ञाके बिना ही रामदासका भोग लगाया करती हैं। इसलिये मैं भाषा अच्छी तरह समझता हू, तुम मातृभाषामें ही मुझसे बातचीत करो।

बाबू—इसमें आश्चर्य ही क्या है? आप केला देना चाहते हैं, मै बडो खुशीसे आपका केला भक्षण करूंगा।

यह सुनकर कपिराजने केलेकी कई फलियां बाबूकी ओर फेंक दीं। उन देव दुर्लभ कदलीके भक्षणसे बाबू बडे प्रसन्न हुए। कपिजीने पूछा—"केले कैसे हैं?"

बाबू—बडे मीठे—Delicious

बन्दर—हे टोपधारी। मातृभाषामें बोलो।

बाबू—भूल हुई—Excuse me

बन्दर—इसका क्या अर्थ?

बाबू—माफ कीजिये! मैं बडा—क्या कहूं—अङ्गरेजीमें तो Forgotten भाषामें क्या कहूं?

बन्दर—अच्छा! तुम्हारी बातसे मैं प्रसन्न हुआ हू। तुम और भी केला खा सकते हो। जितना मन हो उतना खाओ, मेरे लायक कोई काम हो तो वह भी कहो।

बाबू—धन्यवाद, हे कपिराज! यदि आप एक बात मुझे कृपाकर बता दें तो बडा उपकार मानूंगा।

बन्दर—कौनसी बात?

बाबू—वही बात जिसके लिये मैं आपके पास आया हूँ, आपने रामराज्य देखा है। वैसा राज्य क्या कभी नहीं हुआ? कुछ लोगोंकी राय है कि यह गप्प (Fabel) है।

बन्दर—(आंखें लाल और दांत निकालकर) रामराज्य गप्प है, तब तो मैं भी गप्प हूं-मेरी पूंछ भी गप्प है,देख,तेरी कैसी गप्प है।

इतना कह कपिराजने क्रोधकर अपनी लम्बी पूंछ बेचारे बाबूकी गर्दनमें लपेट दी, बाबूका मुंह सूख गया। वह बोला—"ठहरो महाराज, न तुम गप्प हो और न तुम्हारी पूंछ, यह मैं शपथकर कह सकता हूं। लेहाजा तुम्हारा रामराज्य भी गप्प नहीं है। The proof of the pudding is in the eating thereof—बात यह है कि तुम रामचन्द्रके दास हो और मैं अङ्गरेजोंका हूं। तुम्हारे राम बड़े या मेरे अङ्गरेज बड़े हैं? मेरे अङ्गरेजी राज्यमें एक नई चीज हुई है, वह क्या रामराज्यमें थी?

बन्दर—वह चीज कौनसी है? क्या क्या केला?

बाबू—नहीं, Local Self Government

बन्दर—वह क्या बला है?

बाबू—स्थानीय आत्मशासन। क्या वह उस समय था?

बन्दर—था नहीं तो क्या? स्थानीय आत्मशासन स्थान विशेषका आत्मशासन है। यह तो सबहीके ही है। मेरा आत्म शासन था मेरी पूंछमें। पूंछमें आत्मशासन न करता तो भला युगके आधे आदमी समुद्रमें डूब मरते। जब मेरी दुममें गुद गुदाहट होती, यानी किसीको गर्दनमें दुम लपेटनेकी इच्छा होती

तभी मैं पूंछका आत्मशासन करता दोनों पैरोंके बीचमें उसे छिपा लेता। यहांतक कि जिस दिन रामचन्द्रजीने सीताजीको अग्निमें प्रवेश करनेके लिये कहा था - उस दिन मेरा यह स्थानीय आत्मशासन न होता तो यह दुम रामचन्द्रजीकी गर्दनमें पहुंचती, पर स्थानीय आत्मशासनके कारण मैं दुम दवाकर रह गया। और भी सुनो। हम लोग जब लङ्का घेरकर बैठे थे, तब आहारा भावसे हमारा आत्मशासन पेटमें निहित हो, यहाका स्थानीय हो गया था।

बाबू—यह आपके समझनेकी भूल है। वैसे आत्मशासनकी बात मैं नहीं कहता हूं।

बन्दर—सुनो न, स्थानीय आत्मशासन बड़ा अच्छा है। स्त्रियोंका आत्मशासन जीभमें हो तो उत्तम स्थानोय आत्मशासन हुआ। ब्राह्मणोंका आत्मशासन पेड़े बरफीपर अच्छा होता है। तुम्हारा आत्मशासन—

बाबू—कहां पीठपर?

बन्दर—नहीं, तुम्हारी पोठ दूसरे शासनका क्षेत्र है। किन्तु तुम्हारे आत्मशासनका उचित स्थान तुम्हारी आंखें हैं।

बाबू—कैसे?

बन्दर—तुम रुलाई आनेपर भो नहीं रोते, यह अच्छा है। दिनरात कार्य काय भार्य करनेसे हुजूर लोग दिक हो जाते हैं।

बाबू—जो हो, मैं इस अर्थमें आत्मशासनकी बात नहीं कहता हूं।

बन्दर—तो किस अर्थमें कहते हो ?

बाबू—शासन किसे कहते हैं, जानते हो ?

बन्दर—अवश्य, तुम्हें थप्पड़ लगाऊं तो तुम शासित हुए। इसीका नाम तो शासन है न ?

बाबू—यह नहीं, राजशासन क्या नहीं जानते ?

बन्दर—जानता हूं, किन्तु तुम खुद राजा हुए बिना आत्म शासन कैसे करोगे ?

बाबू—(स्वगत) इसीका नाम है बन्दर-बुद्धि। (प्रगट) यदि राजा दया करके अपना काम हमें दे दे तो ?

बन्दर—इसमें राजाका ही लाभ है। अपने सिरका बोझ दूसरेके सिरपर डाल मजेमें रानीके साथ सोए और हम लोग मिहनत करके मरें। इसे ही तुम कहते हो रामराज्य। हा राम !

बाबू—आपने अभी यह समझा ही नहीं। Freedom Liberty किसे कहते हैं, आप जानते हैं ?

बन्दर—किष्किन्धाके स्कूलमें यह नहीं पढाया जाता है।

बाबू—Freedom कहते हैं स्वाधीनताको। स्वाधीनता किसे कहते हैं, यह तो जानते हैं ?

बन्दर—मैं वनका पशु हूं, मैं नहीं जानता तो क्या तुम जानते हो ?

बाबू—अच्छा, तो मनुष्य जितना स्वाधीन होगा, उतना ही सुखी होगा।

बन्दर—अर्थात् मनुष्यमें जितना पशुभाव होगा, उतना ही वह सुखी होगा।

बाबू—महाशय! क्रोध मत कीजिये—यह बात ठीक बन्दरोंकी सी हुई।

बन्दर—मैं तो बन्दर हू ही, बाबूकी तरह कैसे बोलू।

बाबू—स्वाधीनता विना मनुष्यजन्म पशुजन्म है, पराधीन मनुष्य गाय-बैलोंकी तरह बंधे रहकर मार खाते हैं। सौभाग्यसे हमारे राजपुरुष जन्मसे ही स्वाधीन Free burn हैं।

बन्दर—हमारी तरह?

बाबू—उसी स्वाधीनताका लक्षण आत्मशासन है।

बन्दर—हम भी उसी लक्षणवाले हैं, हममें आत्मशासनके सिवा राज्यशासन नहीं है। हम पृथ्वीपर स्वाधीन जाति हैं। तुम क्या मेरी तरह हो सकते हो?

बाबू—बस रहने दो, मैं समझ गया। बन्दरकी समझमे आत्म शासन नहीं आ सकता।

बन्दर—बहुत ठीक, चलो दोनों मिलकर केले खायें।
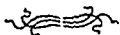
साहब और हाकिम

BRASONISM *

जौन डिकसन फौजदारी अदालतमें पकडकर लाये गये हैं। साहब रङ्गमें तो आबनूसके कुन्देको मात करते हैं, पर साहबका मुकद्दमा देखनेके लिये देहातकी कचहरीमें बहुतसे रगीले लोग इकट्ठे हुए हैं। मुकद्दमा एक डिप्टीके इजलासमें है, इससे साहब जरा खिन्न हैं, पर मनमें भरोसा है कि बङ्गाली डिप्टी डरकर छोड देगा। डिप्टी बाबूके ढङ्गसे भी यह बात जाहिर होती है। वह बेचारा बडा बूढा और सीधासादा भलामानस है। किसी तरह सिमटकर वहा बैठा था। इधर चपरासियोंने भी डरते-डरते साहबको कठघरेमें ला खडा किया। साहबने जरा रग बदल हाकिमकी ओर देख अकडकर कहा—"टुम हमको यहा किस वास्ते लाया ?"

हाकिमने कहा—"मैं क्या जानू, तुम क्यों लाये गये, तुमने क्या किया है ?"

साहब—जो किया, टोमारा साथ बाट नेंई मांगटा।

हाकिम—क्यों ?

साहब—टुम काला आदमी है।

---

* Ilbert बिलके सम्बन्धमें वादविवाद होनेके समय लिखा गया था।

हाकिम—फिर ?

साहब—हम साहब है।

हाकिम—यह तो मैं देखता हू, इससे क्या मतलब ?

साहब—टुमको क्या बोलटा वह नेई है।

हाकिम—क्या नहीं है।

साहब—वही जिसका जोरसे मुकद्दमा करटा है। टुम नहीं जानटा क्या ?

हाकिम—मैं भला आदमी हूं, इससे कुछ नहीं कहता, अब टुम-टुम करोगे तो जुर्माना कर दूंगा।

साहब—टुम हमको जुर्माना नहीं करने सकटा। हम साहब है—टुमको क्या कहटा—वह नहीं है।

हाकिम—क्या नहीं है ?

साहब—ओ Yes जुस्टीफेशन।

हाकिम—अहा! Jurisdiction कहो। हूं, तो क्या अहले विलायत हो ?

साहब—हम साहब है।

हा०—रङ्ग इतना काला क्यों है ?

सा०—कोलका काम करटा था।

हा०—बापका नाम क्या है ?

सा०—बापका नामसे कोर्टको क्या काम ?

हा०—मालूम तो है न ?

सा०—हमारा बाप बडा आडमी था, नाम याड नहीं।

हा०—याद करो। पैर तुम्हारा नाम क्या है?

सा०—मेरा नाम जान साहब—जानडिकसन।

हा०—बापका नाम भी क्या डिकसन था?

सा०—होने सकटा है। (इतनेमें मुद्दईका मोख्तार बोल उठा —"हजूर, इसके बापका नाम गोवर्द्धन साहब है।")

साहब गर्म होकर बोले—"गोवर्द्धन होनेसे क्या होगा? तेरे बापका नाम रामकान्त है। वह चावल बेचता था। मेरा बाप बडा आदमी था।"

हा०—तुम्हारा बाप क्या करता था?

सा०—बडे आदमियोंका न्तादी कराता था।

हा०—क्या वह नाईका काम करता था?

मुख्तार—हुजूर, नहीं—बाजा बजाता था।

लोग हँस पडे। हाकिमने जुरिसडिक्शनका उज्र नामजूर किया और मुकद्दमा सुनने लगे। फरियादीकी पुकार होनेपर वादीके फडे पहने कालीकलूटी एक औरत हाजिर हुई। उससे जो कुछ सवाल हुए और उनका उसने जो जवाब दिया, वह नीचे दर्ज है —

प्रश्न—तुम्हारा नाम क्या है?

उत्तर—जमुना मल्लाहिन।

प्र०—तुम क्या करती हो?

उ०—मछली फँसा फँसाकर बेचती हूं।

आसामी साहब बोला—झूठा बात, सुटकी मछली बेचता है।

मल्लाहिन—वह भी बेचती हूं। उसीसे तो तुम मरे हो।

प्र०—तुम्हारी नालिश क्या है?

उ०—चोरीकी।

प्र०—किसने चोरी की?

उ०—(साहबकी ओर बताकर) इस वागदीके बेटेने।

सा० - हम साहब हैं, वागदी नहीं।

प्र०—क्या चुराया है?

उ०—यही तो कहा था, सुटकी मछल

प्र०—कैसे चोरी की?

उ०—मैं डल्लेमें सुटकी मछली रखकर बेच रही थी, एक खरीदारसे बात करने लगी, इतनेमें साहबने आकर एक मुट्ठी मछली उठाकर जेबमें रख ली।

प्र०—फिर तुम्हें मालूम कैसे हुआ?

उ०—जेब फटी है, यह साहबको मालूम नहीं था, जेबमें डालते ही मछली जमीनपर आ गिरी।

यह सुन साहब गुस्सा होकर बोले—नहीं बाबूसाहब! इसकी डालिया टूटी थी, उसीसे मछली निकली थी।

मल्लाहिन बोली—इसकी जेबमें भी दो चार मछलियां मिली थीं

साहबने कहा—"वह तो दाम दूंगा कहकर ले थीं।" गवाहोंसे साबित हुआ कि डिकसन साहबने मछली चुरायी थी। हाकिमने तय जवाब लिखा। साहबने जवाबमें सिर्फ यही लिखाया

कि काले आदमीका हमपर जुस्टीफेशन नहीं है। हाकिमने यह बात मंजूर न कर एक हफ्तेकी कैदका हुक्म दिया। दो-चार रोजके बाद यह खबर कलकत्तेके एक अंगरेजी अखबारके सम्पादकके कानोंतक पहुंची। फिर क्या था, दूसरे ही दिन नीचे लिखी टिप्पणी उसमें निकली—

THE WISDOM OF A NATIVE MAGISTRATE—

A story of lamentable failure of justice and race antipathy has reached us from the Mofussil John Dickson, an English gentleman of good birth though at present rather in straightened circumstances had fallen under the displeasure of a clique of designing natives headed by one Jamuna Mallahin a person, as we are assured on good authority, of great wealth, and considerable influence in native society He was hauled up before a native Magistrate on a charge of some petty larceny which, if the trial had taken place before a European magistrate, would have been at once thrown out as preposterous, when preferred against a European of Mr Dickson's position and character But Baboo Jaladhar Gangooly the ebony-coloured Daniel before whose awful

tribunal, Mr Dickson had the misfortune to be dragged, was incapable of understanding that petty larcenies, however congenial to sharp intellects of his own country, have never been known to be perpetrated by men born and bred on English soil and the poor man was convicted on evidene the trumpery character of which, was probably as well known to the magistrate as to the prosecutors themselves The poor man pleaded his birth, and his rights as a European British subject, to be tried by a magistrate of his own race, but the plea was negatived for reasons we neither know nor are able to conjecture Possibly the Baboo was under the impression that Lord Ripon's cruel and nefarious Government had already passed into Law the Bill which is to authorize every man with a dark skin lawfully to murder and hang every man with a white one May that day be distant yet! Meanwhile we leave our readers to conjecture from a study of the names *Jaladhar* and *Jamuna* whether the tie of kindred which obviosly exists between prosecuter

and magistrate has had no influence in producing this extraordinary decision

यह टिप्पणी पढकर जिला मजिस्ट्रेट साहबने जलधर बाबूको चपरासी भेजकर बुलवाया।

गरीब ब्राह्मण कांपता हुआ मजिस्ट्रेटके सामने हाजिर हुआ। वह पूरे तौरसे सलाम भी न कर पाया कि हुजूरने डपटकर पूछा—What do you mean, Baboo, by convicting a European British subject (बाबू, युरोपियन ब्रिटिश प्रजाको क्यों दण्ड दिया ?)

डिप्टी—What European British subject, Sir?
(किस युरोपियन ब्रिटिश प्रजाको दण्ड दिया हुजूर)

मजिस्ट्रेट—Read here, I suppose you can do that I am going to report you to the Government for this piece of folly

यह पढ लो। मैं समझता हू तुम पढ सकते हो। तुम्हारी इस मूर्खताकी रिपोर्ट गवर्नमेण्टके यहा करूगा। यह कहकर साहबने कागज बाबूकी तरफ फेंक दिया। बाबूने उठाकर पढ लिया। मजिस्ट्रेटने कहा—Do you now understand? (अब समझमें आया ?)

डिप्टी—हां साहब! पर यह यूरोपियन ब्रिटिशप्रजा नहीं था।

मजिस्ट्रेट—यह तुमने कैसे जाना ?

डिप्टी—वह बडा काला था।

मजिस्ट्रेट—क्या कानूनमें लिखा है कि युरोपियनकी पहचाल सिर्फ गोरा रङ्ग ही है?

डिप्टी—नहीं हुजूर।

यह डिप्टी पुराना खुर्राट था। वह जानता था कि दलीलमें जीतनेसे आफत है। इसलिये उसने दलील छोड़ दी और जो नौकरोंको कहना उचित है वही कहा—"मैं हुजूरसे बहस करनेकी गुस्ताखी नहीं कर सकता। इस भूलके लिये मैं बहुत अफसोस करता हूं।"

मजिस्ट्रेट साहब भी निरे उल्लूके पट्ठे न थे। वह जरा दिल्लगीपसन्द भी थे। उन्होंने पूछा—किस बातके लिये बहुत अफसोस करते हो?

डिप्टी—युरोपियन ब्रिटिश प्रजाको सजा देनेके लिये।

मजि०—क्यों?

डिप्टी—इसलिये कि हिन्दुस्थानियोंके लिये यह बड़ा भारी दोष है कि वह युरोपियन ब्रिटिश प्रजाको सजा दें।

मजि०—क्यों बड़ा भारी दोष है?

डिप्टी बड़ा चालाक था। छूटते ही कहा—"इसलिये दोष है कि युरोपियन ब्रिटिश प्रजा जुर्म नहीं कर सकती और देशी लोग ईमानदारीसे इन्साफ नहीं कर सकते।"

मजि०—क्या ऐसा तुम मानते हो?

डिप्टी—नहीं माननेकी कोई वजह नहीं देखता। मैं तो अप॰ लियाकतभर अपना फर्ज अदा करनेकी कोशिश करता हूं लेकिन मैं देशी भाइयोंकी बात करता हूं।

मजि०—तुम समझते हो कि देशी आदमियोंको युरोपियनोंके मुकद्दमे न करने चाहिये।

डिप्टी—जरूर ही उन्हें न करना चाहिये। अगर वह ऐसा करें तो यह गौरवशाली अङ्गरेजी राज्य मिट्टीमें मिल जायगा।

मजि —बाबू, मैं तुम्हारी समझदारीकी बात सुनकर बड़ा खुश हुआ। चाहता हूं, सब देशी आदमी ऐसे ही हों। कमसे कम देशी मजिस्ट्रेट तो तुमसे हों।

डिप्टी—हुजूर, भला ऐसा कब हो सकता है, जब कि हमारे आला अफसर कुछ और ही सोचते हैं।

मजि०—क्या तुम आला अफसरोंके नजदीक नहीं पहुंचे? तुम तो बहुत रोजसे काम करते हो न?

डिप्टी—बदनसीबीसे मेरी बराबर हकतलफी की गयी। मैं तो हुजूरसे इस बारेमें अर्ज करनेवाला था।

मजि०—तुम तरक्कीके जरूर काबिल हो। मैं कमिश्नरको तुम्हारे लिये लिखूंगा। देखो, क्या होता है। इतना सुन डिप्टी बाबू लम्बा सलामकर चल दिये और जट साहब आ पहुंचे। डिप्टीको बाहर जाते जटने देखा था। जंटने मजिस्ट्रेटसे पूछा—"इससे तुम क्या कह रहे थे।"

मजि०—ओह! यह बड़ा मजेदार आदमी है।

जट—कैसे?

मजि०—यह बेवकूफ और कमीना दोनों है। यह अपने देशी भाइयोंकी शिकायतकर मुझे खुश करना चाहता था।

जट—क्या मनकी बात उससे कह दी ?

मजि०—नहीं, मैंने तो तरक्कीका वादा किया है। इसके लिये कोशिश करूंगा ? कम से कम 'वह घमण्डी नहीं है। घमण्डी देशी आदमी मातहतीमें रखना बिल्कुल फालतू है। मैं घमण्डियोंसे उन्हें पसन्द करता हूं जो अपनी लियाकतमें चूर नहीं रहते हैं।

इधर वापस आनेपर डिप्टी बाबूकी एक दूसरे डिप्टोसे भेट हुई। उसने जलधरसे पूछा—"साहबके पास गये था नहीं ?"

जल०—हा, बडी मुश्किलमें पड गये।

डिप्टी—क्यों ?

जल०—उस बागदी सुसरेको कैद करनेके कारण साहब कहते थे मैं रिपोर्ट कर दूंगा।

डिप्टी—फिर ?

जल०—फिर क्या तरक्कीका तार जमा आया।

डिप्टी—यह कैसे ? किस जादूसे ?

जल०—और कैसे ? ठकुरसुहाती करके।
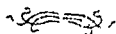
भाषा-साहित्यका आदर

नाटकके पात्र।

१—उच्च शिक्षा प्राप्त बाबू

२—इनकी स्त्री

बाबू—क्या करती हो ?

स्त्री—पढती हूं।

बाबू—क्या पढती हो ?

स्त्री—जो पढ़ना जानती हूं। मैं तुम्हारी अङ्गरेजी नहीं जानती और न फारसी ही जानती हूं, भाग्यमें जो है वही पढती हूं।

बाबू—यह वाहियात, खुराफात, खाक पत्थर भाषा क्यों पढती हो ? इससे तो न पढना ही अच्छा है।

स्त्री—क्यों ?

बाबू—यह Immoral, obscene, filthy है।

स्त्री - इसका क्या मतलब हुआ ?

बाबू Immoral किसे कहते हैं, जानती हो अरे वही वही जो morality के खिलाफ हो।

स्त्री—यह क्या किसी चौपायेका नाम है ?

बाबू—नहीं नहीं, अरे इसे भाषामें क्या कहते हैं ? अरे वही वही जो moral नहीं है और क्या ?

स्त्री—मराल क्या हंस ?

बाबू—Nonsense ! O woman ! thy name is stupidity

स्त्री—क्या अर्थ हुआ ?

बाबू—भाषामें तो इतनी बातें समझायी नहीं जा सकतीं। मतलब तो यह है कि भाषा पढ़ना अच्छा नहीं।

स्त्री—पर यह पुस्तक इतनी बुरी नहीं है—कहानी अच्छी है।

बाबू—राजा और दो रानियोंकी कहानी होगी, या नल-दमयन्तीकी होगी।

स्त्री—इनके सिवा क्या और कहानी नहीं है ?

बाबू—फिर तुम्हारी भाषामें और क्या हो सकता है ?

स्त्री—इसमें वह नहीं है, इसमें शराब है, कबाब है, विधवा-ब्याह है और जोगिनके गीत हैं।

बाबू—Exactly इसीसे तो कहता हूं कि यह सब क्यों पढ़ती हो ?

स्त्री—पढ़नेसे क्या होता है ?

बाबू—पढ़नेसे Demoralize होता है।

स्त्री—यह फिर क्या कहा—डोम राजा होता है ?

बाबू—कैसी मुश्किल है, demoralize यानी चाल-चलन बिगड़ता है।

स्त्री—प्यारे, आप तो बोतलपर बोतल उड़ाते हैं। जिनके साथ बैठकर आप खाते पीते हैं, उनका चाल-चलन ऐसा है कि

उनके मुह देखनेसे भी पाप होता है। आपके भाईबन्ध डिनरके बाद जिस भाषाका प्रयोग करते हैं, उसे सुनकर खानसामे भी कानोंमें उंगलियां डालते हैं। आप जिनके यहां जाकर शराब कबाबकी लज्जत चखते हैं, उनसे संसारका एक भी कुकर्म नहीं बचा है, चुपके-चुपके सब करते हैं। उनसे आपका चाल-चलन खराब होनेका डर नहीं है, मेरे भाषा पुस्तक पढ़नेसे आपको बड़ा डर लगता है कि मैं कहीं बिगड़ न जाऊं!

बाबू—हम ठहरे Brass Pot और तुम ठहरीं Earthen Pot.

स्त्री—इतना पट-पट क्यों करते हो? क्या तत्ते घीमें पानीकी बूंदे पड़ गयीं? खैर, इसे पकड़कर देखो तो सही।

बाबू (पीछे हटकर) क्या मैं उसे छूकर hand contamintae करूं?

स्त्री—क्या मतलब हुआ?

बाबू—मैं उसे छूकर हाथ मैला नहीं करता।

स्त्री—हाथ मैला नहीं होगा, झाड़ पोछकर देती हूं। (आंचलसे पुस्तक झाड़ पोंछकर पतिके हाथमें देती है, मानसिक मलीनताके भयसे पुस्तक बाबूके हाथसे गिर जाती है।)

स्त्री—फूटे करम! तुम जितनी घृणा इस पुस्तकसे करते हो, उतनी तो तुम्हारे अङ्गरेज भी नहीं करते। सुना है, अङ्गरेज उल्था कर रहे हैं।

बाबू—पागल तो नहीं हो गयी!

स्त्री—क्यों ?

बाबू—भाषा किताबका तर्जुमा अङ्गरेजोमें होगा ? यह चण्डूखानेकी गप्प तुमने कहां सुनी ? कहीं यह Seditious किताब तो नहीं है ? ऐसा हो तो Government का तर्जुमा कराना मुमकिन है यह कौन किताब है ?

स्त्री—विषवृक्ष।

बाबू—मतलब क्या हुआ ?

स्त्री -विष किसे कहते हैं, नहीं जानते ? उसीका वृक्ष।

बाबू—बीस या एक कोडी।

स्त्री—वह नहीं, एक चीज और है जो तुम्हारे मारे मैं खाऊ गी।

बाबू—ओ हो Poison! Dear me! उसीका दरख्त, नाम ठीक है, फेंको फेंको।

स्त्री—अच्छा पेडकी अङ्गरेजी क्या है ?

बाबू—Tree

स्त्री—अब दोनों शब्दोंको इकट्ठा करो तो।

बाबू—Poison Tree! अहा Poison Tree इस नामकी एक पुस्तकका हाल अखबारोंमें पढा था सही। तो क्या यह भाषाका तर्जुमा था ?

स्त्री—तुम्हें क्या मालूम होता है ?

बाबू-मेरा idea था कि यह अङ्गरेजी किताब है। इसीका भाषा तर्जुमा हुआ है। जब अङ्गरेजी है ही तब भाषा क्यों पढती हो ?

स्त्री—अङ्गरेजी ढङ्गसे पढना ही अच्छा है—चाहे बोतल हो चाहे किताब, अच्छा तो यही लो। यह पोथी लो, यह अङ्गरेजीका उल्था है। लेखकने स्वय कहा है—

बाबू—यह पढना तो भी अच्छा है। किस पुस्तकका उल्था है Robinson Crusoe या Watt on the Improvement of the mind?

स्त्री—अङ्गरेजी नाम तो मैं नहीं जानती, भाषाका नाम "छायामयी" है।

बाबू—छायामयी? इसके माने क्या हुआ? देखू', (पुस्तक हाथमें लेकर) Dante, by jove

स्त्री—(मुस्कुराकर) यह मेरी समझमें नहीं आता, मैं गंवार वह सब क्या समझू, तुम क्या समझा दोगे?

बाबू—इसमें ताज्जुबकी कौन सी बात है? Dante lived in the fourteenth century यानी वह fourteenth century में flourish हुआ था।

स्त्री—फुटना सुन्दरीकी पालिश करता था? तब तो बडा कवि था!

बाबू—यही मुश्किल है! अरे fourteenth माने चौदह है चौदह।

स्त्री—चौदह सुन्दरियोंकी पालिश करता था? चौदह या सोलह, पर सुन्दरियोंकी पालिश क्यों करता था?

बाबू—यह नहीं मैं कहता हूं। १४वीं सेनचुरीमें वह मौजूद था।

स्त्री—वह चौदह सुन्दरियोंमें न सही चौदह सौमें रहा हो। मैं तो पुस्तकका तात्पर्य जानना चाहता हूं।

बाबू—Author की Life तो जान लो। वह Florence शहरमें पैदा हुआ था। वहां बड़े बड़े Appointments held करते थे।

स्त्री—पोर्टमेण्टोमें हलदी करते थे तो ठीक ही है, पर आज-कल तो नहीं होता है।

बाबू—अरी वह बड़ी बड़ी नौकरियां करते थे। पीछे Guelph और Ghibilline के झगड़े—

स्त्री—बस अब कृपा करो, समझाना हो तो समझाओ, नहीं तो जाने दो।

बाबू—यही तो समझा रहा हूं, Author की Life जाने बिना उसका लिखा कैसे समझोगी?

स्त्री—मुझे इन बातोंसे क्या प्रयोजन? समझाना हो तो पुस्तकका मतलब समझा दो।

बाबू—लाओ देखें, इसमें क्या लिखा है।

[पुस्तक लेकर पहली पंक्तिका पाठ]

"सन्ध्यागगने निविड कालिमा।"

"तुम्हारे पास कोष है क्या?"

स्त्री—क्यों किस शब्दका अर्थ चाहिये?

बाबू—गगन किसे कहते हैं?

स्त्री—गगन नाम आकाशका है।

बाबू—सन्ध्यागगने निविड कालिमा ! निविड किसे कहते हैं ?

स्त्री—राम राम ! इसी विद्यासे तुम मुझे पढाओगे ? निविड कहते हैं घनेको, इतना भी नहीं जानते, लाज नहीं आती।

बाबू—लाज क्यों आवे, भाषा वाला गंवार पढते हैं, हम-लोग नहीं पढते। पढनेसे हमारी बेइज्जती है।

स्त्री—क्यों, तुम लोग कौन हो ?

बाबू—हमलोगोंकी Polished society है। गंवार भाषा लिखते और गंवार ही पढते हैं। साहब लोगोंके यहां इसकी कदर नहीं है। Polished society में भाषा नहीं चलती है।

स्त्री—मातृभाषापर पालिश पष्ठीकी इतनी कड़ी नजर क्यों है ?

बाबू—अरे मा तो न जाने कब मर-खप गयी। उसकी जबानसे अब क्या लेना देना है !

स्त्री—मेरी भी तो वही भाषा है, मैं तो नहीं मर-खप गयी।

बाबू—Yes for the sake, my jewel, I shall do it तुम्हारी खातिरसे एक भाषा किताब पढूंगा। पर mind एक ही पढूंगा।

स्त्री—एक ही क्या कम है ?

बाबू—लेकिन घरके भीतर द्वार बन्द करके पढूंगा, जिसमें कोई न देख सके।

स्त्री—अच्छा वैसे ही सही।

(चुनकर एक बुरी अश्लील और कुरुचिपूर्ण परन्तु सरस पुस्तक स्वामीके हाथमें देती है। स्वामी आद्योपान्त पढता है।)

स्त्री—कैसी पुस्तक है ?

बाबू—अच्छी है। भाषामें भी ऐसी पुस्तकें हैं, यह मैं नहीं जानता था !

स्त्री—(घृणा सहित) राम राम ! बस मालूम हुआ तुम्हारी पालिश पच्चीका हाल। इसी समझपर यह अभिमान। मैं तो समझती थी कि अङ्गरेजी पढ लिखकर कुछ अक्ल आती होगी, लेकिन देखती हूं तुम लोग रही सही अक्लसे भी हाथ धो बैठते हो, घरके धान पुआलमें मिला देते हो। चलो आराम करो।

नववर्षारम्भ

नाटकके पात्र

राम बाबू

श्याम बाबू।

राम बाबूकी स्त्री।

(देहातिन)

(राम और श्यामका प्रवेश)

(रामकी स्त्री आड़में खड़ी है)

श्याम—गुडमौर्निङ्ग राम बाबू हा डू डू ?

राम—गुडमौर्निङ्ग श्याम बाबू हा डू डू ?

(दोनों हाथ मिलाते हैं।)

श्याम—I wish you a happy new year and many many returns of the same,

राम—The same to you,

(श्याम बाबूका प्रस्थान और राम बाबूका घरमें प्रवेश)

राम बाबूकी स्त्री—यह कौन आया था ?

राम—यह श्याम बाबू थे ?

स्त्री—उनसे हाथापाई क्यों होती थी ?

राम—क्या कहा, हाथापाई कहां हुई ?

स्त्री—उसने तुम्हारे हाथको झकझोर डाला और तुमने उसके हाथोंको। चोट तो नहीं लगी ?

राम—इसीको हाथापाई कहती थी ? क्या अक्ल है। इसे shaking hands कहते हैं। यह आदरका चिह्न है।

स्त्री—ऐसा! अच्छा हुआ जो मैं तुम्हारी आदरकी स्त्री नहीं। खैर, चोट तो नहीं लगी ?

राम—जरा सा नाखून लग गया है, पर उसका कुछ ख्याल नहीं करता।

स्त्री—हाय हाय, यह तो छिल गया है। डाढीजार सवेरे सवेरे हाथापाई करने आया था। और ऊपरसे हा डू डू डू करके खेलने आया था। डाढीजारके साथ अब न खेल पाओगे ?

राम—क्या कहा ? खेलकी बात कब हुई ?

स्त्री—जब उसने कहा था कि हा डू डू डू और तुमने भी वही कहा था। अब यह सब करनेकी उमर तुम्हारी नहीं है।

राम—गवार स्त्रीके फेरमें पडकर हैरान हो गया। हा डू डू डू नहीं हा डू डू यानी How do ye do! इसका उच्चारण हा डू डू होता है।

स्त्री—इसके माने ?

राम—इसके माने "तुम कैसे हो ?"

स्त्री—यह कैसे होगा ? उसने पूछा तुम कैसे हो ? तुमने इसका उत्तर न देकर वही सवाल कर डाला।

राम—यही आजकलकी सभ्यताकी रीति है।

स्त्री—बातको दुहराना ही क्या सभ्योंका रीति है ? तुम अगर मेरे लडकेसे कहो कि क्यों नहीं लिखता पढता है रे गधे ? तो क्या वह भी इस बातको दुहरावेगा ? क्या यही सभ्योंकी चाल है ?

राम—अरी, ऐसा नहीं है। कैसे हो, पूछनेपर उत्तर न देकर उलटकर पूछता है कि कैसे हो, यही सभ्योंकी चाल है।

स्त्री—(हाथ जोडकर) मैं एक भीख मागती हूं। तुम्हारी तबीयत दोनों वेला खराब रहती है। मुझे दिनमें पांच वेर हाल पूछनेको तुम्हारे पास आना पडता है। जब मैं आऊं तो हा डू डू कह मुझे भगाया मत करो। मेरे सामने सभ्य न हुए न सही।

राम—नहीं नहीं, ऐसा न होगा। पर यह सब तुम्हें जान रखना अच्छा है।

स्त्री—बतानेसे ही जान लूंगी। बता दो, श्याम बाबू क्या गिटपिट करके चले गये ? अगर हा डू डू खेलने न आये थे तो क्यों आये थे ?

राम—आज नये वर्षका पहला दिन है इसीसे नये वर्षका आशीर्वाद देने आया था।

स्त्री—आज नये वर्षका पहला दिन है ! मेरे ससुर सास तो चैत सुदी १ को नया वर्ष मानते थे !

राम—आज पहली जनवरी है। हमलोग आज ही नया वर्ष मानते हैं।

स्त्री—ससुर तो चैत सुदी १ को मानते थे और तुम १ ली जनवरीसे मानते हो, अब लडके मुहर्रमसे मानेंगे।

राम—ऐसा क्यों होगा! अब अङ्गरेजोंका राज है। उनके नये वर्षसे हमारा भी नया वर्ष है।

स्त्री—यह तो अच्छा ही है। पर नये वर्षमें शराबकी इतनी बोतलें क्यों आयी हैं?

राम—खुशीका दिन है, दोस्तोंके साथ खाना-पीना होगा।

स्त्री—बहुत ठीक। मैं देहातकी रहनेवाली, मैंने समझा था कि वर्षारम्भमें जैसे हम जमवट (घड़ा) दान करती हैं, वैसे ही तुम लोग वर्षारम्भमें ये शराबकी बोतलें दान करोगे। तुम्हें मना करना चाहता थी कि भगवानके लिये मेरे सास-ससुरके नामपर यह सब दान न करना।

राम—तुम बड़ी बेसमझ हो!

स्त्री—इसमें तो शक ही क्या है। इसीसे और कुछ पूछते डर लगता है।

राम—और भी कुछ पूछोगी?

स्त्री—ये इतने गोभी, सलगम, गाजर, अनार, अंगूर, पिस्ता, बदाम वगैरह क्यों लाये हो? क्या खानेमें इतने खर्च हो जायँगे!

राम—नहीं, यह सब साहबोंकी डाली सजानेके लिये है।

स्त्री - राम राम, ऐसा काम न करना। लोग बड़ी बदनामी करेंगे।

राम—भला क्या कहेंगे?

स्त्री—कहेंगे कि वर्षारम्भमें ये लोग जलका घट दान करनेके साथ-साथ चौदह पुरखोंका पिण्डदान भी करते हैं।

(इति पिटनेके भयसे घरवालीका भागना। राम बाबूका वकीलके घर जाना और पूछना कि हिन्दू Divorce कर सकता है कि नहीं।)

दाम्पत्य-दण्डविधान

अबला सरला समझकर आजकल हम स्त्रियोंपर घोर अत्याचार हो रहा है, मर्दों का मिज़ाज बहुत बढ़ गया है, अब मर्द स्त्रियोंको मानते नहीं हैं, स्त्रियोंके पुराने सब हक मारे जा रहे हैं, अब औरतोंके हुक्मका कोई पाबन्द नहीं है। इन सब विषयोंको ठीक-ठीक नियमसे चलानेके लिये हम लोगोंने 'स्त्रीस्वत्वरक्षिणी सभा' स्थापित की है। उस सभाका विशेष समाचार पीछे प्रगट किया जायगा। इस समय कहना यह है कि हमलोगोंके स्वत्वोंकी रक्षाके लिये सभासे एक सदुपाय स्थिर हुआ है। इसके लिये हमलोगोंने भारत-सरकारको दरख्वास्त भेजी है और उसीके साथ पतिशासनके लिये एक दाम्पत्य-दण्डविधानका मसविदा भी भेजा है।

जहां सबकी स्वत्वरक्षाके लिये रोज नये कानून गढ़े जा रहे हैं वहां हमलोगोंके सनातन स्वत्वोंकी रक्षाके लिये कोई कानून क्यों नहीं बनाया जाता ! आशा है कि यह कानून जल्दी पास हो जायगा, इसी इच्छासे स्वामी-समुदायको सूचित करनेके लिये मैं इसे 'बङ्गदर्शन'में भेज रही हूं। बहुतसे बाबूलोग मातृभाषामें कानूनको भलीभांति नहीं समझ सकते, खासकर कानूनका भाषानुवाद अकसर अच्छा नहीं होता। यह कानून

अंगरेजीमें ही पहले तैयार हुआ था और इसका भाषानुवाद अच्छा नहीं हुआ, जगह-जगह अंगरेजीमें और इसमें अन्तर है, इसीलिये मैं अंगरेजी और भाषा दोनों भेजती हूं। आशा करती हूं कि 'बंगदर्शन'के सम्पादक महोदय हमारे अनुरोधसे एक बार अगरेजोंका विरोध छोड़कर अगरेजी समेत इस कानूनका प्रचार करेंगे। देखनेसे सबको मालूम हो जायगा कि इस कानूनमें कोई नयापन नहीं है; पहलेका Les Non Scripta केवल लिपिबद्ध हुआ है।

श्रीमती अनन्त सुन्दरी देवी

मन्त्री, स्त्री स्वतारक्षिणी सभा।

The Matrimonial Penal Code

CHAPTER I

Introduction

WHEREAS it is expedient to provide a special Penal Code for the coercion of refractory husbands and others who dispute the supreme authority of Woman, it is hereby enacted as follows —

दाम्पत्य-दण्डविधान

पहला अध्याय।

प्रस्तावना

स्त्रियोंके उद्दण्ड स्वामियोंका शासन करनेके लिये एक विशेष प्रकारके कानूनकी आवश्यकता है इसलिये निम्नलिखित कानून बनाया जाता है —

1 That this Act shall be entitled the "Matrimonial Penal Code" and shall take effect on all natives of India in the married state

CHAPTER II

Definitions

2 A husband is a piece of moving and moveable property at the absolute disposal of a woman

Illustrations

(a) A trunk or a work box is not a husband, as it is not moving, though a move able piece of property

(b) Cattle are not hus bands, for though capable of locomotion they cannot be at the absolute disposal of any woman, as they often display a will of their own

दफा १—इस कानूनका नाम दाम्पत्य-दण्डविधान होगा। भारतवर्षमें जितने देशी विवाहित पुरुष हैं, उन सबपर इसका पूरा असर होगा।

दूसरा अध्याय

साधारण व्याख्या।

दफा २—जो जगम सजीव सम्पत्ति स्त्रियोंके सम्पूर्ण अधिकारमें है, उसका नाम पति है।

उदाहरण।

(क) सन्दूक, पेटी आदिको पति नहीं कहना चाहिये, क्योंकि यद्यपि ये सब जंगम अर्थात् अस्थावर सम्पत्ति हैं। तथापि सजीव नहीं हैं।

(ख) गाय, भैंस, बछड़े पति नहीं हो सकते, क्योंकि यद्यपि ये सजीव पदार्थ हैं तथापि इनमें अपनी इच्छाके अनुसार कार्य करनेकी शक्ति नहीं है। इसलिये ये सब स्त्रियोंके सम्पूर्ण रूपसे अधीन नहीं हैं।

(c) Men in the married state having on will of their own are husbands

(ग) विवाहित पुरुष ही स्वतन्त्रतापूर्वक कोई काम नहीं कर सकते। अतएव पशुओंको पति न कहकर इन लोगोंको ही पति कहना चाहिये।

3. A wife is a woman having the right of Property in husband

दफा ३—जो स्त्री अपने पतिको सम्पत्ति बनानेका अधिकार रखती है, वही अपने पति-की पत्नी अथवा स्त्री है।

Explanation

The right of property includes the right of flagellation

व्याख्या।

सम्पत्तिका अधिकारी अपनी सम्पत्तिको मारने-पीटनेका भी अधिकारी है।

4 "The married state" is a state of penance into which men voluntarily enter for sins committed in a previous life.

दफा ४—पुरुषोंके पूर्व-जन्मकृत पापोंके प्रायश्चित्त विशेषको "विवाह" कहना चाहिये।

CHAPTER III
Of punishment

तीसरा अध्याय
बाबत सजा।

5 The Punishme ttson which offenders are liable under the provisions of this Code are —

दफा ५—इस कानूनके अनु-सार अपराधीको निम्नलिखित सजा मिलनी चाहिये।

Firstly—*Imprisonment* which may be either within the four walls of a bed room or within the four walls of a house

१—शयनागार या किसी अन्य मकानकी चहार दीवारीके बीच कैद।

Imprisonments are of two descriptions, namely —

कैद दो प्रकारकी होगी —

(1) Rigorous that is, accompanied by hard works

(१) कठिन तिरस्कारयुक्त।

(2) Simple

(२) तिरस्कार रहित।

Secondly—Transportation, that is to another bed room

२—काला पानी, अर्थात् दूसरी शय्यापर भेजना, अथवा शयन-गृहके बाहर कर देना।

Thirdly—Matrimonial servitude

३—पत्नीका दासत्व।

Fourthly—Forfeiture of pocket money

४ जुर्माना अर्थात् पाकिट खर्चके लिये रुपया न देना।

6 "Capital punishment" under this Code means that the wife shall run away to her paternal roof, or to some other friendly house, with the intention of not re urning in a hurry

दफा ६—इस कानूनमें फासीका यह अर्थ समझा जायगा कि स्त्री अपने पिताके घर अथवा किसी सखीके घर चली जायगी और शीघ्र लौटनेकी इच्छा न करेगी।

7 The following punishments are also provided for minor offences —

Firstly—Contemptuous silence on the part of the wife.

Secondly—Frowns

Thirdly—Tears and lamentations

Fourthly—Scolding and abuse

दफा ७—छोटे-छोटे अपराधियोंके लिये निम्नलिखित दण्ड होने चाहिये —

१,—मान।

२,—भृकुटी-भग।

३,—चुपचाप आंसू बहाना, अथवा उच्च स्वरसे रोदन।

४,—गाली बकना अथवा तिरस्कार करना।

CHAPTER IV

General Exceptions

चौथा अध्याय।

साधारण अपवाद।

8 Nothing is an offence which is done by a wife

दफा ८—स्त्रीका किया हुआ कोई काम अपराध नहीं गिना जायगा।

9 Nothing is an offence which is done by husband in obedience to the commands of a wife

दफा ९—स्त्रीके आज्ञानुसार पतिका किया हुआ काम भी अपराध न गिना जायगा।

10 No person in married state shall be entitled to plead any other circumstances as grounds of exemp

दफा १०—कोई विवाहित पुरुष यह उज्र नहीं पेश कर सकेगा कि "वह दाम्पत्य-दण्ड-

tion from the provisions of the Matrimonial Penal Code.

विधान कानूनके अनुसार दण्डनीय नहीं है।

CHAPTER V

Of Abetment

पांचवां अध्याय।

अपराध करनेकी सहायताके विषयमें।

11 A person abets the doing of a matrimonial offence, who—

Firstly—Instigates, persuades, induces or encourages a husband to commit that offence

Secondly—Joins him in the commission of that offence or keeps his company during its commission

दफा ११—वह व्यक्ति दाम्पत्य अपराधोंकी सहायता करता है जो—

१,—पतिको अपराध करनेमें कान भरता, प्रवृत्ति दिलाता अथवा उत्साहित करता है।

२,—या उसके सङ्ग उस अपराध करनेके समयतक रहता है।

Explanation

A man not in the married state or even a woman may be an abettor

व्याख्या।

अविवाहित पुरुष अथवा स्त्री दाम्पत्य अपराधकी सहायता कर सकती हैं।

Illustrations

(a) A, the husband of B and C, an unmarried man,

उदाहरण।

(क) राम श्यामाका पति है। यदुनाथ अविवाहित पुरुष

drink together Drinking is a Matrimonial offence C has abetted A

है। दोनोंने एक साथ बैठकर मद्यपान किया है। मद्यपान करना दाम्पत्य-अपराध है। अतएव यदुनाथने रामकी सहायता की।

(*b*) A the mother of B, the husband of C, persuades B to spend money in other ways than those which C approves As spending money in such ways is a Matrimonial offence A has abetted B

(ख) सुशीला रामकी माता है। राम श्यामाका पति है। श्यामा जिस प्रकार रुपया खर्च करनेके लिये कहती है,वैसे न करके रामने सुशीलाके परामर्शसे रुपया खर्च किया। स्त्रीके मतके विरुद्ध खर्च करना दाम्पत्य अपराध है। अतएव सुशीलाने उस अपराधीकी सहायता की।

12. When a man in the married state, abets another man in the married state, in a Matrimonial offence the abettor is liable to the same punishment as the principal provided that he can be so punished only by a Competent Court

दफा १२—यदि कोई विवाहित पुरुष किसी विवाहित पुरुषको दाम्पत्य-अपराधमें सहायता करे, तो वह भी असल अपराधीके समान दण्डनीय होगा। उसका दण्ड उपयुक्त न्यायालयके विना न होगा।

Explanation

A Competent Court means the wife having right of property in the offending husband

13 Abettors who are *females* or *male offenders* not in the married state are liable to be punished only with scolding abuse, frowns, tears and lamentations

व्याख्या।

यहांपर उपयुक्त न्यायालयसे मतलब उस स्त्रीसे है जिसके पतिने अपराध किया।

दफा १३—स्त्री अथवा अविवाहित पुरुष दाम्पत्य अपराधकी सहायता करनेसे केवल तिरस्कार, भृकुटीभङ्ग, नीरव अश्रुपात अथवा रोदन द्वारा ही दण्डनीय होंगे।

CHAPTER VI

Of offence against the State

14 "The state" shall, in this Code, mean the married state only

15 Whoever wages war against his wife or attempts to wage such war, or abets the waging of such war, shall be punished capitally, that is by separation or by transportation to another bed room and shall *forfeit* all his pocket money

छठा अध्याय।

राजविद्रोहके विषयमें।

दफा १४—इस कानूनमें 'राज' शब्दका अर्थ विवाहित दशा है।

दफा १५—जो कोई अपनी स्त्रीके साथ विवाद करे, अथवा विवाद करनेका उद्योग करे, अथवा विवाद करनेमें किसी को सहायता करे, उसको प्राण दण्ड दिया जायगा, अर्थात् उसकी स्त्री उसे त्याग देगी, अथवा शयनागारसे पृथक् कर देगी और पाकेट खर्च बन्द कर देगी।

16 Whoever induces friends or gains children to side with him or otherwise prepares to wage war with the intention of waging war against the wife, shall be punished by transporation to another bed room and shall also be liable to be punished with scolding and with tears and lamenta tions

दफा १६—जो कोई व्यक्ति अपने मित्रोंको सहायक बनाकर अथवा सन्तानको वशीभूत करके अथवा और किसी प्रकारसे स्त्रीके साथ विवाद करनेके अभिप्रायसे विवाद करेगा, उसको देश निकालेकी सजा दी जायगी अर्थात् दूसरे शय्या-गृहमें भेजा जायगा और वह अश्रुपात तिरस्कार तथा रोदन के द्वारा दण्डनीय होगा।

17 Whoever shall render allegiance to any woman other than his wife, shall be guilty of incontinence

Explanation

(1) To show the slightest kindness to a young woman, who is not the wife, is to render such young woman allegiance.

दफा १७—जो व्यक्ति अपनी स्त्रीको छोड़ अन्य स्त्रीपर आसक्त होगा, वह "लाम्पट्य" नामक अपराधका अपराधी होगा।

१ व्याख्या।

स्त्रीको छोड़ किसी अन्य युवतीपर किसी प्रकारकी दया अथवा अनुकूलता दिखाने से ही लाम्पट्य-दोष सिद्ध समझा जायगा।

Illustration.

A is the husband of B and C is a young woman A likes C's bady because he is a nice child and gives him buns to eat A has rendered allegiance to C

Explanation

(2) Wives shall be entitled to imagine offences under this section and no husband shall be entitled to be acquitted ont he ground that he has not committed the offence

The simple accusation shall always be held to be conclusive proof of the offence

Explanation

(3) The right of imagining offence under this section shall be held to b-long, in general to old wives, and

उदाहरण।

राम श्यामाका पति है। मोहिनी एक दूसरी युवती है। मोहिनीका छोटा बच्चा देखनेमें बड़ा सुन्दर है। इसलिये राम उसको प्यार करता है और कभी-कभी उसे मिठाई भी खिलाता है। अतएव राम मोहिनीपर आसक्त है।

२ व्याख्या।

इस अपराधमें बिना कारण पतिको अपराधी ठहरानेका स्त्रियोंको अधिकार होगा। मैंने अपराध नहीं किया है, यह कहकर कोई पति छुटकारा न पा सकेगा।

अपराध लगाने हीसे अपराध प्रमाणित समझ लिया जायगा।

३ व्याख्या।

बिना कारण पतिको इस अपराधका अपराधी होनेकी विवेचना करनेका अधिकार विशेष रूपसे प्राचीन स्त्रियोंको

to women with old and ugly husbands and a young wife shall not be entitled to assume the right unless she can prove that she has a particularly cross temper or was brought up a spoilt child or is herself supremely ugly

18 Whoever is guilty of incontinence shall be liable to all the punishments mentioned in this Code and to other punishments not mentioned in the Code

CHAPTER VII

Of Offence relating to the Army and Navy

19 The Army and Navy shall, in this Code, mean the sons and daughters and the daughters in law

20 Whoever abets the committing of mutiny by a

ही होगा, अथवा जिन लोगोंके पति कुरूप अथवा बूढे हैं, उन्हीं स्त्रियोंको होगा। यदि कोई युवती इस अधिकारको लेना चाहे तो उसे पहले यह प्रमाणित करना होगा कि वह घटमिजाज है अथवा बापके घरकी लाडली है या स्वयं अत्यन्त कुरूप है।

दफा १८—जो पुरुष लम्पट होगा, वह इस कानूनमें लिखे हुए सब प्रकारके दण्डों द्वारा दण्डित होगा। उनके सिवा और दण्ड भी, जो इस कानूनमें नहीं लिखे हैं, उसको दिये जायेंगे।

सातवा अध्याय

पल्टन और नौकर सम्बन्धी अपराध।

दफा १९—इस कानूनमें पल्टन और नौसेनाका अर्थ लड़के, कन्या और पुत्रवधू समझा जायगा।

दफा २०—गृहिणीके साथ विद्रोह करनेमें जो पति, पुत्र,

son or a daughter in law shall be liable to punished by scolding and tears and lamentations

CHAPTER VIII

Of Offences against the domestic Tranquillity

21 An assembly of two or more husbands is designated an unlawful assembly if the common object of such husband is —

Firstly—To drink as definded below or to commit any other matrimonial offence;

Secondly—To over awe, by show of authority their wives from the exercise of the lawful authority of such wives

Thirdly—To resist the execution of a wife's order

कन्या अथवा पुत्रवधूकी सहायता करेगा, वह तिरस्कार और रोदनके द्वारा दण्डनीय होगा।

आठवां अध्याय

घरमें शान्ति-भग करनेका अपराध।

दफा २१—दो अथवा इससे अधिक विवाहित पुरुषोंका जमाव यदि निम्नलिखित किसी अभिप्रायके निमित्त हो तो वह बेकानूनी जमाव कहा जायगा।

१,—मद्यपान करना अथवा किसी अन्य प्रकारका दाम्पत्य अपराध करना।

२, अधिकारके बलपर डराकर कानूनके अनुसार प्रभुत्व प्रकाशित करनेसे निवृत्त करनेके लिये स्त्रियोंको धमकी देना।

३,—किसी स्त्रीके आज्ञानुसार काम होनेमें विघ्न डालना।

22 Whoever is a member of an unlawful assembly shall be punished by imprisonments with hard words, and shall also be liable to contemptuous silence or to scolding

दफा २२—जो पुरुष वेकानूनी जमावमें शामिल होगा, वह कठिन तिरस्कारयुक्त कैद, अथवा मान या तिरस्कारके द्वारा दण्डित होगा।

Of drinking wines and spirits

मद्यपानके विषयमें

23 Any liquid kept in a bottle and taken in a glass vessel is wine and spirits

दफा २३—जो जलवत् तरल वस्तु बोतलमें रहती है और काचके ग्लासमें ढाली जाती है, उसे,मद्य कहते हैं।

24. Whoever has in his possession wine and spirits as above defined is said to drink

दफा २४—उपरोक्त लिखित मद्य जो घरमें रखे वही मद्य पायी है।

Explanation

He is said to drink even though he never touches the liquid himself

व्याख्या।

यदि वह उस अपने हाथसे छुए भी नहीं तो भी मद्यपायी कहा जायगा।

25 Whoever is guilty of drinking shall be punished with imprisonment of either description within the four

दफा २५ - जो मद्यपायी है, वह रोज सन्ध्या होते ही शय्या गृहकी चहारदीवारीके अन्दर

walls of bed room during the evening hours and shall also be liable to scolding

कैद किया जायगा और तिरस्कार-वाक्य सुना करेगा।

Of rioting

दङ्गा करनेकी बाबत।

26 Whoever shall speak in an ungentle voice to his wife shall be guilty of domestic rioting

दफा २६—स्त्रीके साथ कर्कश स्वरसे बात करनेका ही नाम दङ्गा करना है।

27 Whoever is guilty of domestic rioting shall be punished by scolding or by tears and lamentations

दफा २७—जो कोई अपने घरमें दङ्गा करेगा, उसको रोने-तिरस्कार और अश्रुपातके दण्डसे दण्डनीय होना पड़ेगा।

रजनी

लेखक—स्व० बाबू बंकिमचन्द्र चटर्जी

स्व० बंकिम बाबूने सामाजिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासोंके लिखनेमें अपनी कलमकी करामात बड़ी खूबीके साथ दिखलायी है। इस उपन्यासमें उन्होंने मानव-हृदयके भिन्न-भिन्न भावोंको जिस कौशलसे चित्रित किया है, वह पढ़ते ही बनता है। इसमें रजनी नामक एक जन्मान्ध युवती एवं शचीन्द्र नामक युवकके विशुद्ध प्रेमका वर्णन बड़ी रोचक भाषामें लिखा गया है। पुस्तक सुन्दर एण्टिक कागजपर छपी है। कवरपर एक तिरंगा तथा भीतर कई सादे चित्र दिये गये हैं। मूल्य केवल ॥।≈)

हीरेकी चोरी

अनुवादक पं० रमाकान्त त्रिपाठी 'प्रकाश'

यह अंग्रेजीकी सुप्रसिद्ध सेक्सटन ब्लेक सीरीजके एक **बड़े ही** दिलचस्प और रोमांचकारी घटनाओंसे पूर्ण जासूसी उपन्यासका अनुवाद है। कथानक हिन्दुस्तानसे सम्बन्ध रखनेवाले मामलेसे युक्त होनेके कारण उपन्यासकी रोचकता और भी बढ़ गयी है। कई रंग बिरंगे चित्र भी दिये गये हैं। मोटे एण्टिक कागजपर छपी प्राय दो सौ पृष्ठोंकी पुस्तकका मूल्य केवल १।) रखा गया है।

बंकिम ग्रन्थावली २ रा भाग

इस भागमें बंगाय साहित्य-सम्राट् स्व० बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्यायकी कभी पुरानी न पड़नेवाली पांच अनूठा रचनाओंका संग्रह है —(१) देवीचौधुरानी, (२) राजसिंह, (३) इन्दिरा, (४) रजनी, (५) युगलांगुलीय। ये पांचों उपन्यास एकसे एक बढ़कर हैं, यह बात किसी भी साहित्यप्रेमीसे छिपी नहीं है। ये पुस्तकें अलग-अलग लेनेपर जहां कमसे कम तीन-चार रुपये लग जाते हैं वहां यह पूरे ६१५ पृष्ठोंका पोथा आपको केवल १।) रु० में मिलेगा। सजिल्दका दाम १॥)

४७—स्वास्थ्य-साधन

लेखक—अध्यापक श्रीरामदास गौड़ एम० ए०

इस ग्रंथमें रोगकी मीमांसा, रोगोंके लक्षण, मिथ्योपचार-विमर्श और प्राकृतोपचार दिग्दर्शन इत्यादि विषयकी व्याख्या बड़ी ही विद्वत्तासे की गयी है।

यह ग्रन्थ प्रत्येक गृहस्थको अपने घरमें रखना चाहिये। प्राकृतिक चिकित्साके सम्बन्धमें राष्ट्रीय भाषा हिन्दीमें यह ग्रन्थ बिल्कुल नया और बहुत ही विचारपूर्ण लिखा गया है। पौने पाच सौ पृष्ठकी कई चित्रोंसे विभूषित पुस्तकका मूल्य ३) सजिल्द ३॥)

४८—वाणिज्य या व्यवसाय प्रवेशिका

लेखक—श्रीशिवसहाय चतुर्वेदी

प्रस्तुत पुस्तकमें व्यवसाय आरम्भ करनेके प्रारम्भिक ज्ञानकी प्राय सभी बातें बड़ी सरल भाषामें बतायी गयी हैं। व्यवसाय करनेवाले प्रत्येक मनुष्यको इस पुस्तकका अवश्य अध्ययन करना चाहिये। प्राय पौने दो सौ पृष्ठोंकी पुस्तकका दाम ॥=)

४९—उर्दू कविता कलाप

उर्दूके शेरोंमें जो लालित्य और मनोहरता है प्राय सभी पढ़े-लिखोंके दिलोंको खींच लेती है और आनन्दके हिलोरे हृदय में तरङ्ग मारने लगते हैं। हम अपने उन हिन्दी पाठकोंके मनो रञ्जनार्थ जो फारसी लिपिसे अनभिज्ञ हैं, किन्तु उर्दू-कवियोंकी कविताका रसास्वादन करना चाहते हैं यह उर्दूके प्रसिद्ध प्रसिद्ध शायरोंके पद्योंका चुना हुआ संग्रह भेंट करते हैं। मूल्य ॥=)